राहुल सांकृत्यायन
का
कथा साहित्य

[कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

लेखक
डॉ० प्रभाशंकर मिश्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

Rahoul Sankertiyan Ka
Katha Sahiti

राहुल सांकृत्यायन
का
कथा साहित्य

[कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच० डी०
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

लेखक
डॉ० प्रभाशंकर मिश्र
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक
अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक :
अशोक प्रकाशन,
नई सड़क, दिल्ली ।

प्रथम संस्करण : १९६७
मूल्य : १५.००

मुद्रक :
जनता प्रेस
आगरा ।

भूमिका

हिन्दी जगत् में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व विशेष महत्त्व रखता है। वे अप्रतिहत श्रम-शक्ति एवं असाधारण प्रतिभा के प्रतीक हैं। उनकी मानव-जीवन में आस्था है। मानव-जीवन को सुखमय, समृद्ध तथा पूर्ण बनाने के हेतु, वे सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। उनका जीवन प्रयोगवादी रहा है। उन्हें दूसरों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर सन्तोष नहीं हुआ। सत्यान्वेषण, उनके जीवन का लक्ष्य रहा है। राजनीति, धर्म एवं सामान्य जीवन से सम्बद्ध विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में, उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया था। द्वितीय सोवियत यात्रा (सन् १९३८ ई०) के उपरान्त, वहां के साम्यवादी जीवन से प्रभावित हो, वे साम्यवादी बने और अन्त तक साम्यवादी रहे। उनका विचार था कि साम्यवाद ही एक ऐसा मार्ग है जिसका अनुसरण दीनों और श्रमिकों को दुःखमय जीवन से मुक्त करा सकता है। उन्होंने किसी वाद का अन्धानुकरण नहीं किया। जब किसी वाद के खोखलेपन को लक्षित किया, उन्होंने एक नवीन स्वतंत्र मार्ग खोज निकाला। धर्म के क्षेत्र में, वे वैष्णव से आर्यसमाजी, तदुपरान्त बौद्ध और अन्ततः अनीश्वरवादी बने। उन्होंने वैज्ञानिक भौतिकवाद के मार्ग को सच्चा मानकर स्वीकार किया। वे प्रत्येक मत की उपयोगिता को जीवन की कसौटी पर कसते थे। देश-विदेश की यात्राओं ने उनकी विचारधारा को रूढ़िवादिता से मुक्त किया। यात्राओं ने राहुल जी की धर्म-विषयक धारणाओं, राजनीतिक विचारों और साहित्यिक मान्यताओं को प्रभावित किया था।

राहुल जी का जीवन, सरल एवं आडम्बरमुक्त रहा है। अविरल कर्म, उनके जीवन का परम मनोरथ रहा है। आलस्य एवं प्रमाद से वे दूर थे। उनकी रचनायें, उनके असाधारण पुरुषार्थ, दृढ़ मनोबल एवं अनुशासित कार्यप्रणाली का परिणाम हैं।

राहुल जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने हिन्दी, संस्कृत एवं तिब्बती भाषाओं में रचनायें कीं। हिन्दी में उन्होंने उपन्यास, कहानी, यात्रा, जीवनी-संस्मरण, देश-दर्शन, विज्ञान, इतिहास, राजनीति तथा दर्शन सम्बन्धी विषयों पर पर्याप्त मात्रा

में लिखा। साहित्य की जिस विधा में उन्हें रचनाओं का अभाव खटका, उसी पर उन्होंने जम कर लिखा। प्राचीन आदर्शों से नवीन आदर्शों का सामंजस्य स्थापित करने के लिए, राहुल जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। मानव-संस्कृति की अक्षय निधि को सरल कहानियों के रूप में प्रस्तुत करके कहानी-परम्परा को उन्होंने साहित्य की चरम सीमा तक पहुंचाया। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों के रूप में, मानव-विकास की झांकी, राहुल जी की हिन्दी-साहित्य को अनुपम देन है। देश-विदेश की यात्राओं तथा भारतीय राजनीति में व्यस्त रहने पर भी, उन्होंने हिन्दी साहित्य को जिस कोटि और परिमाण में रचनायें दी हैं, उन्हें देखकर विस्मित होना स्वाभाविक है।

राहुल जी की कला के छोर, इतने विस्तीर्ण हैं कि एक साथ उस पर विचार करना कठिन है। साहित्यिक विधाओं एवं भावपक्ष की दृष्टि से, राहुल जी की रचनाओं में अत्यधिक विविधता होने के कारण, उन सबका एक साथ अध्ययन असाध्य है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में, राहुल जी के रचनात्मक कथा-साहित्य को आलोचना का विषय बनाया गया है। उनके कथा-साहित्य में, मानव-जीवन के अनेक युग सिमट आये हैं। उन्होंने इतिहास के चौखटे में, मानव की शाश्वत समस्याओं एवं भावनाओं को ऐसे अनुपम रूप में प्रस्तुत किया है कि वे अतीत की झांकी एवं वर्तमान की निधि हैं। उनके कथा-साहित्य में, एक दक्ष पर्यटक के जीवन-अनुभव तथा कुशल इतिहासकार की आस्था अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम द्वारा भारत के प्राचीन इतिहास में साम्यवादी विचारधारा तथा गणतन्त्र-शासन प्रणाली के तत्त्व खोजने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विवेच्य विषय राहुल जी के कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन है। इस विषय पर विधिवत् आलोचनात्मक अध्ययन का अब तक नितान्त अभाव रहा है। गत वर्षों में, इस विषय से सम्बद्ध टीका-टिप्पणियां आलोचना-ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं में देखने में आई हैं, किन्तु उनमें विश्लेषणात्मक अध्ययन की अपेक्षा भावावेश का पुट अधिक है। इस दृष्टि से कथा-तत्त्वों के आधार पर राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों का प्रस्तुत विश्लेषण तथा उनकी उपन्यास एवं कहानी कला के विकास का निर्देश-कार्य, लेखक की ओर से मौलिक प्रयास है।

लेखक ने विभिन्न मान्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कथा-साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं तत्त्वों की कसौटी पर राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों को परखने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम तीन अध्यायों में, क्रमशः राहुल जी के व्यक्तित्व, उनकी रचनाओं तथा कथा-

साहित्य के स्वरूप का निरूपण करते हुए उनके उपन्यासों एवं कहानियों का वर्गीकरण किया गया है। चतुर्थ अध्याय में, राहुल जी के उपन्यासों तथा पंचम अध्याय में उनकी कहानियों का—कथावस्तु, पात्र-चरित्र-चित्रण, कथोपकथन तथा जीवन-दर्शन-मुख्य कथा-तत्त्वों की दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। राहुल जी की कथा-कृतियों में, कथोपकथन, भाषा एवं लेखन-शैली के तत्त्व प्रायः समान हैं। पुनरावृत्ति तथा विस्तार-भय के कारण इन कथा-तत्त्वों की दृष्टि से राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों का विवेचन एक साथ षष्ठ अध्याय में किया गया है। अध्यायों के अन्त में, विश्लेषण के फलस्वरूप उपलब्ध निष्कर्षों का उल्लेख किया गया है। राहुल जी के मौलिक चिन्तन तथा उनकी रचनात्मक कला के विकास का परिचय उनकी मौलिक कथा-कृतियों से ही प्राप्त हो सकता था, अतः उनकी मौलिक कथा-कृतियों को ही प्रस्तुत शोध-कार्य का विषय बनाया गया है, अनूदित को नहीं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय, 'महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व'—में राहुल जी के व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में सचेष्ट परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का विवेचन है। अध्याय के आरम्भ में, उनके बाल्य तथा पारिवारिक जीवन का अंकन है। तत्पश्चात् उनके 'घुमक्कड़ी' जीवन तथा उनकी धार्मिक एवं राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण है। अध्याय के अन्त में राहुल जी के साहित्य को अनुप्राणित करने वाले तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय अध्याय, 'राहुल जी की रचनाएं तथा साहित्यिक कृतियां' में राहुल जी के रचना-कार्य की विशदता का परिचय कराते हुए, उनकी रचनाओं से सम्बद्ध, उपलब्ध सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त उनकी हिन्दी साहित्य की परिधि में आने वाली, कृतियों की निर्णीत सूची प्रस्तुत की गई है।

तृतीय अध्याय, 'कथा-साहित्य तथा राहुल जी द्वारा रचित उपन्यास एवं कहानियां' में कथा-साहित्य तथा साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित उपन्यास एवं कहानी सम्बन्धी परिभाषाओं के आधारभूत तत्त्वों की छान-बीन कर उपन्यास एवं कहानी के मौलिक स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास है। उस स्वरूप की कसौटी पर उपन्यास एव कहानी विधा के अन्तर्गत आने वाली राहुल जी की कृतियों को कस कर, उनका विभिन्न तत्त्वों की दृष्टि से वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय, 'राहुल जी के उपन्यासों का अध्ययन— कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं जीवन-दर्शन के तत्त्वों की दृष्टि से'—के चार उप-विभाग हैं। 'क' विभाग में राहुल जी के उपन्यासों की मुख्य कथा तथा गौण सूत्रों का

विश्लेषणात्मक दृष्टि से सार-संचय कर उनका आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों से सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक सामग्री का संचय किया गया है तथा उसके विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। इस विभाग के अन्त में राहुल जी के उपन्यासों की कथा-शिल्प-कला का विवेचन है। 'ख' विभाग में पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से राहुल जी के उपन्यासों का विश्लेषण करते हुए नायक-पात्रों, आक्रमणकारी शासक-पात्रों, अन्य पुरुष-पात्रों तथा मुख्य नारी-पात्रों के चरित्र पर विचार किया गया है। विभाग के अन्त में राहुल जी के उपन्यासों की पात्र-चित्रणकला सम्बन्धी निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। 'ग' विभाग में राहुल जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि के अन्तर्गत उनके उपन्यासों के घटनास्थल तथा काल-क्रम का विवेचन करते हुए, उपन्यासों से सम्बद्ध राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा प्राकृतिक चित्रण का स्पष्टीकरण किया गया है। 'घ' विभाग में राहुल जी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन के अन्तर्गत उपन्यासों में व्यक्त, उनकी जीवन सम्बन्धी धारणाओं का विवेचन करते हुए, उनके विभिन्न उपन्यासों के उद्देश्य पर विचार किया गया है।

पंचम अध्याय, 'राहुल जी की कहानियों का अध्ययन—कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं उद्देश्य के तत्त्वों की दृष्टि से'—के चार उप-विभागों में से 'क' विभाग में राहुल जी की कहानियों के कथा-सूत्रों का अंकन तथा उनका विश्लेषण है। तत्पश्चात् उनकी कहानियों की कथा-शिल्प-कला का उद्घाटन है। 'ख' विभाग में चारित्रिक गुणों के आधार पर राहुल जी की कहानियों के वर्गीकरण के उपरान्त प्रतिनिधि-पात्रों के चरित्र का विश्लेषण है। निष्कर्ष रूप में राहुल जी की कहानियों की पात्र-चरित्र-चित्रण कला का विवेचन है। 'ग' विभाग में राहुल जी की कहानियों में वातावरण-सृष्टि के अन्तर्गत उनकी कहानियों के घटनास्थल, काल-क्रम तथा कहानियों से सम्बद्ध राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों तथा प्रकृति-चित्रण का विश्लेषण है। 'घ' विभाग में, कहानियों में व्यक्त, राहुल जी के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा उनकी कहानियों के उद्देश्य का अंकन है।

षष्ठ अध्याय, 'राहुल जी के उपन्यासों तथा कहानियों का कथोपकथन, भाषा एवं लेखन-शैली की दृष्टि से विश्लेषण' के 'क', 'ख', 'ग', तीन विभाग हैं। 'क' विभाग में राहुल जी की कथोपकथन-कला पर विचार है। 'ख' विभाग में राहुल जी की भाषा के विविध रूपों की चर्चा है। 'ग' विभाग में उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की लेखन-शैली की प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है।

सप्तम अध्याय, 'उपसंहार—राहुल जी की कथा-साहित्य' में राहुल जी की उपन्यास एवं कहानी-कला पर विचार करते हुए, हिन्दी कथा-साहित्य में राहुल जी के स्थान तथा उनकी देन का उल्लेख है।

'परिशिष्ट' में श्रीमती कमला सांकृत्यायन से शोध-कार्य के प्रसंग में किये गये पत्र-व्यवहार से, उनके उल्लेखनीय पत्रों को उद्धृत किया गया है। इनसे राहुल जी के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं के विषय में विशेष प्रकाश उपलब्ध होता है।

इस नम्र निवेदन को समाप्त करने से पूर्व, पूज्य गुरुजनों की कृपा का उल्लेख करना, लेखक अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता है। लेखक का यह परम सौभाग्य है कि हिन्दी जगत् के प्रकाण्ड विद्वान् एवं मूर्धन्य लेखक डॉ० विनय मोहन जी शर्मा, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा डीन, कला-संकाय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का उस पर सदैव वरद हस्त रहा है। प्रस्तुत शोध-कार्य की परिपूर्णता, आचार्य जी के स्नेहपूर्ण, अपरिमित आशीर्वाद का शुभ फल है। पूज्य आचार्य जी के प्रेरणापूर्ण प्रोत्साहन के निमित्त, लेखक सदैव उनका ऋणी रहेगा। डॉ० पद्मसिंह जी शर्मा, 'कमलेश', रीडर, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, के बहुमूल्य सुझावों से, लेखक लाभान्वित होता रहा है। लेखक, श्रद्धेय डाक्टर साहब के प्रति उनकी असीम कृपा-दृष्टि के हेतु, हृदय से आभार प्रकट करता है। राहुल जी के उपन्यासों की ऐतिहासिकता से सम्बद्ध विषयों में श्रद्धेय डॉ० बुद्धप्रकाश जी, निदेशक, प्राच्य-विद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की ओर से जो अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए, उनके लिये लेखक, डाक्टर साहब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। लेखक, डॉ० विद्याभूषण तनेजा, प्रिंसिपल, शिक्षण महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र की सद्भावनाओं एवं उनकी ओर से प्राप्त, सतत प्रोत्साहन के लिये हृदय से कृतज्ञ है। शोध-कार्य की अवधि में, श्रीमती कमला सांकृत्यायन की ओर से राहुल जी के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं से सम्बद्ध विषयों में, जो जानकारी, पत्र-व्यवहार द्वारा, प्राप्त होती रही है, उसके लिये लेखक हृदय से उनका आभारी है। लेखक को अपने पूज्य पिता जी (पं० हरिदत्त जी मिश्र, शास्त्री) की ओर से शोध-कार्य के समय, जो प्रौढ़ एवं बहुमूल्य सुझाव प्राप्त होते रहे हैं, उनके लिये जितनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की जाय, थोड़ी है। कृतज्ञता-ज्ञापन के औपचारिक शब्दों द्वारा लेखक पूज्य पिता जी के शुभाशीर्वाद के महत्त्व को घटाना नहीं चाहता। लेखक, निज जन्मदात्री, मंगलकामिनी एवं स्नेहमयी जननी के वात्सल्यपूर्ण एवं परम-पुनीत शुभाशीर्वाद के निमित्त सदैव ऋणी रहेगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, श्रद्धेय डॉ० शशिभूषण जी सिंहल, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। शोध-प्रबन्ध

की रूप-रेखा से लेकर शोध-कार्य के पूर्ण होने तक, श्रद्धेय डॉ० साहब की ओर से जो विद्वत्तापूर्ण निर्देशन प्राप्त होता रहा है, उससे उऋण होने में लेखक सर्वथा असमर्थ है। श्रद्धेय डाक्टर साहब ने, जिस तत्परता एवं स्नेह से, लेखक का पथ-प्रदर्शन किया है, उसके लिये वह सदैव हृदय से कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रकट करता रहेगा।

प्रसादादिष्ट देवस्य विदुषां चानुकम्पया।
राहुलस्य महाकीर्तेः समीक्षा पूर्तिमागता॥

लेखक

दिनांक १०-११-१९६५

विषय-सूची

प्रथम अध्याय—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व

बालक केदार	१७
राहुल जी का अननेल विवाह	१८
राहुल जी 'घुमक्कड़' क्यों बने ?	२०
राहुल जी का घुमक्कड़ी जीवन	२३
राहुल सांकृत्यायन और धर्म	३०
राहुल जी और राजनीति	३६
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	४४

द्वितीय अध्याय—राहुल जी की रचनाएं तथा साहित्यिक कृतियाँ

राहुल—बहुमुखी प्रतिभा	४७
राहुल जी की प्रकाशित रचनाएं	४८
अप्रकाशित राहुल-साहित्य	६०
राहुल जी की हिन्दी साहित्यिक रचनाएं	६१

तृतीय अध्याय—कथा-साहित्य तथा राहुल जी द्वारा रचित उपन्यास एवं कहानियां

कथा-साहित्य—साहित्य का मुख्य अंग	६४
उपन्यास का स्वरूप	६४
कहानी का स्वरूप	६६
उपन्यास और कहानी	६९
उपन्यास और कहानी के तत्त्व	७०
कथावस्तु	७०
कथावस्तु के गुण	७१
चरित्र-चित्रण	७१
कथोपकथन	७२
वातावरण	७२
भाषा-शैली	७३

उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन ७३
उपन्यासों का वर्गीकरण ७४
कहानियों का वर्गीकरण ७६
राहुल जी के उपन्यास ७७
राहुल जी द्वारा रचित उपन्यासों का वर्गीकरण ७६
(अ) तत्वों के आधार पर ७६
(ब) वर्ण्य-विषय के आधार पर ७६
राहुल जी के कहानी-संग्रह ८१
राहुल जी की कहानियों का वर्गीकरण ८२
(अ) तत्वों के आधार पर ८२
(ब) वर्ण्य-विषय के आधार पर ८३

चतुर्थ अध्याय—राहुल जी के उपन्यासों का अध्ययन

(कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं जीवन-दर्शन के तत्वों की दृष्टि से)

(क) राहुल जी के उपन्यासों का कथावस्तु की दृष्टि से विश्लेषण

जीने के लिए—कथा-सूत्र ८४
कथा-विश्लेषण ८५
सिंह सेनापति—कथा-सूत्र ८७
कथा-विश्लेषण ८८
सिंह सेनापति की ऐतिहासिकता ८६
जय-यौधेय—कथा-सूत्र ९२
कथा-विश्लेषण ९२
जय-यौधेय की ऐतिहासिकता ९३
मधुर स्वप्न—कथा-सूत्र ९६
कथा-विश्लेषण ९८
मधुर स्वप्न की ऐतिहासिकता ९९
विस्मृत यात्री—कथा-सूत्र १०१
कथा-विश्लेषण १०२
विस्मृत यात्री की ऐतिहासिकता १०३
दिवोदास—कथा-सूत्र १०५
कथा-विश्लेषण १०६

दिवोदास की ऐतिहासिकता	१०७
राहुल जी के उपन्यासों का कथा-शिल्प	१०८
राहुल जी के उपन्यासों में ऐतिहासिकता का तत्त्व	१११
(ख) राहुल जी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण	
चरित्र-चित्रण	११३
चित्रण-प्रणालियाँ	११४
राहुल जी के औपन्यासिक पात्रों का वर्गीकरण	११६
राहुल जी के पात्रों का चरित्र-चित्रण	११६
(नायक पात्र) देवराज	११६
सिंह	११८
जय	११९
शाह क्वात्	१२१
नरेन्द्रयश	१२२
दिवोदास	१२३
आक्रमणकारी शासक-पात्र	१२४
मित्र-पात्र	१२६
नारी-पात्र	१२९
राहुल जी के उपन्यासों की पात्र-चित्रण-कला	१३१
(ग) राहुल जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि	
उपन्यासों के घटनास्थल	१३४
उपन्यासों का कालक्रम तथा राजनीतिक अवस्था	१३५
सामाजिक अवस्था	१३६
(अ) खान-पान तथा रहन सहन	१३७
(ब) आर्थिक अवस्था	१३७
(स) धार्मिक अवस्था	१३८
(द) सांस्कृतिक अवस्था	१४०
प्रकृति-चित्रण	१४२
निष्कर्ष	१४५
(घ) राहुल जी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन	
जीवन-दर्शन	१४५
यथार्थ और आदर्श	१४६
राहुल जी के उपन्यासों में व्यक्त जीवन-दर्शन	१४७
मानव-जीवन और राहुल जी	१४७
(राहुल जी के उपन्यासों में) मानव-जीवन और यात्रा	१४८
मानव-जीवन और प्रेम	१४९
मानव और धर्म	१५०

सामाजिक रूढ़ियाँ १५४
साम्यवाद १५६
गणतंत्र १५८
राहुल जी के उपन्यासों का उद्देश्य १५९
पंचम अध्याय—राहुल जी की कहानियों का अध्ययन
(कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं उद्देश्य के तत्त्वों की दृष्टि से)
(क) राहुल जी की कहानियों का कथावस्तु की दृष्टि से विश्लेषण १६२
राहुल जी की वातावरण-चित्रण-प्रधान कहानियों के कथा-सूत्र १६२
(क) 'सतभी के बच्चे' कहानी-संग्रह की कहानियों के कथा-सूत्र १६२
(ख) 'वोल्गा से गंगा' कहानी-संग्रह की कहानियों के कथा-सूत्र १६४
चित्रण-प्रधान कहानियों का कथा-विश्लेषण १६८
राहुल जी की चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियों के कथा-सूत्र १७२
चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियों का कथा-विश्लेषण १७६
राहुल जी की कहानियों का कथा-शिल्प १७७
(ख) राहुल जी की कहानियों में पात्र और चरित्र-चित्रण
राहुल जी की कहानियों के पात्रों का वर्गीकरण १८१
राहुल जी की कहानियों के पात्रों का चरित्र-चित्रण १८३
स्वकेन्द्रित पात्र १८२
(राहुल जी के) समाज-सुधारक पात्र १८३
परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र १८८
राहुल जी की कहानियों में पात्र-चित्रण कला १९०
(ग) राहुल जी की कहानियों में वातावरण-सृष्टि
कहानियों के घटनास्थल १९२
कहानियों का कालक्रम तथा राजनीतिक अवस्था १९३
सामाजिक अवस्था १९५
(अ) खान-पान तथा रहन-सहन १९५
(ब) आर्थिक अवस्था १९६
(स) धार्मिक स्थिति १९७
(द) सांस्कृतिक स्थिति १९७
प्रकृति-चित्रण २००
निष्कर्ष २०२

(घ) राहुल जी की कहानियों में उद्देश्य-तत्व

मानवता का विकास और राहुल जी — २०४

(राहुल जी की कहानियों में) प्रकृति का रहस्य और

मानव की आस्था — २०६

मानव और धर्म — २०७

मानव-जीवन और प्रेम — २०८

सामाजिक रूढ़ियाँ — २०८

साम्यवाद — २०९

गणतंत्र — २१०

राहुल जी की कहानियों का उद्देश्य — २११

षष्ठ अध्याय—राहुल जी के उपन्यासों तथा कहानियों का कथोपकथन भाषा एवं लेखन-शैली की दृष्टि से विश्लेषण

(क) राहुल जी के उपन्यासों तथा कहानियों में कथोपकथन — २१४

राहुल जी के सहज कथोपकथन — २१४

कथोपकथन द्वारा विषय-प्रतिपादन — २१८

लम्बे कथोपकथन — २२१

राहुल जी के कथोपकथनों में नाटकीयता का अभाव — २-७

राहुल जी के कथोपकथनों में भावानुरूपता का अभाव — २२८

कथोपकथनों में लोकभाषा का प्रयोग — २३०

राहुल जी के मुसलमान पात्रों की अस्वाभाविक भाषा — २३१

'दिवोदास' उपन्यास के संवाद — २३१

निष्कर्ष — २३३

(ख) उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की भाषा

राहुल जी की भाषा के विविध रूप — २३४

(क) सरल हिन्दी — २३४

(ख) संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त हिन्दी — २३५

(ग) उर्दू मिश्रित हिन्दी — २३६

फारसी शब्द — २३७

अरबी शब्द — २३८

राहुल जी की भाषा में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग — २३९

राहुल जी की भाषा में स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग — २४१

राहुल जी की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग — २४१

राहुल जी की भाषा में व्याकरण सम्बन्धी असंगतियाँ — २४२

'दिवोदास' उपन्यास की भाषा २४३
निष्कर्ष २४४
(ग) उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की लेखन-शैली
राहुल जी की लेखन-शैली में वर्णन की प्रधानता २४७
(क) घटना-चित्र में वर्णन की प्रधानता २४७
(ख) पात्र-चित्र में वर्णन की प्रधानता २४८
(ग) वातावरण-चित्र में वर्णन की प्रधानता २५०
(घ) राहुल जी के भावात्मक चित्र २५१
(ङ) राहुल जी के व्यंग्यात्मक चित्र २५२
राहुल जी की शैली में शिथिलता २५३
राहुल जी द्वारा विशेषणों का प्रचुर प्रयोग २५५
" " उपमाओं का प्रयोग २५६
" " मुहावरों का प्रयोग २५७
" " लोकोक्तियों का प्रयोग २५८
" " सूक्तियों का प्रयोग २५९
निष्कर्ष २६०
सप्तम अध्याय—उपसंहार : राहुल जी का कथा-साहित्य
राहुल जी की उपन्यास-कला २६२
राहुल जी की कहानी-कला २६५
हिन्दी कथा-साहित्य और राहुल जी २६८
परिशिष्ट
परिशिष्ट १—श्रीमती कमला सांकृत्यायन के कुछ पत्र
पत्र सं० १, दिनांक २४-७-६३ २७१
" २, " २५-११-६३ २७१
" ३, " २५-६-६४ २७२
" ४, " १७-८-६५ २७३
" ५, " १८-९-६५ २७५
परिशिष्ट २—सहायक ग्रंथ-सूची
(क) श्री राहुल सांकृत्यायन के कहानी-संग्रह एवं उपन्यास २७७
(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी) २७७
(ग) सहायक कोश २७९
(घ) सहायक पत्र-पत्रिकाएं २७९
(ङ) सहायक ग्रंथ (अंग्रेजी) २८०

प्रथम अध्याय

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का व्यक्तित्व

बालक केदार

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का जीवन उस सहज सरिता का प्रवाह है जो सम-विषम स्थलों की चिन्ता न कर स्वच्छन्द गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती रहती है। कौन जानता था कि एक छोटे से ग्राम के साधारण परिवार में जन्म लेने वाला केदार एक दिन 'महापण्डित' की उपाधि से देश-विदेशों में विख्यात होगा।

राहुल सांकृत्यायन का बचपन का नाम केदारनाथ पाण्डेय था। इनके पूर्वज सरयूपारीण ब्राह्मण थे। वे मचैया ग्राम के रहने वाले थे जो गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) में है। बाद में इनके पूर्वज आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) चले आये थे। चक्रपाणि नामक एक पूर्वज को उनके यजमान मेहनगार के राजा ने इक्यावन बीघा भूमि दान में दी थी। चक्रपाणि ने उस भूमि में अपने नाम पर (चक्रपाणिपुर) ग्राम बसाया जो आज भी वर्तमान है। परिवार बढ़ने से चक्रपाणि के वंशज कई समीपस्थ ग्रामों में फैल गये। चक्रपाणि की कुछ पीढ़ियों के अनन्तर इस परिवार के इच्छापाण्डे चकरपान-पुर (चक्रपाणिपुर) से कनैला ग्राम (जिला आजमगढ़) में आ बसे। उनके वंशज अब भी इस ग्राम में रह रहे हैं। इच्छापाण्डे की छठी पीढ़ी में केदारनाथ का जन्म हुआ।

केदारनाथ के पितामह का नाम 'जानकी' पाण्डे और पिता का नाम गोवर्धन पाण्डे था। केदार के नाना का नाम रामशरण पाठक और माता का नाम श्रीमती कुलवन्ती था। कुलवन्ती अपने माता पिता की एक मात्र सन्तान थीं। इस लिए विवाह हो जाने पर वे अधिकतर अपने पिता के गाँव पन्दहा में रहा करती थीं। केदार का जन्म रविवार ९ अप्रैल, सन् १८९३ ई० को ननिहाल पन्दहा (आजमगढ़) में हुआ था। पन्दहा और केदार के पितृग्राम कनैला के बीच दस मील का अन्तर है। कनैला ग्राम आजमगढ़ नगर से सोलह मील दक्षिण, मुहम्मदाबाद तहसील में, आजमगढ़ से तरवा थाना जाने वाली सड़क पर स्थित है। कनैला ग्राम के दक्षिण में मार्गवती (मेगई) नदी बहती है।

नाती केदार के जन्म से उनके नाना और नानी को अपार आनन्द हुआ। अपनी माँ से अलग रहने योग्य हो जाने पर केदार के नाना नानी ने उन्हें अपने पास

रख लिया। वे उनसे बहुत स्नेह करते थे। अपनी माँ के अनुकरण पर केदार अपनी नानी को 'माँ' कहा करते थे। बचपन में केदार को खेल-कूद का बहुत चाव था। वह अपने साथियों के साथ हापड़ (देहाती हाकी), गिली डंडा, कबड्डी आदि खेल खेला करते थे।

बचपन में केदार के दुबले-पतले शरीर के कारण उनके नाना-नानी उनके खानपान का विशेष ध्यान रखते थे। वे वैष्णव थे और मांस नहीं खाते थे पर अपने नाती के लिए मछली-मांस का प्रबन्ध करने में वे कोई संकोच न करते थे। केदार को दाल से चिढ़ थी। वे दूध-दही, खांड या शीरा तथा मछली एवं और तरकारियों से रोटी खाना पसन्द करते थे। केदार के बचपन की वेशभूषा वैसी ही थी जैसी कि वहाँ के लोग पहनते थे—धोती, कुरता। गाँव के और लड़कों की भाँति उनके लिये भी जूता पहनना आवश्यक था। सन् १९०४ ई० में उनके फुफेरे भाई यागेश के विवाह में पहले पहल ग्यारह वर्ष की आयु में केदार के लिये जूता खरीदा गया था।[१]

"पढ़ेगा नही, तो बैठना तो सीखेगा" ।—इस उद्देश्य को सम्मुख रख केदार को नवम्बर, सन् १८९८ ई० में "रानी की सराय" के प्राइमरी स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। नाना की धारणा थी कि हिन्दी से उर्दू का महत्व अधिक है। इसलिये केदार को उर्दू पढ़ाना आरम्भ कराया गया। हिन्दी पढ़ने वाले साथियों के सम्पर्क से हिन्दी सीखने की ओर केदार का ध्यान गया। सन् १९०३ ई० में केदार ने दर्जा दो पास कर लिया। "रानी की सराय" के प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर लेने पर उनको फरवरी, सन् १९०६ ई० में निजामाबाद के मिडिल स्कूल में भेजा गया। सन् १९०८ ई० में उन्होंने इस स्कूल से उर्दू मिडिल भी पास कर लिया।

अनमेल विवाह

ग्यारह वर्ष की अबोध अवस्था में अर्थात् सन् १९०४ ई० में केदार को समाज की तत्कालीन कुप्रथाओं का शिकार होना पड़ा। उनका विवाह अहिरौला ग्राम (जिला आजमगढ़) के एक धनी ब्राह्मण की सुन्दर कन्या 'सन्तोषी' से कर दिया गया।[२]

---

[१] मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृ० १४

[२] राहुल जी यौन सम्बन्धों और विवाह में स्वच्छन्दतावादी रहे हैं। (कृपया देखिये अध्याय ४) राहुल जी ने दूसरा विवाह मिस 'लोला' नाम की रूसी महिला से सन् १९३७ ई० में किया। (मेरी जीवन-यात्रा राहुल भाग २, पृ० ४५६) अब वह पत्नी अपने पुत्र 'इगोर राहुलोविच सांकृत्यायन' सहित रूस में रह रही है। तीसरा विवाह राहुल जी ने श्रीमती कमला जी से सन् १९५० ई० में किया। यह सम्बन्ध उन्होंने स्थायी रूप से निभाया। कमला जी अपनी दो संतानो सहित इस समय दार्जिलिंग में निवास कर रही हैं। (देखिये कमला जी का २५-६-६४ का पत्र परिशिष्ट)।

विवाह के समय केदार की आयु और रुचि की ओर ध्यान नहीं दिया गया। सन्तोषी (केदार की पत्नी) अपने पति से पाँच वर्ष बड़ी थीं। विवाह के बाद केदार के साथी उन्हें चिढ़ाने लगे। कहने लगे कि तुम्हें बूढ़ी स्त्री मिली है। ऐसी बातें उनके मन को दुःख पहुँचाती थीं। इसीलिए वे अपनी ननिहाल से पितृग्राम कम ही आते थे। आने पर वे पत्नी से न तो मिलते थे और न ही उससे बोलते थे। अपने इस विवाह की चर्चा करते हुये राहुल जी (बचपन के केदार) ने अपनी जीवनी में लिखा है—"उस वक्त ग्यारह वर्ष की अवस्था में मेरे लिये यह तमाशा था। जब मैं सारे जीवन पर विचारता हूँ, तो मालूम होता है समाज के प्रति विद्रोह का अंकुर पैदा करने में इसने ही पहला काम किया।"[1] केदार ने बचपन में जिसे "तमाशा" समझा था, वह उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

केदार का उस समय का ज्ञान बहुत परिमित था तथापि वे अपनी सतर्क बुद्धि से इस विवाह को घर एवं समाज द्वारा अपने प्रति किया हुआ अन्याय समझते थे। ऐसे विवाह को वे न्याय विरुद्ध मानते थे और इस बन्धन को तोड़ डालने के लिए छटपटा रहे थे। इस प्रसंग में राहुल जी ने लिखा है—"यदि सयानों ने जिम्मेवारी नहीं समझी और एक अबोध व्यक्ति को फंदे में फँसा दिया, तो यह आशा रखनी कहाँ तक उचित है कि शिकार फंदे को उसी तरह पैर में डाले पड़ा रहेगा।"[2] राहुल सांकृत्यायन जहाँ अपने आपको ऐसे विवाह-पाश से मुक्त करने के पक्ष में थे वहाँ वे उस परिणीता द्वारा स्वतंत्र मार्ग अपनाये जाने के पक्ष में भी थे। इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है—"यदि वह समझती है, कि उस पर अन्याय हुआ है, तो समाज से बदला लेती, वह अपना रास्ता लेने के लिए स्वतंत्र है।"[3] पर प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे विचार प्रकट करने से राहुल जी अपनी प्रथम परिणीता के प्रति उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकते हैं।

इस प्रश्न पर लोगों ने बहुत चर्चा की है। कुछ लोगों ने राहुल जी द्वारा अपनी प्रथम पत्नी के प्रति किये गये इस व्यवहार को अन्याय समझा है। वे कहते हैं कि राहुल जी ने अपनी इस पत्नी के जीवन को दुःखमय बनाकर कहीं अधिक अन्याय किया है। राहुल जी को करुणा का अवतार बताया जाता है। पर उक्त घटना को जानकर हमारी इस धारणा को बड़ा धक्का लगता है। बाद में राहुल जी ने अपने इस कृत्य पर दुख भी प्रकट किया। यहाँ पर इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। सन् १९५८ ई० की बात है। राहुल जी ने सुना कि उनकी प्रथम परिणीता बीमार होकर इलाज करवाने के लिए वाराणसी आई हुई हैं। वे उससे मिलने गये। तब तक उनकी धर्मपत्नी अपने गाँव (आजमगढ़) चली गई थीं। वहाँ उनके भतीजे उदयनारायण पाण्डेय थे। राहुल जी ने पाण्डेय जी से कहा—

---

1 मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृ० ३२
2 घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २०
3 घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० २०

"मैं तुम्हारी चाची से मिलना चाहता था, परन्तु उनसे न मिल सका। तुम उनसे कहना कि मैंने उनके साथ जो कुछ किया वह करना पड़ा। मुझे उसका दुःख है। यदि गृहत्याग न करता तो अपने उद्देश्य की पूर्ति न कर पाता।"[1] कहते-कहते राहुल जी की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे और कुछ न कह सके। राहुल जी ने अपने इस कार्य का कारण हृदयहीनता नहीं, अपितु कर्तव्य के प्रति निष्ठा कहा है। पर उनके इतना कहने से क्या क्षतिपूर्ति हो सकती है? उनकी प्रथम पत्नी अपने गाँव में अब तक जीवित है और बुढ़ापे के कष्ट भोग रही है।

राहुल जी 'घुमक्कड़' क्यों बने?

केदारनाथ (भविष्य के राहुल) के पिता की इच्छा थी कि वे मिडिल से आगे पढ़ें पर केदार का मन कहीं और ही था। उन्हें घर का बन्धन अच्छा न लगा। वे घूमना चाहते थे। उनकी इस प्रवृत्ति के कई कारण थे। उनके नाना सेना में सिपाही रह चुके थे। उन्होंने दक्षिण भारत की खूब सैर की थी और अपने सैनिक जीवन-काल में अफसरों के सामने यथेष्ट कारनामे दिखाये थे। अब अपने अवकाशकाल में वे विगत जीवन की कहानियाँ बड़े चाव से सुनाया करते थे। यात्रा-प्रेम, केदार के मन में इन कहानियों से ही अंकुरित हुआ था।

केदारनाथ के मन में यात्रा प्रेम जाग्रत करने में एक अन्य कारण भी सहायक था। उन्होंने अपनी पाठ्य-पुस्तक (मौ० इस्माईल की उर्दू की चौथी किताब) में नवाजिन्दा बाजिन्दा की कहानी 'खुदराई का नतीजा' पढ़ी। इस कहानी में निम्न-लिखित एक शेर था :

> सैर कर दुनियाँ की ग़ाफ़िल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ।
> ज़िन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ?॥

इस शेर के संदेश ने केदार के मन को यात्राओं के लिये प्रोत्साहन दिया।[2]

परिस्थितियों ने केदार की इस प्रवृत्ति को उकसाया। अल्पावस्था में ही उनका प्रथम विवाह हो गया था। यह विवाह उनकी रुचि के विरुद्ध था। उनकी माता का भी देहान्त हो चुका था। अतः घर में उन्हें अब कोई आकर्षण शेष न था। केदार के नाना के अपने भतीजों के साथ जमीन सम्बन्धी झगड़े-बखेड़े चल रहे थे। केदार का मन उन संकीर्ण झंझटों के कारण और दुःखी रहने लगा। इसी बीच वे उमरपुर के बाबा परमहंस के पास जाने लगे। बाबा परमहंस भारत भ्रमण कर चुके थे। वह प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से कहा करते थे कि दुनिया देखो। केदार घर की ओर से अन्यमनस्क थे ही, उन्हें बाबा परमहंस की यह बात अच्छी लगी। इन सभी कारणों ने मिलकर केदार के घुमक्कडी जीवन का सूत्रपात किया।

आगे चलकर केदार ने राहुल सांकृत्यायन के रूप में स्वयं पूर्ण घुमक्कड़ बन जाने पर दूसरों को भी घुमक्कड़ी के लिए प्रोत्साहित किया और घुमक्कड़ों के

---

[1] साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ३० जून, १९६३, पृ० ३१
[2] मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृष्ठ ३०

निर्देशन के लिए 'घुमक्कड़ शास्त्र' तक लिख डाला। 'घुमक्कड़ शास्त्र' और राहुल जी के अन्य यात्रा-ग्रन्थों का अध्ययन करने से उन सूत्रों का ज्ञान होता है जो राहुल जी को घुमक्कड़ी के लिए प्रेरित करते रहे थे।

जीवन और जगत सम्बन्धी अनुभव प्राप्ति की परम लालसा राहुल जी की घुमक्कड़ी वृति का मूलाधार रही है। उन्होंने अनुभव किया कि एक ही स्थान पर स्थिर रहने से मनुष्य के अनुभव सीमित हो जाते हैं। भ्रमण से मनुष्य नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करता है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण विकसित होता है। उसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना जाग्रत होती है। भिन्न-भिन्न विचारों और सम्प्रदायों के सम्पर्क में आने से विचार-सहिष्णुता की भावना उत्पन्न होती है। अपनी यात्राओं के फलस्वरूप राहुल जी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी बदला। सम्प्रदायों को छोड़ वे मानवतावादी बने। विचारसहिष्णु बने।

विचार सहिष्णु बनने के साथ यात्रा अनुभवों द्वारा मनुष्य कष्ट-सहिष्णु भी बनता है। उसे दुर्गम स्थानों को पार करना पड़ता है, अन्य पशुओं का डर बना रहता है। कभी तो सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, वर्षा आँधी के कारण यात्री को पग-पग पर कष्टों का सामना करना पड़ता है। यात्रा के कष्टों ने राहुल जी को कष्ट-सहिष्णु बना दिया था। दुर्गम स्थानों को वे खुशी खुशी पार कर लेते थे। खान-पान, सुख-आराम की विशेष चिन्ता के बिना वे अपने मार्ग पर बढ़ते रहते थे। यह उनकी कष्ट-सहिष्णुता का ही परिणाम था कि बाद के जीवन की जेल-यातनायें उन्हें सह्य बन गईं। यात्री कभी आलस्य का अनुभव नहीं करता, यह बात राहुल जी के जीवन से पूर्णतया सिद्ध होती है। राहुल जी ने न कभी थकावट अनुभव की और न आलस्य को ही पास फटकने दिया। रात हो या दिन, किसी का साथ हो या अकेले, वे घुमक्कड़ी के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

घुमक्कड़ का मन देश-विदेश के लोगों के रहन-सहन, उनकी भाषा, उनके विचार और उनके रीति-रिवाजों की ओर आकर्षित होता रहा है। वहाँ की प्रकृति उसके मन को रमाती है। ये सभी आकर्षण, घुमक्कड़ को उसकी व्यक्तिगत चिन्ताओं से मुक्ति प्रदान करते हैं। उसमें विशेष प्रकार की मस्ती आ जाती है। राहुल जी में यह मस्ती थी। संसार की अड़चनें उनकी घुमक्कड़ी में बाधा नहीं डाल सकती थीं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उन्हें लोगों से प्रेम नहीं था, सहानुभूति नहीं थी। परिचितों से सम्बन्ध रखने पर भी वे अपने आप को मोह-माया से निर्लिप्त रखते थे। उन्हें अपने सुख-दुःख की चिन्ता न थी। न ही दूसरों के सुख दुःख उन्हें उनके यात्रा-पथ से विचलित करते थे। यात्रा करते समय नित्य उनके नये व्यक्तियों से सम्बन्ध बनते थे, पर उन्हें स्नेह-सूत्रों का बन्धन न मानकर वे आगे बढ़ते रहते थे। यात्रा से वे वैराग्यवृत्ति का निराला सुख अनुभव करते थे।

राहुल जी के विचारानुसार वैराग्य से अभिप्राय यह नहीं कि घुमक्कड़ का अपनी जन्मभूमि से प्रेम छूट जाता है। वास्तव में जन्मभूमि के लिए प्रेम पूर्णतया तभी

जाग्रत होता है जब व्यक्ति दूर देशों में भ्रमण करता है। तभी मातृभूमि का मनोरम चित्र उसके मानसपटल पर उभरता है। साथ ही राहुल जी का यह विचार था कि यदि जन्मभूमि का मोह हमारे पैरों को पकड़ कर हमें जंगम से स्थावर बनाना चाहे तो यह जीवन का उदय नहीं है। प्रत्येक मनुष्य का अपनी मातृभूमि के प्रति एक कर्तव्य होता है, जो मन में उसकी मधुर स्मृति और कार्य द्वारा कृतज्ञता प्रकट कर देने मात्र से पूरा हो जाता है। राहुल जी यद्यपि देश-विदेशों की यात्रा करते रहे पर अपनी जन्मभूमि भारत को कभी नहीं भूले।

घुमक्कड़ चाहे धनी कुल में उत्पन्न हो या निर्धन घर में, उसमें अन्य गुणों के अतिरिक्त स्वावलम्बन का होना आवश्यक है। राहुल जी सम्पत्ति और धन के आश्रय को घुमक्कड़ी के मार्ग में बाधक मानते थे। उनका विचार था कि सोने-चाँदी के बल पर सैर करने वालों को 'घुमक्कड़' कहना इस महान शब्द के प्रति भारी अन्याय करना है। घुमक्कड़ को जेब पर नहीं, प्रत्युत अपनी बुद्धि एवं बाहुबल तथा साहस पर भरोसा रखना चाहिये। उसे समझ लेना चाहिये कि भले ही उसका रास्ता फूलों का न हो किन्तु उसे सहारा देने वाले मनुष्य प्रत्येक स्थान पर मिलेंगे। मानवता के इन हाथों के सहारे ही राहुल जी जीवन भर यात्रा करते रहे। लोग आश्चर्य करते हैं कि बिना किसी निश्चित आय के वे इतनी लम्बी यात्रायें कैसे करते थे। राहुल जी स्वावलम्बी थे। उन्हें अपनी बुद्धि और साहस पर भरोसा था। अपने इस स्वभाव के कारण यात्राओं में उन्हें किसी प्रकार के अभाव का अनुभव न होता था। वे जहाँ पहुँचते उनका स्वागत होता और आगे की यात्रा के लिए समुचित प्रबन्ध कर दिया जाता था।

घुमक्कड़ी के लिए, राहुल जी निश्चिन्तता को भी आवश्यक समझते थे। वे कहा करते थे कि घुमक्कड़ी वही कर सकता है जो निश्चिन्त है। पारिवारिक माया-मोह या सांसारिक सुख को घुमक्कड़ी के सामने वे तुच्छ समझते थे। वे घुमक्कड़ी से बढ़ कर कोई सुख नहीं मानते थे। माता-पिता के स्नेह सूत्र को तोड़ कर घुमक्कड़ी धारण करना वे अनुचित नहीं मानते थे। राहुल जी ने घर के स्नेह-बन्धन को तोड़ा, घर की सुविधाओं को छोड़ा और घुमक्कड़ी धारण की। उनके पिता ने तथा दूसरे व्यक्तियों ने उन्हें बहुत समझाया, यात्राओं की आपत्तियों के डर भी दिखाये पर राहुल जी अपने संकल्प से कभी विचलित नहीं हुये।

घुमक्कड़ी के लिये, राहुल जी, जहाँ माता-पिता के स्नेहमय बन्धन को भी तोड़ डालने के पक्ष में थे वहाँ वे पत्नी के स्नेह बन्धन एवं उत्तरदायित्व को भी स्वीकार नहीं करते थे। वे कहते थे कि माता-पिता अपने बच्चों को घुमक्कड़ बनने से रोकने के लिए और उपायों के साथ उनका विवाह अल्पायु मे कर देते हैं। इस कार्य को राहुल जी अन्याय समझते थे। वे कहते थे कि इस अवैध बेड़ी को तोड़ फेंकने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है। ऐसे विवाह-बन्धन में फँस कर घुमक्कड़ यदि अपनी 'मिथ्या परिणीता' को छोड़ता है तो वह घर और संपत्ति को उठाकर

अपने साथ नहीं ले जाता। यदि लकड़ी वाले ने लड़के को न देख केवल घर को ही देख कर विवाह किया है तो घर वहीं विद्यमान है, वह लड़की रहे वहाँ पर। राहुल जी का यह निजी अनुभव भी था उन्हें अल्पायु में ऐसे "बन्धन" में डाला गया था। पर उन्होंने इस विवाह-सम्बन्ध को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सदा अपने को इस बन्धन से मुक्त समझा और निश्चिन्त होकर घुमक्कड़ी की।

राहुल जी ने घुमक्कड़ी को सबसे बड़ा धर्म बताया है। उनका कहना है कि संसार में यदि कोई सनातन धर्म है तो घुमक्कड़ी। सृष्टि की नींव ही घुमक्कड़ी पर आधारित है। आदिम पुरुष यदि एक स्थान पर नदी या तालाब के किनारे गर्म मुल्क में पड़े रहते तो वे दुनिया को आगे नहीं ले जा सकते थे। शंकर को 'शंकर' किसी ब्रह्म ने नहीं बनाया, उन्हें बड़ा बनाने वाला था यही घुमक्कड़ी धर्म। बुद्धधर्म को जन्म देने वाले महात्मा बुद्ध एक महान् घुमक्कड़ थे। जैन धर्म के प्रतिष्ठापक महावीर भी घुमक्कड़ थे। सिक्ख मत के संस्थापक गुरुनानक अपने समय के महान् घुमक्कड़ थे। स्वामी दयानन्द को ऋषि दयानन्द किसने बनाया ? इसी घुमक्कड़ी धर्म ने। प्रभु ईसा भी घुमक्कड़ थे। इस प्रकार राहुल जी ने घुमक्कड़ी को सब से बड़ा धर्म सिद्ध किया है। घुमक्कड़ होना, वे आदमी के लिये परम सौभाग्य की बात मानते थे। राहुल जी ने सभी धर्मों से ऊपर घुमक्कड़ी धर्म को माना था। इस धर्म को उन्होंने जीवनान्त तक नहीं छोड़ा।[1]

"घुमक्कड़ी" को सर्वश्रेष्ठ विभूति बताने के साथ साथ राहुल जी तरुण-तरुणियों को उपदेश देते हुए कहते हैं—'दुनिया में मानुष-जन्म एक ही बार होता है और जवानी भी केवल एक ही बार आती है। साहसी और मनस्वी तरुण-तरुणियों को इस अवसर से हाथ नहीं धोना चाहिये। कमर बाँध लो भावी घुमक्कड़ो, संसार तुम्हारे स्वागत के लिये बेकरार है।'[2]

राहुल जी का घुमक्कड़ी जीवन

जिस घुमक्कड़ी का राहुल जी ने उपदेश किया है वह उन जैसे साहसी एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति द्वारा ही अपनाई जा सकती है। यह केवल उन्हीं के लिये सम्भव था कि समाज की समस्याओं के प्रति पूर्णतया जागरूक रहते हुए भी वे निश्चिन्त घुमक्कड़ बन सके। राहुल जी जिस कार्य में लगते थे, पूर्णतया दत्तचित होकर लगते थे। तभी घुमक्कड़ी उनके लिये अनुपम निधि बन सकी। घुमक्कड़ी से उन्हें देश-विदेशों में ख्याति मिली, जीवन और जगत के अनुभव प्राप्त हुए तथा साहित्यिक कार्यों के लिए दुर्लभ सामग्री हस्तगत हुई। इसी ने उन्हें पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार बनाया। बौद्ध-धर्म के महत्वपूर्ण ग्रन्थों और तालपोथियों की खोज,

---

[1] "घुमक्कड़ शास्त्र" के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, दशम, तथा पंच दशम अध्यायों के आधार पर।

[2] घुमक्कड़ शास्त्र, पृ० ११

उनकी घुमक्कड़ी का ही परिणाम है। इस घुमक्कड़ी में राहुल जी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया।[१]

घर से भागना राहुल जी ने सन् १६०७ ई० से ही आरम्भ कर दिया था। पर उनकी नियमित यात्राओं का आरम्भ सन् १६१० ई० से मानना चाहिए जबकि उन्होंने उत्तराखण्ड की यात्रा की। सन् १६१० ई० से सन् १६२१ ई० तक की अवधि में उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों की यात्रा की। इस काल में वे पूर्व में कलकत्ता, उत्तर पश्चिम में लाहौर और दक्षिण में बंगलौर तक घूमे, विभिन्न तीर्थों और नगरों की यात्रा की।

---

१ राहुल जी की मुख्य यात्राओं का विवरण इस प्रकार है—१. प्रथम बार सन् १६०७ में राहुल—(उस समय के केदारनाथ)—घर से भागकर कलकत्ता पहुँचे। पर पैसों की कमी के कारण घर वापस आगए।

२. सन् १६१० ई० में केदारनाथ ने उत्तराखण्ड की ओर जाने का निश्चय किया। पहली दो उड़ानों में पंख रुपए के थे, उनके बिना वह अपने को पंगु समझते थे। इस बार वैराग्य का संबल उनके साथ था। कनैला से केदार हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से उन्होंने केदारनाथ तथा बदरीनाथ की यात्रा की।

३. सन् १६१२ ई० में केदारनाथ महन्त लछुमनदास के पास "परसा" मठ में आगए। उनको वैष्णव वैरागी साधु बना लिया गया और उनका नाम राम-उदारदास रखा गया। पर संस्कृत के अध्ययन का कोई प्रबन्ध न देख राम उदार परसा के जीवन से शीघ्र ऊब गए। साथ ही "सैर कर दुनिया की ग़ाफिल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ"—वाले शब्द उनके मन में चक्कर काट रहे थे। परिणामतः रामउदार परसा से भाग निकले। रामउदार ने महन्त जी से बम्बई और मद्रास प्रान्तों के तीर्थों के विषय में सुन रखा था। पहले मद्रास पहुँचे। फिर तिरुमले, तिरुमशी, तिरुपती, बाला जी, कांचीपुर, रामेश्वरम आदि दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा की। तत्पश्चात् बंगलौर, बम्बई और अहमदाबाद गए। महन्त जी ने उन्हें तार द्वारा वापस बुला लिया और राम-उदार परसा वापस आ गए।

४. परसा में समय नष्ट करने की अपेक्षा, राहुल जी ने सैर करना अच्छा समझा। अयोध्या में तीन मास (सन् १६१४ ई० जुलाई से सितम्बर तक) रहे। उनके पिता जी उन्हें फिर वापस ले आये।

५. रामउदार के नाना की मृत्यु उस समय हो गई थी, जब रामउदार मद्रास के तीर्थों की यात्रा कर रहे थे। नाना की मृत्यु के बाद रामउदार को घर पर अब कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता था। प्रयाग का मेला देखने के बहाने घर से भाग निकले। वहाँ से आगरा पहुँचे और आर्य मुसाफिर विद्यालय के विद्यार्थी बने। सन् १६१५ ई० में आगरा की पढ़ाई समाप्त कर सन् १६१६ ई० में संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए लाहौर पहुंचे।

६. भाई साहब महेशप्रसाद, आर्य मुसाफिर, आगरा में रामउदार के गुरु रह चुके थे। अब वे भी मौलवी आलम श्रेणी में, लाहौर में पढ़ रहे थे। उन्होंने परामर्श दिया कि वैदिक मिशनरी तैयार करने के लिए और उसके लिए चन्दा इकट्ठा

सन् १९२३ ई० से उनकी विशेष-यात्रा का आरम्भ होता है। वे प्रथम बार सन् १९२३ ई० में नेपाल गये, सन् १९२७ ई० में प्रथम बार लंका-यात्रा की। बाद में लंका से उन्हें इतना प्रेम हो गया कि वहाँ की तीन बार और यात्रा की तथा वहाँ पर्याप्त समय तक ठहरे। लंका में वे बौद्ध-धर्म से प्रभावित हुए और बौद्ध-भिक्षु

करने के लिए कुछ स्थानों की यात्रा करनी चाहिये। इस सम्बन्ध में रामउदार ने सन् १९१७-१८ ई० में यशवन्तनगर, इटावा, कानपुर, लखनऊ, हरदोई, प्रतापगढ़, अहरौरा, महेशपुरा, झाँसी आदि स्थानों की यात्रा की। पर दान दाताओं की शिथिलता के कारण मिशनरी तैयार करने का प्रयास बन्द करना पड़ा।

७. सन् १९१९-२० में उन्होंने चित्रकूट और उसके आस-पास के पर्वतों की यात्रा की।

८. महात्मा बुद्ध के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने के कारण उन्होंने बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित स्थानों की यात्रा करने का निश्चय किया। अतः सन् १९२० ई० में लुम्बिनी (बुद्ध का जन्मस्थान), कपिलवस्तु, माथा-कुँअर (निर्वाण-स्थान), सारनाथ, नालन्दा, बोधगया की यात्रा की।

९. उनका ध्यान पढ़ाई की ओर से अभी हटा नहीं था। वे वेदान्त और मीमांसा पढ़ना चाहते थे। इसी उद्देश्य को लेकर स्वामी हरिप्रपन्नचार्य के पास तिरुमिशी (दक्षिण) पहुँचे। वहाँ रहते हुए अपना यात्रा-कार्य जारी रखा। सन् १९२१ ई० में रामउदार ने बंगलौर, मैसूर और कुर्ग-प्रान्त की यात्रा की।

१०. म० गाँधी के बढ़ते हुये प्रभाव के कारण रामउदार का ध्यान राजनीति की ओर गया, पर कुर्ग को वे एकदम छोड़ भी न सकते थे। पिता जी की मृत्यु का समाचार पाकर वे कुर्ग से छुट्टी लेकर चले और सीधे छपरा पहुँचे और कांग्रेस में प्रविष्ट हो गये। सन् १९२१ ई० से २७ ई० तक के काल में वे राजनीति में सक्रिय भाग लेते रहे। सत्याग्रह किये और जेल में भी गये। अतः इस काल में वे नियमित रूप से यात्रा न कर सके। फिर भी सन् १९२३ ई० (मार्च-अप्रैल) में डेढ़ मास के लिये वे नेपाल गये और सन् १९२६ ई० में पंजाब और सीमा प्रान्त का भ्रमण करते हुये काश्मीर पहुँचे। श्रीनगर, लद्दाख, पश्चिमी तिब्बत और बुशहर रियासत की यात्रा की।

११. कांग्रेस के सामने उस समय कोई विशेष कार्यक्रम न देख, बौद्ध-धर्म की ओर आकर्षित होने के कारण उन्होंने लंका जाने का निश्चय किया। मद्रास होते हुये १५ मई, सन् १९२७ ई० को सीलोन (लंका) पहुँचे। लंका के विद्यालंकार विहार में पठन-पाठन का काम करने लगे। लंका में १९ मास (१३ मई १९२७ से १ दिसम्बर, १९२८ ई० तक) रहे। वहाँ बौद्ध-धर्म और पाली भाषा के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया।

१२. १ दिसम्बर सन् १९२८ ई० को रामउदार लंका से भारत के लिए रवाना हुये। सांची, कौशाम्बी, कसया (कुशीनगर) आदि बौद्ध-स्थानों की यात्रा करते हुये छपरा पहुँचे।

१३. बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों की प्राप्ति के लिये रामउदार ने तिब्बत जाने का निश्चय किया। गुप्त रूप से नेपाल पार करते हुये १९ जुलाई, सन् १९२९ ई० को वे

बन गए। बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों की खोज और तत्सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिए वे तिब्बत गये। मार्ग की कठिनाइयों से वे कभी हतोत्साह नहीं हुये। राहुल जी ने तिब्बत की चार बार यात्रा की। तिब्बत यात्राओं को वे बड़ी रुचिकर और लाभप्रद मानते थे।

तिब्बत की राजधानी ल्हासा पहुँचे। वहाँ उन्होंने तिब्बती भाषा और बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का खूब अध्ययन किया। लंका से लाये हुये तीन हजार रुपयों में से प्रायः दो हजार की तालपोथियाँ तथा चित्रपट खरीदे। इन सभी चीजों को बाँधकर १७, १८ खच्चरों पर कलिम्‌पोङ्‌ के लिए रवाना किया और २४ अप्रैल, १९३० ई० को रामउदार ल्हासा से भारत के लिये रवाना हुये। मद्रास होते हुये २० जून, १९३० ई० को वे फिर लंका पहुँचे।

१४. लंका पहुँचने पर २२ जून, सन् १९३० ई० को रामउदार की 'प्रव्रज्या' (दीक्षा) हुई और उन्हें बौद्ध-भिक्षु संघ में नियमानुसार सम्मिलित कर लिया गया। अब तक वे रामउदार स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे, किन्तु अब आवश्यकता हुई नये नाम की। उन्होंने स्वयं ही "रामउदार" के प्रथमाक्षर "रा" का साम्य देखते हुये अपने लिए 'राहुल" नाम का प्रस्ताव किया और वह स्वीकृत भी हो गया। 'गोत्र" साथ जोड़े जाने के कारण अब वे 'राहुल-सांकृत्यायन' के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे। भारत में चल रहे सत्याग्रह ने उन्हें आकर्षित किया और राजनीति में भाग लेने के विचार से १५ दिसम्बर, सन् १९३० ई० को उन्होंने भारत में पुनः पदार्पण किया।

१५. कांग्रेस का अधिवेशन २९ से ३१ मार्च (१९३९ ई०) तक कराँची में होने को था। उसमें भाग लेने के लिए राहुल सांकृत्यायन कराची पहुँचे। वापसी में मोहन-जोदाड़ा और हड़प्पा होते हुये वे लाहौर पहुँचे। वहाँ से छपरा आगये।

१६. १८ नवम्बर, सन् १९३१ ई० को राहुल जी तीसरी बार लंका पहुँचे।

१७. ५ जुलाई, सन् १९३२ ई० को भदन्त आनन्द कौसल्यायन के साथ योरुप यात्रा पर चले। योरुप को वे धर्म प्रचार के लिए जा रहे थे। पैरिस होते हुए २७ जुलाई, सन् १९३२ ई० को राहुल जी लंदन पहुँचे। २७ जुलाई से १३ नवम्बर, तक साढ़े तीन महीने वे इंगलैण्ड में रहे और वहाँ साम्यवादी साहित्य का अध्ययन किया।

१८. भदन्त आनन्द जी को लन्दन में छोड़ राहुल जी १४ नवम्बर, १९३२ ई० को फिर पैरिस पहुँचे। जर्मनी भी गये। १६ जनवरी, १९३३ ई० को कोलम्बो पहुँचे। ३० जनवरी सन् १९३५ ई० को उन्होंने भारत के लिए प्रस्थान किया।

१९. सन् १९३३ ई० में द्वितीय बार लद्दाख-यात्रा की।

२०. द्वितीय तिब्बत-यात्रा में १९ मई, १९३४ ई० को ल्हासा पहुँचे। इस यात्रा का उद्देश्य था—प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की खोज। ८ सितम्बर (१९३४ ई०) तक ल्हासा में रहे। साक्या होते हुये नेपाल के रास्ते ५ दिसम्बर, १९२४ ई० को भारत पहुँचे।

२१. २ अप्रैल, सन् १९३५ ई० को दो बजे 'गंगा सागर' जहाज से कलकत्ता से चले और ५ अप्रैल को दस बजे रंगून पहुँचे। राहुल जी उस समय बौद्ध-भिक्षु

पश्चिमी सभ्यता से परिचित होने के लिए राहुल जी भदन्त आनन्द कौसल्यायन के साथ सन् १९३२ ई० में योरुप गये। इस यात्रा में फ्रांस, जर्मन और इंगलैण्ड गये। वहाँ का जीवन उन्हें आकर्षित न कर सका। उन्हें वहाँ के जीवन में कृत्रिमता प्रतीत हुई। यही कारण था कि उन्होंने योरुप की दूसरी बार यात्रा नहीं की।

थे और बौद्ध धर्म के अनुयायी देश जापान का परिचय प्राप्त करने के लिए वहाँ गये थे।

२२. जापान से कोरिया, मंचूरिया होते हुए ४ सितम्बर, सन् १९३५ ई० को वे रूस देश की राजधानी मास्को पहुँचे। उस समय उन्होंने कोट पतलून आदि देशकालोचित वस्त्र धारण कर लिये थे। रूस में उन्होंने खान पान के प्रसंग में किसी प्रकार का, यहाँ तक कि सूअर के माँस का भी भोजन करने में संकोच न किया।

२३. रूस से ईरान होते हुये १२ अक्तूबर (१९३५ ई०) को लाहौर पहुँचे।

२४. सन् १९३५ ई० में तीसरी बार तिब्बत गये। वे प्राचीन ग्रंथों की खोज के लिए वहाँ गये थे। तिब्बत से वे अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तथा फोटोग्राफ लाये।

२५. द्वितीय रूस यात्रा पर राहुल जी १७ नवम्बर सन् १९३७ को मास्को पहुँचे। इस बार वे रूस में १७ नवम्बर, १९३७ से १३ जनवरी, सन् १९३८ ई० तक रहे। २८ नवम्बर, १९३७ ई० को 'लेनिनग्राद' की प्रसिद्ध औरियन्टल इन्स्टीट्यूट देखने गये। वहाँ उनकी संस्कृत के विद्वान आचार्य श्चेरुवात्स्की से भेंट हुई। उसी समय उनकी भेंट सेक्रेटरी मिस 'लोला' से हुई। दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ा और दोनों का विवाह-सम्बन्ध हो गया।

२६. भिक्षु वेष धारण कर राहुल जी चौथी बार तिब्बत-यात्रा को गये। तिब्बत-यात्रा समाप्त कर ४ अक्तूबर सन् १९३८ ई० को वे कलकत्ता पहुँचे।

२७. ५ अक्तूबर सन् १९३८ ई० से उन्होंने फिर भारत की राजनीति में सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। अतः कुछ समय तक वे यात्रा-कार्य न कर सके।

२८. चौंतीस वर्ष बाद, अप्रैल १९४३ ई० में वे अपने ग्राम कनैला गये क्योंकि अब पचास वर्ष तक की आयु तक आजमगढ़ जिले में प्रवेश न करने की शपथ पूरी हो चुकी थी।

२९. मई-जून सन् १९४३ ई० में उत्तराखण्ड की यात्रा की।

३०. किसान सम्मेलन में भाग लेने के लिये मार्च सन् १९४४ में वे बेजवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश) गये। (राहुल जी कृत 'मेरी जीवन-यात्रा' भाग १, २ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के आधार पर)

३१. नवम्बर १९४४ ई० में राहुल जी तीसरी बार रूस पहुँचे। वहाँ २५ मास रहे।

३२. १९५३, १९५६ और १९५८ में वे नेपाल-यात्रा पर गये।

३३. १९५८ में चीन-यात्रा की। वहाँ वे चार मास रहे।

३४. १९५९ ६१ में (डेढ़ वर्ष) तक लंका में रहे।

३५. १९६२-६३ (सात महीने तक) राहुल जी चिकित्सा के लिए रूस में रहे। (श्रीमती कमला सांकृत्यायन के पत्र दिनांक १७ अगस्त, १९६५ के आधार पर। पत्र के लिये कृपया देखिये परिशिष्ट)

बौद्ध-सोसाइटी ने धर्म-प्रचार के लिए उन्हें अमेरिका भेजना चाहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। अमेरिका का जीवन उन्हें योरुप के जीवन से भिन्न प्रतीत नहीं हुआ। लंका और तिब्बत के अतिरिक्त उन्हें सोवियत भूमि से विशेष प्रेम था। सन् १९३५ ई० में प्रथम बार वे रूस गये। इसके बाद तीन बार और रूस यात्रा की।

राहुल सांकृत्यायन पूरे घुमक्कड़ थे। वे अपने पैर में चक्कर बताया करते थे। बात भी ठीक थी। उन्हें आराम से बैठना पसन्द ही न था। वे सदैव किसी न किसी यात्रा के लिये तत्पर रहते थे। साधारण मध्यमान (औसत) निकालने से ज्ञात होता है कि उन्होंने सन् १९२८ ई० के बाद प्रत्येक वर्ष कोई न कोई विदेश-यात्रा अवश्य की। उनका नियम था कि वे जिस मार्ग से एक बार यात्रा कर लेते थे उस ओर से दूसरी बार नहीं जाते थे। इस प्रकार वे अधिक से अधिक प्रदेशों की यात्रा कर लेते थे। विदेश-यात्राओं में उनके लिए मुख्य आकर्षण केन्द्र थे—लंका, तिब्बत और रूस। भारत में उन्हें बौद्ध-तीर्थ विशेष आकर्षित करते रहे। उन्होंने लगभग समूचे भारत की यात्रा की थी, कई प्रदेशों की तो अनेक बार। पहाड़ी-यात्रा ग्रीष्मकाल में सुखदायक हो सकती थी। अतः तिब्बत-यात्रा वे गर्मियों में किया करते थे।

राहुल जी की यात्रायें सोद्देश्य हुआ करती थीं। लंका यात्रा का उनका मुख्य उद्देश्य बौद्ध-धर्म सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना और पठन पाठन होता था। लंका में वे बौद्ध भिक्षु बने, अनीश्वरवादी बने। लंका में उन्हें तिब्बत यात्रा की प्रेरणा मिली। तिब्बत से वे बौद्ध धर्म सम्बन्धी ग्रंथ और सामग्री लाये। उपलब्ध सामग्री बिहार रिसर्च सोसाइटी को भेंट की गई। राहुल जी की ओर से यह एक अनुपम देन थी।

देश-विदेश की यात्राओं ने राहुल जी के व्यक्तित्व को कई प्रकार से प्रभावित किया। उन्हें असीम अनुभव प्राप्त हुए। कष्ट-सहिष्णुता, उदारता, विचारों की विशालता, प्राणि मात्र के प्रति सहानुभूति आदि उनके व्यक्तित्व के मुख्य तत्व इन यात्राओं के परिणामस्वरूप विकसित हुये थे। विदेश यात्राओं ने उनके खानपान और रहन सहन को भी प्रभावित किया। भारत में बाल्यावस्था के पश्चात् वे वैष्णव-भोजन करते थे पर लंका में उन्होंने मछली खाना आरम्भ कर दिया। तिब्बत में उन्होंने याक् का और रूस में सूअर का मांस खाया। योरुप के खान पान से भी कोई परहेज नहीं किया। विदेश यात्रा में वे आवश्यकतानुसार देश-कालोचित वेशभूषा रखते थे। तिब्बत यात्राओं में भिक्षु वेष रखते थे पर इस यात्रा में उन्होंने कोट पैन्ट धारण कर लिये थे।

विदेश-यात्राओं ने सबसे अधिक उनके राजनीति सम्बन्धी विचारों को प्रभावित किया था। विचारधारायें उन्हें प्रभावित न कर सकीं। वहाँ का साम्राज्यवादी वातावरण उनकी स्वच्छन्द प्रकृति के प्रतिकूल था। वहाँ का जीवन उन्हें कृत्रिम प्रतीत हुआ और कृत्रिमता से उन्हें स्वाभाविक चिढ़ थी। इसके विपरीत रूस का

जीवन उन्हें विशेष रोचक लगा। वहाँ के जीवन को उन्होंने बड़ी निकटता से देखा। वहाँ के जीवन में उन्हें कृत्रिमता का अभाव प्रतीत हुआ। जिन विचारों की कल्पना उन्होंने अपनी पुस्तक "बाईसवीं सदी" में की है, वहाँ के जीवन में उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दी। यही कारण था कि वहाँ के जीवन ने राहुल जी को विशेष आकर्षित किया। वहाँ के जीवन का अपने विचारों के साथ साम्य पाकर उन्होंने रूस के "मार्क्सवाद" को अपना लिया। "मार्क्सवाद" ने उनके जीवन को एक नवीन मार्ग दिया। भारत में उन्होंने किसानों और मजदूरों का पक्ष लेना आरम्भ किया। वे किसानों और मजदूरों के साथी बन गये और उनके लिए आन्दोलनों में भाग लेने लगे। विदेश-यात्राओं ने, विशेषकर, रूस की यात्रा ने उनको रूढ़िवादिता से मुक्त कर दिया। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक बन गया। वे ईश्वरवादी से अनीश्वरवादी तथा भौतिकवादी बन गये। विदेश-भ्रमण ने ही उनके व्यक्तित्व को प्रगति की ओर उन्मुख किया।

यात्राओं ने व्यक्तित्व के साथ उनकी लेखन-कला को भी अनुप्राणित किया। बौद्ध-भिक्षु बन जाने पर उन्होंने महात्मा बुद्ध के उपदेशों को लोगों तक पहुँचाना चाहा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने रचना-कार्य को साधन बनाया। लंका के जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने दैनिक पत्रों और मासिक पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे। उनके ये लेख मासिक पत्रिका "सरस्वती" और दैनिक पत्र "विश्वमित्र" में प्रकाशित हुये। इन्हीं लेखों से उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ होता है। इस प्रकार विदेश-यात्राओं ने उनकी लेखनी को नवीन चेतना दी। उन्होंने लंका के बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध-धर्म सम्बन्धी रचनायें कीं। महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित "बौद्ध-चर्या" नामक पुस्तक की रचना की। अनेक बौद्ध ग्रन्थों का सम्पादन किया और अनुवाद भी किया।

उन्होंने जिस देश की यात्रा की, वहाँ से सम्बन्धित जीवन पर पुस्तक भी अवश्य लिखी "लंका", 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी योरुप यात्रा', 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'जापान', 'ईरान', 'रूस में पच्चीस मास',—उनकी मुख्य यात्रा-रचनायें हैं। जिस देश की वे यात्रा करते थे, वहाँ के जीवन को वे बड़ी सूक्ष्मता से देखा करते थे। वहाँ प्राप्त अनुभव उन्हें रचना-कार्य के लिए बाध्य कर देते थे। विदेशों के जीवन के साथ साथ वहाँ की राजनीति ने भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। रूस के मार्क्सवाद ने उन्हें अपने रंग में रंग दिया। इस सम्बन्ध में राहुल जी ने लिखा है—'सोवियत् मेरे लिए साम्यवाद का साकार रूप था, सोवियत् की बुराई करके जो अपने को साम्यवादी या साम्राज्यवादी कहे, उसे मैं वंचक या बेवकूफ छोड़कर और कुछ नहीं समझ सकता।'[१] 'सोवियत् न्याय', 'सोवियत् कम्यूनिस्ट पार्टी का इतिहास', 'कम्यूनिष्ट क्या चाहते हैं?', 'साम्यवाद ही क्यों?',—आदि ग्रन्थों के लिए सामग्री, राहुल जी को, रूस के राजनीतिक जीवन से प्राप्त हुई। मार्क्सवादी

---

१ मेरी जीवन यात्रा, भाग २, पृ० ४९५

नेताओं की जीवनियाँ भी उन्होंने लिखीं —'स्तालिन', 'लेनिन', 'कार्ल मार्क्स', आदि ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि देश-विदेश की यात्राओं ने उनकी धर्म-विषयक धारणाओं, राजनीतिक विचारों, तथा साहित्यिक मान्यताओं को प्रभावित किया । राहुल जी यदि विदेश यात्रायें न करते तो निःसन्देह इस परिमाण में रचना कार्य न कर पाते । घुमक्कड़ी राहुल जी के लिए वरदान सिद्ध हुई ।

राहुल सांकृत्यायन और धर्म

"धर्म क्या है ?"—इस प्रश्न पर बहुधा वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ होते रहे हैं । परिणामस्वरूप अनेक मत मतान्तर यहाँ जन्म लेते रहे हैं । इस युग में सर्वत्र धर्म संबंधी परिभाषायें समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही हैं । आजकल धर्म की परिभाषा के विषय में 'जितने मुँह उतनी बातें' वाली लोकोक्ति चरितार्थ हो रही है । धर्म सम्बन्धी परिभाषाओं को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) रूढ़िवादी, तथा (२) वैज्ञानिक । रूढ़िवादी परिभाषायें ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करती हैं और ईश्वर प्राप्ति के साधनों का निर्देश करती हैं । वैज्ञानिक परिभाषायें भौतिक पदार्थों के अस्तित्व तक चिन्तन क्षेत्र को सीमित करती हैं ईश्वर की सत्ता को तर्क की कसौटी पर कसा जाता है ।

आजकल प्रत्येक वस्तु को वैज्ञानिक कसौटी पर परखा जाता है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार धर्म को किसी जाति, बल, वर्ग, पद इत्यादि के लिए उचित ठहराया हुआ व्यवसाय या व्यवहार, कर्त्तव्य,[1] माना जाता है । हिंदी साहित्यकारों में धर्म सम्बंधी वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वालों में राहुल सांकृत्यायन एक हैं । वे मानवता के अंतर्गत कर्तव्य पालन को मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म मानते हैं । शेष चीजों को वे निरा पाखण्ड समझते हैं । परन्तु इस निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व वे कट्टर ईश्वरवादी रहे और उन्होंने अनेक धर्म आजमाये । राहुल जी ने धर्म के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये । उनकी धर्म सम्बन्धी धारणाओं के विकास से परिचित होना आवश्यक है ।

राहुल जी की बाल्यावस्था का अधिकांश उनकी ननिहाल में बीता था । राहुल जी के नाना रामशरण पाठक की युवावस्था और प्रौढ़ावस्था एक सैनिक के रूप में व्यतीत हुई थी । इस कारण पाठक जी धर्म कर्म की ओर विशेष रुचि न रख सके । अवकाश प्राप्त करने पर वे वैष्णव धर्म[2] के पक्के अनुयायी

---

[1] संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ० ५००, नागरी प्रचारिणी सभा

[2] वैष्णव धर्म—वैष्णव धर्म या वैष्णव सम्प्रदाय का प्राचीन नाम भागवत धर्म या 'पाँच रात्र' मत है । इस सम्प्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं, जिन्हें ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, ऐश्वर्य और तेज इन छः गुणों से सम्पन्न होने के कारण भगवान या 'भगवत' कहा गया है और भगवत के उपासक भागवत कहलाते हैं ।....दसवीं से तेरहवीं चौदहवीं शती तक इस प्रकार भक्ति का आन्दोलन

बन गये। राहुल जी अपने पिता के सम्पर्क में दस वर्ष की आयु में आये थे। उनके पिता धार्मिक वृत्ति के मनुष्य थे। पूजा के कड़े नियमों का पालन करने के कारण गाँव वाले उन्हें 'पुजारी' कहते थे। वे हनुमान बाहुक और रामायण का पाठ करते थे और शंकर की पूजा किया करते थे। पक्के आस्तिक होते हुये भी 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की अवेहलना करने में वे समर्थ थे। ब्राह्मणों की कट्टर पंथी सामाजिक परम्परा के प्रतिकूल वे अपने निस्सन्तान हरवाहे 'चिन्गी' चमार के मरने पर उसे गंगा-तीर जलाने के लिए ले गये। पुरानी प्रथाओं के प्रति वे अन्ध-विश्वासी नहीं थे।

राहुल जी के नाना और पिता धर्म-कर्म में अधिक कट्टर तथा रूढ़िवादी नहीं थे। कहा जा चुका है कि उनके नाना वैष्णव होते हुये भी अपने नाती 'केदार' के लिए मछली-माँस पकाने में संकोच नहीं करते थे। विचारों की यह स्वतन्त्रता आगे चल कर राहुल के जीवन में भी प्रस्फुटित हुई। वास्तव में राहुल जी के धर्म सम्बन्धी विचारों में स्वतंत्रता का बीजारोपण उनके पिता और नाना के क्रमागत स्वतंत्र विचारों द्वारा ही हुआ।

राहुल जी के प्रारम्भिक धर्म सम्बन्धी विचारों पर अगला प्रभाव बाबा परमहंस का पड़ा। बाबा परमहंस कनैला के सीमान्तीय गाँव उमरपुर में मंगइ नदी के पार कुटिया बनाकर रहते थे। दूर दूर तक के लोगों का उनके प्रति आकर्षण था। राहुल के पिता जी बाबा परमहंस के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। हर चौथे-पाँचवें दिन वे दर्शनार्थ वहाँ पहुँचते थे। राहुल जी भी अपने पिता के साथ बाबा परमहंस के पास जाने लगे। उसी कुटिया में एक बाबा हरिकरणदास भी रहते थे। उहोंने राहुल जी को वेदांत[1] का उपदेश दिया। वेदान्त की ओर उनकी रुचि बढ़ती गई। सन् १६१० ई० में राहुल जी जब १६ वर्ष के थे, पक्के वेदान्ती बन गये थे। उन दिनों वेदान्त

दक्षिण में शास्त्रीय रूप धारण करके तथा आध्यात्मिक पक्ष में दृढ़ हो कर पुनः उत्तर की ओर आया और चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रबल वेग के साथ देश के विस्तृत भूभाग में महाराष्ट्र गुजरात, पंजाब, मध्य-प्रदेश, मगध, उत्कल, आसाम और बंग देश में फैलकर व्यापक लोकधर्म बन गया। उत्तर भारत में इसका नवीन रूप में प्रचार करने वाले सबसे प्रथम और सबसे अधिक शक्तिशाली स्वामी रामानन्द हुये। जिहोंने आध्यात्मिक दृष्टि से रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद को ही मानते हुये भक्ति का पृथक सम्प्रदाय स्थापित किया जिसमें दक्षिणात्य श्री वैष्णवों की तरह कठोर नियम नहीं था। लक्ष्मी नारायण के स्थान पर उन्होने सीताराम को अपना उपास्यदेव बनाया।—हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ५३६-५३९, सं० धीरेंद्र वर्मा।

१. वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है वेद का अन्त अर्थात अन्तिम भाग। वेदों के अन्तिम भाग उपनिषद् नामक ग्रंथ हैं अतः उनको वेदान्त कहा जाता है। वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त 'ब्रह्मवाद' है। ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध, ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध, मुक्ति का मार्ग आदि विषय वेदान्तियों की चर्चा के मुख्य विषय रहे हैं। हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७३८, सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा।

और वैराग्य के अतिरिक्त उन्हें दूसरी बातें हेय और असह्य लगती थीं। वेदान्ती होने के कारण देवताओं की भक्ति उनके लिये आकर्षण न रखती थी। उस समय उनका विचार संस्कृत और वेदान्त पढ़कर संन्यासी हो जाने का था।

राहुल जी के विचारों में फिर परिवर्तन आया। वे वेदान्ती से शिवभक्त[१] बने। बत्तीस मणियों का बड़ा रुद्राक्ष का कंठा गले में पड़ा रहता और शिर का भस्म त्रिपुण्ड रात को सो जाने पर ही मिटता। रुद्राष्टाध्यायी के बहुत से अध्याय तथा महिम्नःस्तोत्र के पारायण करते-करते उन्हें याद हो गये। सन् १९११ ई० तक राहुल जी पक्के शिवभक्त थे।

सन् १९११ ई० में ही राहुल जी ने एक नया अनुभव प्राप्त किया। "जन्त्र-मन्त्र" के प्रति उनकी रुचि हो गई। "जन्त्र-मन्त्र" जानने के लिए वे नेपाली स्वामी पूर्णानन्द के पास जाने लगे। राहुल जी के आग्रह पर स्वामी जी ने बतलाया कि पूरे नियम के साथ मन्त्र का नौ लाख जप करने पर दुर्गा सिंह वाहिनी का साक्षात् दर्शन होगा, वह 'वरं ब्रूहि' कहेगी, फिर धन, बल, बुद्धि, विद्या जो माँगना हो माँग लेना। राहुल जी ने आठ दिन तक दुर्गा का जप किया। पर जगदम्बा के दर्शन न हुये। अपनी इस असफलता पर राहुल जी को बड़ा दुःख हुआ और अधिक जीना व्यर्थ समझ कर उन्होंने धतूरे के बीज खा लिए। मरते मरते बचे, दूसरे दिन होश आया।

सन् १९१२ ई० में राहुल जी 'परसामठ' के महन्त लछमनदास के सम्पर्क में आये। महन्त जी ने राहुल जी को वैष्णव बना लिया। परसा के मृत उत्तराधिकारी के स्थान पर 'केदार' नाम बदल कर इनका वैष्णव नाम 'रामउदार' रखा गया। इस मठ में राहुल जी वैरागी, तपस्वी साधू का नहीं, अपितु एक सुकुमार राजकुमार का जीवन बिताने लगे। राहुल जी को वैष्णव अवश्य बना लिया गया था पर इस ओर उनकी रुचि अब भी न थी। इस प्रसंग में वे स्वयं लिखते हैं—"पूजा-पाठ की तरफ मेरा मन न लगा था। सवेरे स्नान करके कोठरी में जाता। लोग समझते 'पुजारी जी' पूजा-पाठ में लगे हैं, और यहाँ पुजारी जी दरवाजा बन्द कर बिस्तरे पर खूब पैर फैला लेटे हुये हैं, अथवा कोई उपन्यास या 'सरस्वती' का अंक पढ़ रहे हैं। ····अभी तक मैं आर्य समाज के मूर्ति विरोधी प्रभाव में नहीं आया था, तो भी मेरे लिए शालिग्राम के वह काले-काले गोलमटोल चिकने पत्थर निरे-पत्थर थे। बेगार की तरह उन पर चन्दन और तुलसीदल भी डाल देता। जल्दी पर्दा हटा देने पर डर था सन्देह होने का, इसलिये भीतर ही बैठा एक शालिग्राम को दूसरे से लड़ाया करता।"[२]

---

[१] शिवभक्त—शिव को परमेश्वर मानने वालों को शैव या शिवभक्त कहा जाता है और उनके धर्म को शैवमत। शिव का अर्थ है शुभ या कल्याण। हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७३, सम्पा० डा० धीरेन्द्र वर्मा।

[२] मेरी जीवन-यात्रा, भाग १, पृ० १६२-१६३

राहुल जी को वैष्णवधर्म के बाद आर्यसमाज ने आकर्षित किया। उन्होंने आर्य समाज का नाम सर्वप्रथम सन् १९०१ ई० या १९०२ ई० में "रानी की सराय" में अपने योगी मास्टर से सुना था। बाद में, वे बनारस में दयानन्द विद्यालय के कई महीनों तक विद्यार्थी रहे पर वहाँ उनकी रुचि आर्यसमाज की ओर न हुई। सन् १९१५ ई० में शिक्षा-प्राप्ति के लिए राहुल जी आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा में प्रविष्ट हुये। इस विद्यालय में शिक्षा देने के बाद विद्यार्थियों को आर्यसमाज के लिए तैयार किया जाता था। इस विद्यालय में राहुल जी ने एक नये प्रकाश का अनुभव किया और वे पक्के आर्यसमाजी बन गये। आर्यसमाज में आकर वे अपनी बुद्धि को अधिक स्वच्छन्द और अधिक अनुकूल परिस्थितियों में पा रहे थे। आर्यसमाज को वे सार्वभौम धर्म समझने लगे। इस सम्बन्ध में राहुल जी ने लिखा है :

"आर्य समाज को मैं सार्वभौम धर्म समझता था और विश्वास रखता था कि अपनी सच्चाइयों के कारण यह भी विज्ञान की तरह एक दिन सारे संसार के समझदार और साधारण व्यक्तियों का धर्म होगा।"[१] राहुल जी ने स्वामी दयानन्द के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करते हुये यहाँ तक कह दिया था—"मैं दयानन्द के एक-एक वाक्य को वेदवाक्य मानता हूँ।"[२] आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा से शिक्षा प्राप्त कर कुछ समय तक वे आर्यसमाज के प्रचार-कार्य में लगे रहे।

राहुल जी अधिक समय तक आर्यसमाजी न रहे। कई वर्षों से महात्मा बुद्ध के प्रति उनके मन में परम श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। उनकी जीवनियों का पढ़कर राहुल जी के मन में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित स्थानों के लिए उत्सुकता उत्पन्न हुई। अतः सन् १९२० ई० में उन्होंने सारनाथ, माथाकुंअर (बुद्ध का निर्वाण स्थान), लुम्बिनी, तिलौराकोट (कपिलवस्तु), कुशीनगर और बोधगया की यात्रा की।

सन् १९२६ ई० में राहुल जी लंका गये। लंका जाने से पूर्व उनके विचार इस प्रकार के थे :

"अभी तक ईश्वर से मेरा विश्वास पूरी तौर से डिगा न था किन्तु नास्तिकता की बातें—खास कर समाज से विद्रोह के बारे में—मैं खूब करने लगा था।"[3] इस प्रसंग से सूचित होता है कि राहुल जी लंका जाने से पूर्व ईश्वर के प्रति कुछ विश्वास रखते थे। लंका पहुँचने पर वहाँ के वातावरण ने राहुल जी को बौद्ध-धर्म की ओर खींचा। उन्होंने जब 'मज्झिम निकाय' में महात्मा बुद्ध के ये शब्द—बेड़े की भाँति मैंने तुम्हें धर्म का उपदेश किया है, वह पार उतरने के लिये है, शिर पर ढोये ढोये फिरने के लिए नहीं—पढ़े तो उन्होंने कहा—"जिस चीज को मैं इतने दिनों से

---

[१] मेरी जीवन यात्रा, भाग १, पृ० २३९

[२] मेरी जीवन यात्रा, भाग १, पृ० २४७

[3] मेरी जीवन यात्रा, भाग २, पृ० १

ढूँढ़ता फिर रहा था, वह मिल गई।"[1] राहुल जी के मन में उस समय अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। वे ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद के झूले में झूल रहे थे। अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे :

"ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते, यह साफ हो गया, और यह भी स्पष्ट मालूम होने लगा कि ईश्वर केवल काल्पनिक चीज़ है, बुद्ध यथार्थ वक्ता है।"[2] इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि राहुल जी ने ईश्वरवाद को सदा के लिए तिलांजलि दे दी और महात्मा बुद्ध को यथार्थ वक्ता माना। उन्होंने त्रिपिटक आदि बौद्ध ग्रन्थों को पढ़ा और बौद्ध-धर्म को अपने अनुकूल पाया।

२२ जून सन् १९३० ई० को विद्यालंकार विहार (लंका) में राहुल जी की प्रव्रज्या (दीक्षा) हुई और अब वे बौद्ध-भिक्षु बन गये। 'रा' अक्षर की समानता के कारण उनका नाम 'रामोदार' से 'राहुल' रखा गया और अपना गोत्र साथ जोड़ने के कारण वे 'राहुल सांकृत्यायन' के नाम से प्रसिद्ध हुए। राहुल जी केवल बौद्ध भिक्षु ही नहीं बने, बौद्ध-धर्म के प्रचारक भी बन गये। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए वे भदन्त आनन्द कौसल्यायन के साथ यूरोप गये। उन्होंने बौद्ध देश लंका और तिब्बत की कई बार यात्रायें कीं। वे बौद्ध-देश जापान भी गये। बौद्ध-ग्रन्थों को पढ़ा और अब राहुल जी बौद्ध-धर्म के पूर्ण पण्डित बन गये।

सन् १९३५ ई० में राहुल जी के धर्म सम्बन्धी विचारों ने फिर नई करवट ली। बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बहुत सी बातों से उनका विश्वास हट गया। वे बौद्धों के निर्वाण की बात को व्यर्थ समझने लगे। रही-सही कसर उनकी द्वितीय रूस-यात्रा ने पूरी कर दी। रूस के वातावरण ने राहुल जी पर नास्तिकता की पक्की मोहर लगा दी। अब राहुल जी को धर्म एवं ईश्वर के अस्तित्व में पूर्ण अश्रद्धा हो गई। १७ अप्रैल, सन् १९३९ ई० को राहुल जी को राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में छपरा जेल में भेजा गया। उस दिन अपने पीत वस्त्र उतारने पर उन्होंने ये शब्द लिखे—
"... ......लेकिन अब भी पीले वस्त्र मेरे पास थे। १७ अप्रैल को मुझे कैदियों का कपड़ा पहनने को मिला। उस दिन से धर्म से नाममात्र का भी सम्बन्ध नहीं रहा।"[3]

१९ अक्तूबर सन् १९३९ से राहुल जी भारत की 'कम्युनिस्ट पार्टी' के सदस्य बन गये। अब वे पूर्णतया नास्तिक और मार्क्सवादी भौतिकवादी थे—जन्म-मरण, धर्म और ईश्वर सम्बन्धी विचारों से अति दूर। ईश्वर की कल्पना अब उन्हें मिथ्या लगने लगी। इस सम्बन्ध में राहुल जी लिखते हैं :

'कोई कार्य सिर्फ एक कारण से नहीं होता, बल्कि उसके पीछे कारण-सामग्री (कारण-समुदाय) रहता है, ऐसी अवस्था में कार्य-कारण नियम से किसी एक कारण पर नहीं, बल्कि कारण-सामग्री पर पहुँच सकते हैं, फिर ईश्वर के सिद्ध होने की

---

[1] मेरी जीवन यात्रा भाग २, पृ० ८
[2] मेरी जीवन यात्रा, भाग २, पृ० ८-९
[3] मेरी जीवन यात्रा, भाग २, पृ० ५२०

कहाँ सम्भावना है ?'[1] राहुल जी को धर्म सम्बन्धी सभी वाद मिथ्या लगने लगे। केवल मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही पसन्द आया। उसकी विशेषता की चर्चा करते हुये राहुल जी लिखते हैं :

"......द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अपने को प्रचलित तर्कशास्त्र की कोटि में रखने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि वह दिमागी कसरत को नहीं, बल्कि प्रयोग (भौतिक जगत में वस्तु स्थिति) को परम प्रमाण मानता है, यही उसके लिये सत्य की सर्व-श्रेष्ठ कसौटी है।'[2] भौतिकवाद का मार्ग राहुल जी को इसलिए अच्छा लगा कि यह वैज्ञानिक है। यह मार्ग जगत् को छोड भागना नहीं सिखाता, बल्कि दुनिया को बदलना चाहता है। उन्होंने वैज्ञानिक भौतिकवाद के मार्ग को सच्चा मानकर स्वीकार किया। जीवनान्त तक वे मार्क्सवादी भौतिकवाद के सिद्धान्तों पर अटल रहे। जीवन के अन्तिम दिनों में वे बीमारियों से घिर गये, अनेक कष्ट सहे, पर 'ईश्वर' का नाम उन्होंने बेहाशी में भी नहीं लिया।

राहुल जी ने किसी भी मत को मत के लिए स्वीकार नहीं किया। वे प्रत्येक मत की उपयोगिता को जीवन की कसौटी पर परखते थे। जो धर्म जीवन की समस्याओं को हल करने में असमर्थ लगता उसे वे छोड़ देते थे। वे मत-परिवर्तन के पक्ष में थे, अन्धाधुन्ध अनुकरण को हेय समझते थे। लोगों पर किसी तरह के बलप्रयोग को वे मजहब की कमज़ोरी समझते थे। वे तर्क और दलील द्वारा प्रतिद्वन्द्वी को, अपने रास्ते पर लाने के पक्षपाती थे। उन्हें दुनिया के सब धर्म झूठे लगे। परिणामत: वेदान्त, शैवमत, वैष्णव मत, आर्य समाज से उनका बिल्कुल समझौता न हो सका। बौद्ध धर्म से राहुल जी का समझौता वहीं तक हुआ जहाँ तक कि वह मानवतावादी था। राहुल जी को मार्क्सवादी भौतिकवाद पसन्द आया। उन्हें यह वाद अधिक मानवतावादी लगा। राहुल जी का धर्म मानवतावादी भौतिक-वाद था। वे मानवमात्र से प्रेम करना उनकी समस्याओं को सुलझाना ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म समझते थे। राहुल जी के सम्बन्ध में 'धर्म' शब्द का प्रयोग भ्रमात्मक हो सकता है। वे 'धर्म' का अभिप्राय 'कर्त्तव्य' से लेते थे—कर्त्तव्य भी समाज-सापेक्ष दृष्टि से। मानवमात्र की सेवा राहुल जी सबसे बड़ा कर्त्तव्य मानते थे। मानवमात्र की नि:स्वार्थ सेवा को उन्होंने सबसे बड़ा धर्म माना और दूसरों के लिए इसी धर्म का प्रतिपादन किया।

लगातार मत-परिवर्तन से राहुल जी के व्यक्तित्व का महत्व घटा नहीं अपितु बढ़ा ही। मानवतावाद ने उनके व्यक्तित्व को एक अद्भुत शक्ति प्रदान की। इस शक्ति ने उनके साहित्य सृजन को प्रभावित किया। धर्म सम्बन्धी अनुभवों के आधार पर राहुल जी ने हिन्दी साहित्य को उत्कृष्ट रचनायें प्रदान कीं। उन्होंने

---

[1] राहुल : वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ८२

[2] वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ६

'दीर्घ निकाय', 'महामानव बुद्ध' आदि धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। 'बौद्ध-दर्शन', 'दर्शन-दिग्दर्शन' और 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' में उन्होंने अपने भौतिकवाद सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डाला। 'धर्म' पर लिखने वाले हिन्दी साहित्यकारों में राहुल जी अग्रगण्य हैं।

राहुल जी और राजनीति

राहुल सांकृत्यायन की देश-विदेश की यात्रायें सोद्देश्य हुआ करती थीं। वे अपनी इन यात्राओं से अधिकाधिक अनुभव-लाभ प्राप्ति का यत्न करते थे। देश-विदेश की अन्य बातों के साथ वे वहाँ के सामाजिक और राजनीतिक जीवन को सूक्ष्मता से देखते थे। वे भारत में होते या किसी अन्य देश में, समाचार-पत्रों द्वारा देश-विदेश की राजनीति से परिचित रहते थे। भारत की समस्यायें विशेषरूप से उनके ध्यान को आकर्षित करती रहती थीं। जिस समय राहुल जी राजनीति-क्षेत्र में आये तत्कालीन परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि उन जैसे कर्मठ व्यक्ति का उनसे उदासीन रहना असम्भव था। राहुल जी के राजनीतिक जीवन को देखने से पूर्व उस समय की राजनीतिक पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन करना उचित होगा।

भारत को अँग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए प्रथम प्रयत्न सन् १८५७ ई० में हुआ। यह प्रयत्न आन्तरिक विरोधों के कारण असफल रहा। इसके पश्चात् भारत के राजनीति-क्षेत्र में कुछ समय तक पूरी तरह सन्नाटा छाया रहा। अंग्रेज शासकों की शोषक नीति आदि कारणों से यहाँ अकालों का ताँता लग गया; लाखों लोग भूख से मर गये और मरते रहे। अकाल के अतिरिक्त अंग्रेजी शासन की नाना प्रकार की सख्तियों से जनता तंग आ गई थी। लोगों में असन्तोष बढ़ रहा था। किसी समय भी विद्रोह हो सकता था। इस असन्तोष को वैधानिक तथा संगठित रूप में प्रकट करने के लिये सन् १८७३ ई० में आनन्दमोहन बसु तथा सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के प्रयत्नों से 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना हुई। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था लोगों में जागृति उत्पन्न करना तथा उनके कष्टों की ओर अंग्रेजी शासन का ध्यान आकृष्ट करना। समय की माँग के रूप में इस संस्था का जन्म हुआ था, अतः इसका जन-जीवन में प्रभाव शीघ्र बढ़ा। फलस्वरूप, अंग्रेज अधिकारी चिन्तित हो उठे। राष्ट्र की भावना को शासकों की सुविधानुसार मर्यादित रखने के विचार से अंग्रेज अधिकारियों की प्रेरणा से सन् १८८५ ई० में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' का जन्म हुआ।

कांग्रेस के जन्म से लेकर सन् १९०५ ई० तक कांग्रेस के विषय में लोगों की यह धारणा रही कि कांग्रेस राजद्रोहात्मक संस्था नहीं है। भारतीय राजनीतिज्ञों का काम केवल सरकार की बात को जनता तथा जनता की बात को सरकार तक पहुँचाना है। कांग्रेस प्रस्तावों पर नेताओं के जो भाषण होते थे, उनकी और अध्यक्ष के भाषणों की टेक यह होती कि अंग्रेज जाति मूलतः न्यायप्रिय तथा भली है। यदि उसे स्थिति का सही पता लगता रहे तो वह कभी सत्य तथा न्याय के मार्ग से विच-

लित नहीं हो सकती। उस समय कांग्रेस की एक माँग यह थी कि भारतीयों को राज्य संचालन के काम में योग देने का इससे अधिक अवसर दिया जाय।

उस समय की कांग्रेस के उपर्युक्त उद्देश्य लोगों में बढ़ते हुए क्षोभ तथा असन्तोष को शान्त करने में असमर्थ थे। जनमत खुशामद तथा गिड़गिड़ाहट के स्थान पर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहता था। ऐसी परिस्थितियों में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का उदय हुआ और राजनीति में आते ही गोखले जी से उनका टकराव हुआ। उस समय कांग्रेस में दो दल हो गये थे। गोखले नरम दल के नेता थे और तिलक गरम दल के। गोखले के नरम दल का आग्रह समाज सुधार पर था, राजनीति की बात वहाँ दबे स्वर में की जाती थी। तिलक का नरम दल के विचारों से मौलिक विरोध था। उनका कहना था कि अंग्रेज पहले यहाँ से जायें और सत्ता हमारे हाथ में आये—सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयाँ बाद में भी दूर हो सकती हैं। अंग्रेज शासकों की सहानुभूति नरम दल के साथ थी। उनका इसी में हित था कि स्वतन्त्रता माँग को पीछे धकेला जाय। जनता राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर झुक रही थी। तिलक का महत्व बढ़ रहा था। तिलक द्वारा दिया गया नारा—'लड़ो, भीख मत माँगो'—लोगों की ज़बान पर चढ़ गया। सन् १९०६ ई० मे कलकत्ता में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में काँग्रेस के इतिहास में प्रथम बार स्वराज्य की माँग की गई। सरकार ने इस माँग को दबाने के लिये दमन की नीति का आश्रय लिया। सन् १९०८ ई० में तिलक को छः वर्ष के लिये माण्डले जेल में भेज दिया गया। कांग्रेस पूरी तरह गोखले तथा फीरोजशाह मेहता (नरम दल) के हाथ में आ गई। कांग्रेस फिर पुरानी लकीर को पीटने लगी। सन् १९१४ ई० तक आते-जाते राजनीतिक आन्दोलन शिथिल पड़ गया। तिलक जून, सन् १९१४ ई० में जेल से छूटकर बाहर आ गये। राजनीतिक शिथिलता देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। 'होमरूल' का आंदोलन लेकर वे फिर मैदान में कूद पड़े। फरवरी, १९१५ ई० में गोखले जी और नवम्बर, १९१५ ई० में फीरोजशाह मेहता भारतीय आन्दोलन की अपूर्ण कामनाओं को साथ लेकर दिवंगत हो गये।

इसी बीच, देश ने एक नई करवट ली। कांग्रेस तथा मुस्लिम-लीग के बीच एकता स्थापित करने का प्रयत्न होने लगा। दिसम्बर, १९१६ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। अधिवेशन सफल रहा। कांग्रेस तथा लीग के बीच समझौता हो गया। कांग्रेस के गरम दल में भी समझौता हो गया। इस अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी तथा लोकमान्य तिलक जैसे बड़े बड़े नेताओं के अतिरिक्त मि० जिन्ना और श्री मोहनदास करमचन्द गांधी ने भाग लिया।

उन दिनों श्री मोहनदास करमचन्द गांधी की कीर्ति-सुरभि बड़ी तेजी से फैल रही थी। अभी अभी वे दक्षिणी अफ्रीका से लौटे थे। बिहार से आये हुए नेताओं ने लखनऊ अधिवेशन के समय चम्पारन के किसानों की करुण कथा कही। वहाँ के किसानों की स्थिति दासों से भी गई बीती थी। गांधी जी चम्पारन पहुँचे और

हिन्दुस्तान में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग आरम्भ हुआ। यह प्रयोग सफल रहा। चम्पारन के बाद गांधी जी गुजरात पहुँचे और किसानों के अधिकारों के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया। गांधी जी अन्य राजनीतिक नेताओं से भिन्न निकले। वे राजनीति का पहला अर्थ जन-सेवा समझते थे। दुःखी जनों का, दुःख-दर्द में साथ देते थे, उन्हें जगाकर समाजहित के संघर्ष में भाग लेने के लिए उत्साहित करते थे। निःस्वार्थ जन-सेवा के कारण गांधी जी शीघ्र ही "जन-मन-अधिनायक" बन गये।

अंग्रेज सरकार के अनुरोध पर महात्मा गांधी ने प्रथम विश्वयुद्ध में सहायता देना स्वीकार किया। परन्तु तिलक इस बात से सहमत न थे। सरकार ने तिलक और उनके समर्थकों को दबाने के लिए फरवरी, सन् १९१९ ई० में रौलट एक्ट[1] की घोषणा की। अंग्रेज सरकार को बिना किसी शर्त सहायता देने का महात्मा गांधी जी को अच्छा पुरस्कार मिला। गांधी जी को बड़ा दुःख हुआ और तत्काल अपने निश्चय की घोषणा कर दी कि वे रौलट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह करेंगे।

इतिहास का विकास सारे संसार में सामान्य सिद्धान्तों पर होता है किन्तु विशिष्ट राष्ट्रों, देशों और राज्यों के विकास का मार्ग उनकी अपनी विलक्षण स्थिति में होता है। विशेषकर भारत में इन स्थितियों का जन्म और विकास विचित्र रूप में हुआ है। अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति पाने की जो प्रक्रिया भारत में आरम्भ हुई वह दुनिया के न प्राचीन इतिहास में दृष्टिगोचर होती है और न ही अर्वाचीन में ही। आत्मिक बल को भौतिक शक्ति से बड़ा मानते हुए महात्मा गांधी ने 'रौलट एक्ट' का विरोध सत्याग्रह द्वारा करने का निश्चय किया। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रयोग को सत्याग्रह का नाम दिया गया।[2] सत्याग्रह से अभिप्राय था निष्क्रिय प्रतिरोध अर्थात् सख्तियों और अन्यायों का सामना सचाई और अहिंसा के द्वारा करना।

सारा देश उस समय बड़ा उत्तेजित था। विस्फोट के लिए केवल एक चिनगारी की आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में अंग्रेज सरकार का गांधी जी के आन्दोलन से आतंकित होना स्वाभाविक था। सरकार को अधिक डर था पंजाब से—

---

१ रौलट एक्ट—प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार की जो दिल खोलकर सहायता की थी, युद्ध समाप्त होने पर अंग्रेजी सरकार की भारत सम्बन्धी नीति बदल गई। जनता में राजनीतिक असन्तोष बढ़ गया। देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का सख्ती से दमन करने के लिए अंग्रेज सरकार ने सन् १९१९ ई० में रौलट एक्ट बनाया। इसके अनुसार सरकार किसी भी व्यक्ति को बिना अभियोग चलाये, जब तक चाहे बन्दी बना सकती है। महात्मा गांधी ने इसका विरोध किया। स्थान स्थान पर सभाओं में इसके प्रति रोष प्रकट किया गया।—योगेन्द्र मलिक व आर०एल० भाटिया: भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास।

२ कांग्रेस का इतिहास, तीसरा खण्ड, डा० बी० पट्टाभिसीतारामय्या, प्रस्तावना, पृ० १२

क्योंकि वह भारतीय सेना का मेरुदण्ड था। १३ अप्रैल सन् १९१९ ई० को अमृतसर के जलियाँ वाला बाग में हत्याकांड हुआ।

महात्मा गान्धी ने लोगों को सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहते हुये असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कहा। "असहयोग आन्दोलन" सत्याग्रह की एक मंज़िल थी। इस आन्दोलन से अभिप्राय यह था कि लोग अंग्रेजी शासन को सहयोग न दे। भारतीय सहयोग के अभाव में अंग्रेजी शासन अपने आप असफल हो जायगा। इस आन्दोलन का मुख्य कार्य यह था कि लोग सरकार द्वारा दिये हुये पद और उपाधियाँ छोड़ दें। कर्मचारी सरकारी दफ्तरों से अनुपस्थित रहें। विद्यार्थी स्कूलों और कालिजों की पढ़ाई छोड़ दें। वकील वकालत को त्याग दें और रँगरूट सेना में भर्ती न हों। जनता निर्वाचनों में भाग न ले। लोग विदेशी माल का प्रयोग न करें, उसके स्थान पर ये हाथ से तैयार किया हुआ कपड़ा पहनें। उस समय की परिस्थितियों में "असहयोग आन्दोलन" एक अपूर्व हथियार था। अंग्रेज शासकों को उनके अत्याचारों का अनुभव कराने का यही एक उत्तम उपाय था। असहयोग की अलख जगाते हुए गान्धी जी सारे देश का दौरा करते रहे। लोगों ने गांधी जी के इस आन्दोलन का स्वागत किया। हज़ारों विद्यार्थियों ने स्कूल, कालेज छोड़ दिये, वकीलों और बैरिस्टरों ने अपनी प्रेक्टिस छोड़ दी। लोगों ने विदेशी माल का बहिष्कार करके देशी माल का उपयोग आरम्भ कर दिया। असहयोग आन्दोलन का प्रभाव देशव्यापी बन गया। इस आन्दोलन ने कांग्रेस को नवयुवक नेता दिये। जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस जैसे नेताओं का असहयोग आन्दोलन को सहयोग मिला।

राहुल जी उस समय (सन् १९२१) दक्षिण भारत में कुर्ग प्रदेश में आर्य-समाज का प्रचार कर रहे थे। 'कुर्ग' महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका था। असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह के समाचार सुनकर उसमें भाग लेने के लिए राहुल जी का उत्साह जाग्रत हुआ और उन्होंने राजनीतिक जीवन में पुन: प्रवेश करने का निश्चय कर लिया।

कुर्ग से लौटते हुये राहुल जी खंडवा में एक गौशाला में ठहरे। लोगों ने बाजार-चौक में उनका व्याख्यान रखा। यह था उनका प्रथम राजनीतिक व्याख्यान। दक्षिण से राहुल जी छपरा पहुँचे ···नंगे सिर, नंगे पैर, खद्दर का अंचला धारण किये हुये तथा हाथ में कमंडलु लिये हुये। उनको इस साधु भेष में कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिये तत्पर देख कर, छपरा कांग्रेस कमेटी के सदस्य बड़े आश्चर्य चकित हो गये पर उनके उत्साह को देखकर उन्हें कांग्रेस में सम्मिलित कर लिया गया।

उस समय (सन् १९२९ ई०) 'चर्खा-खद्दर प्रचार' पर और 'मादक-द्रव्य निषेध' पर बल दिया जा रहा था। राहुल जी ने अपना काम अपने चिरपरिचित ग्राम 'परसा' से आरम्भ करना निश्चित किया। कांग्रेस के कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्होंने

अपना कार्य सभाओं में व्याख्यान देने से आरम्भ किया। सितम्बर सन् १९२१ ई० में छपरा में बाढ़ आ गई। छपरा की सड़कों ने नदियों का रूप धारण कर लिया। कांग्रेस की ओर से सहायता-शिविर खोले गये। राहुल जी ने बाढ़-ग्रस्त लोगों की, अपने प्राणों तक की चिंता न कर, सहायता की।

राहुल सांकृत्यायन, राजनीतिक क्षेत्र में इतनी रुचि से काम कर रहे थे कि १९ अक्तूबर, सन् १९२२ ई० के नये चुनावों में उन्हें छपरा जिला कांग्रेस का मन्त्री चुन लिया गया। सन् १९२२ ई० में महात्मा गांधी के जेल चले जाने पर कांग्रेस के दो दल बन गये थे—एक अपरिवर्तनवादी और दूसरा परिवर्तनवादी। परिवर्तनवादी दल कांग्रेस के कार्यक्रम में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन चाहता था। राहुल जी परिवर्तनवादी थे। मतभेद होने के कारण जनवरी सन् १९२३ ई० में राहुल जी ने जिला कांग्रेस के मंत्रि पद से त्यागपत्र दे दिया।

२३ जनवरी सन् १९२३ ई० को बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में भाग लेने के लिए वे पटना गये। बैठक के बाद एक सार्वजनिक सभा हुई। उस सभा में राजेन्द्र बाबू के भाषण के बाद राहुल जी का भाषण हुआ। उस भाषण में राहुल जी ने कहा था कि "चौरी चौरा काण्ड में शहीद होने वालों का खून देश-माता का चन्दन होगा।" उस भाषण पर भारतीय दण्डविधान की धारा १२४ (ए) के अनुसार राहुल जी पर अभियोग चलाया गया और दो वर्ष का कारावास दड दिया गया। १८ अप्रैल सन् १९२५ ई० को दण्ड भुगतने के बाद उन्हें हजारी बाग जेल से छोड़ दिया गया। जेल से बाहर आने पर उन्होंने छपरा जिले का दौरा किया। मीरगज में हिन्दू मुसलमानों के साम्प्रदायिक दंगों में उन्होंने अपनी जान पर खेल कर मुसलमानों की प्राण-रक्षा की थी। कांग्रेस के कार्यक्रम में कोई नवीनता न देख कर राहुल जी लंका और तिब्बत यात्रा के लिए निकल पड़े। सन् १९२७ ई० से सन् १९३० ई० तक वे राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग न ले सके।

भारत में (सन् १९३० ई० में) सत्याग्रह चल रहा था। महात्मा गांधी का पत्र "यंग इण्डिया" लंका भी पहुँचता था। सत्याग्रह के समाचारों को पढ़कर राहुल जी का भारत में चल रहे आन्दोलन से अलग रहना कठिन था। अतः राजनीतिक आन्दोलन में पुनः भाग लेने के लिए १५ दिसम्बर, सन् १९३० ई० को वे भारत आ गये। उस समय बिहार के कितने ही राष्ट्रवादियों को गांधीवाद से निराशा हो चली थी। वे समाजवाद के आधार पर जनता को जाग्रत करने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अतः १३ जुलाई सन् १९३२ ई० को बिहार 'सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना हुई। राहुल जी को इसका मन्त्री चुना गया। 'गांधीइर्विन' समझौते के बाद सत्याग्रह आन्दोलन ने साधारण रूप धारण कर लिया था और गांधी जी 'गोलमेज' कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए इंगलैण्ड जाने की तैयारी कर रहे थे। कांग्रेस के तत्कालीन कार्यक्रम में कोई सार न देख कर राहुल जी तीसरी लंका यात्रा पर चले गये और वहाँ से वे यूरोप जा पहुँचे।

यूरोप-यात्रा में, सबसे अधिक वे (२७ जुलाई से १३ नवम्बर, १९३२ ई० तक) इंगलैण्ड में ठहरे। वहां के जीवन को सूक्ष्मता से देखने का उन्हें यह अच्छा अवसर मिला। उस समय तक राहुल जी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं थे पर उन्हें लेनिन और स्तालिन के विचार प्रभावित कर चुके थे। राहुल जी को इन नेताओं के दृष्टिकोण में गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रतीत होती थी। लन्दन में उनका अधिक समय साम्यवादी साहित्य के पढ़ने में व्यतीत होता था। वे मार्क्स के कई ग्रन्थों से बड़े प्रभावित हुये थे। यूरोप-यात्रा से लौटकर ३० जनवरी, सन् १९३३ ई० को राहुल जी लंका से भारत आगये।

भारत में कुछ समय ठहर कर सन् १९३३ ई० की गर्मी आरम्भ होते ही राहुल जी द्वितीय लद्दाख-यात्रा के लिए निकल पड़े। उसके बाद उन्होंने द्वितीय तिब्बत यात्रा की। सन् १९३५ ई० में जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत भूमि तथा ईरान की यात्रा की। सन् १९३८ ई० तक वे किसी न किसी देश की यात्रा करते ही रहे। अतः सन् १९२७ ई० से सन् १९३८ ई० तक अर्थात लगभग ग्यारह वर्ष तक राहुल जी सक्रिय राजनीति से अलग रहे। उन्होंने सन् १९३१ ई० में कुछ दिनों के लिए राजनीतिक क्षेत्र में भाग अवश्य लिया था।

५ अक्तूबर, सन् १९३८ ई० को राहुल जी ने भारतीय आंदोलन में पुनः पदार्पण करने का निश्चय किया। ऐसा निश्चय उन्होंने द्वितीय सोवियत यात्रा (सन् १९३८) के बाद किया। सन् १९१७ की सोवियत क्रान्ति की घटनाओं की छाप उनके हृदय पर पड़ी। उस क्रान्ति ने रूस में 'ज़ार शासन' के स्थान पर साम्यवादी शासन स्थापित किया था। राहुल जी सोवियत भूमि के साम्यवादी जीवन को देखकर बहुत प्रभावित हुये। परिणामतः वे साम्यवादी बन गये। अब वे किसानों तथा मजदूरों का नेतृत्व करने लगे। सोवियत भूमि राहुल जी के लिये साम्यवाद की साक्षात प्रतीक बन गई।

सन् १९३८ ई० में, छपरा जिले में, किसान-सत्याग्रह चल रहा था। ज़मींदार (भूमिधारी) किसानों को सता रहे थे। उन्होंने किसानों के खेतों पर अधिकार कर लिया था। मालगुजारी न दे सकने पर किसानों के खेत नीलाम करवा लिए जाते थे। अपने दुःख के निवारण के लिए किसानों ने जमींदारों के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ किया। राहुल जी ने किसानों की ओर से सत्याग्रह में भाग लिया। इस आन्दोलन में राहुल जी को अनेक कष्ट सहने पड़े। उन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी पर वे हतोत्साह कभी नहीं हुये। उनके इस निःस्वार्थ त्याग एवं बलिदान से प्रभावित हो कर किसानों ने उन्हें अपना सच्चा नेता मान लिया।

सन् १९३९ ई० (अक्तूबर) में वर्धा में हुये कम्युनिस्ट पार्टी के अधिवेशन में राहुल जी सम्मिलित हुये। वहां एकत्रित हुये कम्युनिस्टों को देखकर राहुल जी बहुत प्रसन्न और उत्साहित हुये। वहां न प्रान्त भेद था और न धार्मिक संकीर्णता ही। राहुल जी का विचार था कि क्रान्ति के संचालन के लिए एक शक्ति-

सम्पन्न और सुसंगठित सेना होनी चाहिये। उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी को इसी रूप में पाया। १९ अक्तूबर, सन् १९३९ ई० को मुंगेर में 'बिहार कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना हुई। राहुल जी उसी दिन से इस पार्टी के सदस्य बन गये।

१५ मार्च सन् १९४० ई० को सायंकाल राहुल जी को, भारत रक्षा कानून की धारा २६ उपनियम १ के छठे वाक्य के अनुसार बन्दी बना लिया गया। वे २९ मास (मार्च १९४० से जुलाई १९४२ ई०) तक जेल में रहे। जेल में उन्हें अनेक यातनायें सहनी पड़ीं। जेल की इन यातनाओं के विरुद्ध उन्होंने १६ दिन की भूखहड़ताल की। जेल से छूटने पर उन्होंने उत्तराखण्ड पंजाब, काश्मीर की यात्रा की।

१४-१५ मार्च १९४४ ई० को बेजवाड़ा आन्ध्र में अखिल भारतीय किसान सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में राहुल जी सम्मिलित हुये। इसके बाद राजनीतिक कार्यक्रम में शिथिलता देख कर वे साहित्यिक रचनाकार्य में जुट पड़े। सन् १९४५ ई० में राहुल जी तृतीय रूस यात्रा पर चले गये। जब वे रूस से लौटे भारत स्वतन्त्र था। अगला कार्यक्रम बनाने से पूर्व राहुल जी ने भारत की परिवर्तित परिस्थितियों का अध्ययन करना उचित समझा।

उस समय तक राहुल जी ससार के कई देशों की यात्रा कर चुके थे। अन्य देशों के राजनीतिक विचारों की अपेक्षा रूस का साम्यवाद उन्हें अधिक उपयोगी प्रतीत हुआ। उनका विचार था कि महात्मा बुद्ध ने अपने शान्तिमय उपदेशों से मानवता के एक बहुत बड़े भाग का सहस्राब्दियों तक हित किया। मार्क्सवाद ने अपनी अभी अधूरी यात्रा में ही मानवता के इतने बड़े भाग को लाभ पहुँचाया है जितना किसी महापुरुष या वाद ने नहीं। इसलिये राहुल जी को सर्वश्रेष्ठ मार्ग 'साम्यवाद' ही लगा। अन्तिम समय तक वे साम्यवादी रहे और भारत के लिये इसी को कल्याण-पथ समझते रहे।

स्पष्ट है कि राहुल जी जब 'घुमक्कड़ी' से निवृत्त होते या परिस्थितियों को अनुकूल देखते, राजनीति में कूद पड़ते थे। 'घुमक्कड़ी' की अपेक्षा राजनीति में उन्होंने बहुत कम भाग लिया। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुये राहुल जी ने लिखा है—"छपरा के मेरे राजनीतिक सहकर्मी अब भी जब तब मिलते और कभी कभी कार्यक्षेत्र में आने के लिए ज़ोर भी देते थे। किन्तु जान पड़ता है मैं प्रकृतया राजनीति के लिए नहीं बनाया गया ………तो भी वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक विधान से मैं संतुष्ट नहीं था, इसीलिए समय-समय पर अपने को काबू में नहीं रख पाता था।[१]" 'घुमक्कड़ी' करते हुये भी सन् १९२१ ई० से लेकर जीवन के पिछले दिनों तक वे भारत की राजनीतिक समस्याओं की ओर सदैव पूर्णतया जागरूक रहे। हाँ, सक्रिय भाग उन्होंने सन् १९२१-२७ तथा सन् १९३८-४३ ई० में लिया।

राजनीति-क्षेत्र में राहुल जी प्रयोगशील रहे। उन्होंने अपना राजनीतिक जीवन, सन् १९२१ ई० में कांग्रेस में सम्मिलित होकर आरम्भ किया। सन् १९२२

---

[१] मेरी जीवन-यात्रा, भाग २, पृ० २०९

ई० में वे कांग्रेस के परिवर्तनवादी गुट में मिल गये। सन् १९३१ ई० में वे कांग्रेस की सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने। सन् १९३९ ई० से वे स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी बने और अन्त तक साम्यवादी ही रहे। साम्यवाद को उन्होंने क्यों अपनाया?—इस का उत्तर उन्हीं के इन शब्दों से मिलता है—"......मुझे व्यक्ति के अलग-अलग जीवन की अपेक्षा समष्टि का सामूहिक जीवन सदा ही अधिक पसन्द रहा। राजनीतिक कार्यों में पड़ने के बाद तो मुझे और पता लगने लगा कि एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। क्रान्ति के संचालन के लिए जबर्दस्त सुसंगठित सेना होनी चाहिये। मैंने कम्युनिस्ट पार्टी को उसी रूप में पाया।"[1]

कांग्रेस की अपेक्षा मार्क्सवादी साम्यवाद राहुल जी को इसलिए बहुत अच्छा लगा कि कांग्रेस निराकार स्वराज्य के पीछे थी पर मार्क्सवादी साम्यवाद साकार, आर्थिक स्वराज्य के पीछे। उनका विचार था कि साम्यवाद ही ऐसा वाद है जो गरीबों और मजदूरों को दु:खों और चिन्ताओं से मुक्त कर सकता है।

राहुल जी के राजनीतिक जीवन की अपनी विशेषतायें हैं। उन्होंने अपने को किसी वाद का आँख मूँद कर अनुसरण नहीं किया। जब किसी वाद के खोखलेपन को देखा उन्होंने स्वतंत्र मार्ग अपनाया। जब तक कोई वाद उनकी बुद्धि की कसौटी पर पूरा न उतरता, वे उस पर स्थिर नहीं रहते थे। राजनीतिक विषयों में उन्हें अर्ध-श्रद्धा सह्य नहीं थी। वे किसी राजनीतिक गुट में रहते हुये अपना अस्तित्व पृथक बनाये रखते थे। किसी भी नेता से विचार-वैषम्य रखना वे अनुचित अथवा बुरा नही समझते थे।

राजनीतिक क्रान्ति के साथ वे सामाजिक क्रान्ति को भी आवश्यक समझते थे। अंग्रेज शासकों के अतिरिक्त सभी शोषकों का विरोध करते थे। वे छत-छात के कट्टर विरोधी थे। रूढ़िवादिता के कटु आलोचक थे। परिस्थितियों के अनुसार जीवन में परिवर्तन को वे उचित एवं कल्याणकारी समझते थे।

कहा जा चुका है कि राजनीति के क्षेत्र में आने से तथा पर्याप्त समय तक इस क्षेत्र में कार्यरत रहने से राहुल जी का केवल व्यक्तित्व ही नहीं, उनका साहित्यिक दृष्टिकोण भी प्रभावित हुआ था। 'घुमक्कड़ी' के बाद उनकी रचनाओं का मुख्य विषय 'राजनीति' बना। राजनीतिक विषय उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। राहुल जी साम्राज्यवाद के विरोधी और गणराज्य के प्रबल प्रशंसक थे। उनके 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' उपन्यास इसी दृष्टि से लिखे गये हैं। अन्य कई रचनाओं में भी उनके राजनीति सम्बन्धी विचार परोक्ष रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। 'बाईसवीं सदी' उनकी राजनीति विषय पर एक ऐसी रचना है जो उनके मार्क्सवादी बनने से बहुत पूर्व लिखी जा चुकी थी। उनका यह स्वप्न उन्हें रूस के जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई दिया। इस रचना से

---

[1] मेरी जीवन-यात्रा, भाग २, पृ० ५३७

राहुल जी की राजनीतिक दूरदर्शिता सिद्ध होती है । 'साम्यवाद ही क्यों ?' 'दिमागी गुलामी' आदि उनकी रचनायें राजनीति विषयक हैं। इन रचनाओं में साम्यवाद सम्बन्धी अनेक विषयों पर चर्चा की गई है ।

राहुल जी को बौद्ध-मत और मार्क्सवाद के अनीश्वरवादिता, जातिबन्धनों की संकीर्णता का अभाव, विचार स्वातन्त्र्यवाद, आर्थिक समतावाद आदि गुण एक ही से लगे। इसलिए उन्होंने बौद्ध-धर्म के बाद मार्क्सवाद को अपनाया ।[१] वे भारत के अन्य कम्युनिस्टों की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ कम्युनिस्ट समझते थे । उनका विचार था कि अन्य भारतीय कम्युनिस्ट, हिन्दू से कम्युनिस्ट बने हैं, इसलिए वे साम्प्रदायिक भावना से मुक्त नहीं हो सकते । राहुल जी बौद्ध से कम्युनिस्ट बने थे इसलिए वे अपने को साम्प्रदायिक भावना से कोसों दूर मानते थे ।

राहुल जी, वास्तव में, मानवतावादी थे । मानवतावाद में राहुल जी की राजनीति अपनी चरमसीमा पर पहुंच गई थी । वे ऐसी राजनीति के पक्ष में थे जो गरीबी को दुनिया से दूर कर दे, दासता और परतन्त्रता का संसार में चिह्नमात्र भी न रहने दे । वे चाहते थे कि राजनीति में प्राणि-मात्र के अधिकार समान हों ।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

विश्व के ज्ञान-क्षेत्र में भारत के जिन गिने-चुने विद्वानों ने असाधारण देन दी उनमें राहुल जी का कार्य नव्य एवं मौलिक है। राहुल जी विषय की गहराई में जाकर उसकी नवलतम उपलब्धियों के सम्बन्ध में विचार कर तत्व-दर्शन देने वाले प्रकाण्ड विद्वान थे । वे रूढ़िवादिता और प्राचीनता पर मौलक चिन्तन कर सामाजिक समस्याओं को यथार्थ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुलझाने वाले समाज-सुधारक थे । मानवता के दुःख दर्द के प्रति यथार्थ सहानुभूति और करुणामयी दृष्टि रखना उनकी विशेषता थी ।

राहुल जी अपने विशाल साहित्य-निकेतन के शिल्पी, इंजीनियर तथा श्रमिक सभी कुछ थे । अपनी बहुविध और अनेक क्षेत्रव्यापी कृतियों की उन्होंने स्वयं योजनायें बनाईं, सामग्री एकत्र की, लहू-पसीना एक करके ईंटों पर ईंटें जोड़ीं और धैर्यपूर्वक उसके प्रत्येक पक्ष को उभारने और चमकाने का यथासम्भव प्रयत्न किया । उनका जीवन इतना व्यस्त और अनेक कष्टों से भरा होने पर भी, उनकी प्रतिभा का क्षेत्र इतना विशद एवं बहुरंगी था कि उन्होंने दर्शन, इतिहास, पुरातत्व, भाषा-शास्त्र, विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, साम्यवाद, उपन्यास, एकांकी, यात्रा, संस्मरण, जीवनी, निबन्ध—सभी विषयों पर गम्भीरतापूर्वक लिखा है ।[२]

---

१ उपमा—पत्रिका, राहुल स्मृति विशेषांक, पृ० १६५—अगस्त १९६३ (राहुलजी की मेरी जीवन-यात्रा, भाग तृतीय के प्रकाशित अंश के आधार पर) ।

२ विस्तृत सूची के लिए कृपया देखिये—अध्याय २

राहुल जी की कृतियाँ अपने गुणों के वैशिष्टय् के साथ मात्रा की विपुलता में भी आश्चर्यजनक हैं। उनकी छोटी बडी प्रकाशित पुस्तकों की संख्या लगभग सवा सौ है। इसके साथ यदि उनकी अन्य भाषाओं में अनुवादित कृतियों, सम्पादित ग्रंथों एवं अप्रकाशित रचनाओं को सम्मिलित कर लिया जाय तो पुस्तकों की कुल संख्या डेढ़ सौ से अधिक हो जाती है।[1]

विधाओं की विविधता के साथ राहुल जी की रचनाओं के विषयों में भी विविधता है। एक ओर 'दर्शन-दिग्दर्शन' जैसा गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है तो दूसरी ओर 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' जैसी सरल भाषा और साधारण शैली में लिखी पुस्तक। 'मध्य एशिया का इतिहास' लिखकर इतिहासकारों को और 'वाल्गा से गंगा' लिखकर कहानीकारों को लेखन-कला का एक नवीन मार्ग दिखाया। 'हिन्दी काव्यधारा' लिख कर और आठवीं नौवीं शताब्दी के सिद्ध कवियों की रचनाओं से उद्धरण देकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि अपभ्रंश-साहित्य मूलतः हिन्दी साहित्य है। इसी रचना के समानान्तर 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' लिखकर यह सिद्ध किया है कि उर्दू साहित्यकार जिसे पुरानी उर्दू कहते हैं वास्तव में हिन्दी ही की एक शैली है। सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों में जहाँ गौरवमय अतीत का वर्णन किया है वहां उन्होंने 'बाईसवीं सदी' में भावी समाज का अनुपम चित्रण किया है। अपनी देश-विदेश की यात्राओं पर उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं।[2] अपनी तिब्बत-यात्राओं से वे अनेक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ, चित्र तथा अनेक ग्रन्थों के फोटो लाये। उन्होंने चित्र पटना म्यूजियम को भेंट किये और ग्रन्थ 'बिहार रिसर्च सोसाइटी पटना' को समर्पित किये।

'घुमक्कड़ी', राजनीति और धर्म—इन तत्वों के अतिरिक्त राहुल-साहित्य को अनुप्राणित करने वाला चौथा तत्व है—राहुल जी का इतिहास-प्रेम। वर्तमान और यथार्थ से प्रेम करते हुये वे अतीत को भूलना नहीं चाहते थे। पर प्राचीन उनके लिये वहीं तक आकर्षक था जहाँ तक कि वह कुछ प्रेरणा दे सके। उनकी इस मनोवृत्ति ने उनको इतिहासकार और पुरातत्वप्रेमी बना दिया। जब वे डी० ए० वी० कालेज, लाहौर में पढ़ा करते थे वहाँ वे पुस्तकालय में पुरातन वस्तुओं की वैज्ञानिक खोज से सम्बन्धित पुस्तकें देखा करते थे। वहीं से उन्हें इतिहास में रुचि हुई। बौद्ध-भिक्षु बनने पर बौद्ध धर्म के प्राचीन ग्रन्थों की खोज में वे तिब्बत गये। वहाँ उन्होंने ग्रन्थ और ताल-पोथियाँ ढूंढ़ निकालीं जो पुरातत्व और इतिहास की दृष्टि से अमूल्य हैं। पुरातत्व एवं इतिहास के प्रति इस प्रेम ने उनकी रचनाओं को अनुप्राणित किया। इतिहास को प्रत्यक्ष विषय बना कर उन्होंने मध्य एशिया का इतिहास (भाग १, २) अकबर, भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक, इस्लामधर्म की

[1] कृपया देखिये, अध्याय २

[2] कृपया देखिये, अध्याय २

रूप रेखा—ग्रन्थ लिखे। परोक्ष रूप से इतिहास का उपयोग उन्होंने अपनी कई रचनाओं में किया है।

राहुल जी के लेखन-कार्य से हिन्दी साहित्य के भण्डार में महत्वपूर्ण श्री-वृद्धि हुई है। उन्होंने साहित्य के किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा। यह उनके अथक परिश्रम का सुफल है। रचना कार्य करते समय वे रात दिन एक कर देते थे। सोलह-सोलह और अठारह-अठारह घन्टे तक लिखते पढ़ते रहते थे। वे जेल में होते या घुमक्कड़ी में उनका रचना-कार्य अविरत चलता ही रहता था।

साहित्य-सृजन की प्रेरणा से ओत-प्रोत और सुयश की प्रेरणा से विरक्त राहुल जी जैसा व्यक्तित्व विश्व के इतिहास में कभी कभी आया करता है।

राहुल जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे।[१] उनमें से कुछ पर तो उनका अपनी मातृ भाषा के समान अधिकार था फिर भी उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हिन्दी में प्रस्तुत कीं। इससे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनके अनन्य अनुराग का प्रमाण मिलता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्वंध के लिए वे जिये और उसी में उन्होंने अपने को होम कर दिया। सन् १९४७ ई० में वे हिन्दी भाषा तथा साहित्य की प्रचारक सस्थाओं में अग्रगण्य 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' के बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष बने। अध्यक्ष पद से भाषण करते हुये उन्होंने संस्कृत निष्ठ हिन्दी का समर्थन किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी कम्युनिस्ट पार्टी की घोषित नीति तक की चिन्ता न की। राहुल जी के पाण्डित्य की धाक विदेशों में भी जमी हुई थी। पहले वे लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में और फिर सन् १९५९-६१ में विद्यालंकार विश्वविद्यालय, लंका में आचार्य (प्रोफेसर) रहे। सन् १९६२ में राहुल जी को विद्यालंकार विश्वविद्यालय, लंका की ओर से साहित्यचक्रवर्ती (डि० लिट्०) की उपाधि से सम्मानित किया गया।[२] भारत सरकार ने राहुल जी को उनकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया (देहावसान के उपरान्त)[३]। राहुल जी प्राय: अपने जीवन के अन्त तक निरन्तर साहित्य सृजन करते रहे। लम्वी बीमारी के उपरान्त १४ अप्रैल, सन् १९६३ ई० को सत्तर वर्ष की आयु पूरी करने पर राहुल जी का देहावसान हुआ। हिन्दी जगत् में राहुल जी का व्यक्तित्व वेजोड़ है। हिन्दी साहित्य उन पर गर्व कर सकता है।

---

१ कृपा देखिये श्रीमती कमला सांकृत्यायन का दिनांक २५ जून, १९६४ का पत्र, परिशिष्ट।

२ "आज"—दैनिक पत्र, साप्ताहिक विशेषांक, पृ० ५

३ कृपया देखिये श्रीमती कमला सांकृत्यायन का दिनांक २५ जून, १९६४ का पत्र, परिशिष्ट।

द्वितीय अध्याय

राहुल जी की रचनाएँ तथा साहित्यिक-कृतियाँ

राहुल—बहुमुखी प्रतिभा

भारतीय समाज के नव जागरण कार्य में, योगदान करने वाले साहित्यकारों में, राहुल जी का नाम उल्लेखनीय है। राहुल जी ने देश-विदेशों की यात्राएँ कीं और भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लिया। इतने व्यस्त जीवन में, उन्होंने जिस संख्या और परिमाण में साहित्य-रचना कार्य किया, वह उन जैसे प्रतिभाशाली और अध्यवसायी व्यक्ति द्वारा ही सम्भव था। उनका रचनाकार्य इतना विशाल, बहुमुखी एवं इतनी भव्य प्रेरणाओं से परिपूर्ण है कि उनकी देन को देखकर आश्चर्य होता है।

राहुल जी का प्रथम हिन्दी-लेख मेरठ के 'भास्कर' पत्र में सन् १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात उनके अन्य लेख हिन्दी-पत्रों में यदा-कदा प्रकाशित होते रहे। वस्तुतः, उनका साहित्यिक जीवन, सन् १९२७ ई० से आरम्भ होता है। उस समय वे लंका में थे। वहाँ, लंका के सम्बन्ध में धारावाहिक रूप में उन्होंने लेख लिखे, जो 'सरस्वती' (मासिक), 'विश्वामित्र' (दैनिक)' तथा 'मिलाप' (दैनिक) में छपे थे।[1]

राहुल जी की लेखनी चौंतीस वर्षों (सन् १९२७ से १९६१ ई०) तक निरन्तर साहित्य-सृजन करती रही। सन् १९६१ ई० में, गम्भीर रूप से रुग्ण हो जाने पर ही इसने विश्राम लिया। इस दीर्घ अवधि में राहुल जी ने हिन्दी, संस्कृत एवं तिब्बती भाषाओं में पर्याप्त रचनाओं को जन्म दिया। हिन्दी में कथा-साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने यात्रा, जीवनी-संस्मरण, देश-दर्शन, विज्ञान, इतिहास, राजनीति तथा दर्शन सम्बन्धी विषयों पर पर्याप्त मात्रा में लिखा। राहुल जी ने कुल कितने ग्रन्थ लिखे—इस प्रश्न पर मतभेद है। कतिपय विद्वान उनकी रचनाओं की संख्या २०० से ३०० तक बताते हैं।[2] इस प्रसंग में स्वर्गीय राहुल जी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला

---

[1] मेरी जीवन-यात्रा, भाग २, राहुल सांकृत्यायन, पृ० १५

[2] (अ) साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', ५ मई, १९६३ के सम्पादकीय (पृष्ठ ३) में राहुल जी की हिन्दी-रचनाओं की संख्या १७० दी गई है।

(ब) 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली दिनांक २१ अप्रैल, १९६३ में पृष्ठ ५ पर 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन' सम्बन्धी श्रद्धांजलि (लेखक—ऐ० आर० जैन) के अन्तर्गत राहुल जी की पुस्तकों की संख्या लगभग २०० बताई गई है।

(स) अंग्रेजी दैनिक पत्र 'दी ट्रिब्यून' अम्बाला, दिनांक १९ अप्रैल, १९६३, में गामिनी अभयशेखर ने सम्पादक के नाम अपने पत्र में राहुल जी की रचनाओं की संख्या ३०० बताई है।

सांकृत्यायन द्वारा लिखित एक पत्र प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखक को प्राप्त हुआ है जिसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"पंडित जी की पुस्तकों की जो सूची मैंने आपके पास भेजी है, उसे आप बिल्कुल प्रामाणिक मान, हाँ, उसमें अन्य आठ पुस्तकें जोड़ लें। २००-३०० की बात तो किंवदन्ती है।"[१]

राहुल जी की रचनाओं की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद होने के कई कारण हैं। राहुल जी बड़े कर्मठ और अथक परिश्रमी व्यक्ति थे। उनका लेखन-काल एक शताब्दी के चतुर्थांश से अधिक है। फलस्वरूप उनकी लेखन-रचनाओं की संख्या असाधारण है। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अजस्र गति से लिखा है। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, तिब्बती, भोजपुरी आदि विभिन्न भाषाओं में रचनाएँ की हैं। साथ ही, उनकी रचनाओं के प्रकाशक विभिन्न हैं। राहुल जी की पुस्तकों की संकलित सूची के स्थान पर प्रकाशक अपने द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकों की सूची प्रसारित करते रहे हैं। उक्त कारणों से राहुल जी की रचनाओं की संख्या न्यूनाधिक बताई जाती रही है।

राहुल जी की प्रकाशित रचनाएँ

राहुल जी की प्रकाशित रचनाओं की निश्चित संख्या के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व निम्नलिखित उपलब्ध सूचियों की तुलना करना आवश्यक है :—

१—श्रीमती कमला सांकृत्यायन की ओर से जुलाई, १९६३ में प्राप्त सूची।

२—राहुल कृत 'जय यौधेय' उपन्यास के आवरण-पत्र के पिछली ओर छपी सूची। प्रकाशक, किताबमहल, इलाहाबाद।

३—'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' नामक पुस्तक पर आधारित सूची। प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी—सं० २०१४ वि०।

४—'आज' हिन्दी दैनिक पत्र, वाराणसी में दिनांक २८-४-१९६३ के राहुल-स्मृति अंक के अन्तर्गत प्रकाशित सूची।

५—'ज्ञानपीठ' मासिक पत्रिका, वाराणसी, में नवम्बर, १९६३ में छपी सूची।

६—'उपमा' मासिक पत्रिका, कानपुर, के अगस्त १९६३ के राहुल विशेषांक के अन्तर्गत छपी सूची।

उपर्युक्त सूचियों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है।

---

१ श्रीमती कमला सांकृत्यायन के दिनांक २५ नवम्बर, १९६३ से उद्धृत। पत्र के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

(१) श्रीमती कमला सांकृत्यायन की ओर से प्राप्त सूची[1]—

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
उपन्यास-कहानी			
	(क) मौलिक		
१—(१)	सतमी के बच्चे (कहानी)	१९३५	किताब महल
२—(२)	जीने के लिये	१९४०	,,
३—(३)	सिंह सेनापति	१९४४	,,
४—(४)	जय यौधेय	१९४४	,,
५—(५)	वोल्गा से गंगा (कहानी)	१९४४	,,
६—(६)	मधुर स्वप्न	१९४९	आधुनिक पुस्तक
७—(७)	बहुरंगी मधुपुरी (कहानी)	१९५३	राहुल प्रकाशन
८—(८)	विस्मृत यात्री	१९५४	किताब महल
९—(९)	कनैला की कथा (कहानी)	१९५५-५६	,,
१०—(१०)	दिवो दास	१९६१	,,
	(ख) अनुवाद		
११—(१)	शैतान की आँख	१९२३	किताब महल
१२—(२)	विस्मृति के गर्भ में	,,	,,
१३—(३)	जादू का मुल्क	,,	,,
१४—(४)	सोने की ढाल	,,	,,
१५—(५)	दाखुंदा	१९४७	,,
१६—(६)	जो दास थे	,,	,,
१७—(७)	अनाथ	१९४८	,,
१८—(८)	अदीना	१९५१	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान
१९—(९)	सूदखोर की मौत	,,	,,
२०—(१०)	शादी	१९५२	करेन्ट बुक डिपो
कोश			
२१—(१)	शासन शब्द कोश	१९४८	हि० सा० सम्मेलन
२२—(२)	राष्ट्रभाषा कोश	१९५१	राष्ट्रभाषा समिति
जीवनी			
२३—(१)	मेरी जीवन-यात्रा (१, २)	१९४४	किताब महल
२४—(२)	सरदार पृथ्वीसिंह	,,	ज्ञान मण्डल
२५—(३)	नये भारत के नये नेता	१९४४	किताब महल

[1] यह सूची कमला जी के दिनांक २४-७-१९६३ के पत्र के साथ प्राप्त हुई थी। पत्र के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

क्रम पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
२६—(४) राजस्थानी रनिवास	१९५३	राहुल प्रकाशन
२७—(५) बचपन की स्मृतियां	,,	किताब महल
२८—(६) अतीत से वर्तमान	,,	हिन्दी प्रचारक
२९—(७) स्तालिन	१९५४	पी० प० हाउस
३०—(८) कार्ल मार्क्स	,,	किताब महल
३१—(९) लेनिन	१९५४	पी० प० हाउस
३२—(१०) माओ चे-तुंग	,,	,,
३३—(११) घुमक्कड़ स्वामी	१९५६	किताब महल
३४—(१२) असहयोग के मेरे साथी	,,	,,
३५—(१३) जिनका मैं कृतज्ञ	,,	,,
३६—(१४) कप्तान लाल	—	—
३७—(१५) सिंहल के वीर पुरुष	—	—
३८—(१६) सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन	—	—
दर्शन		
३९—(१) वैज्ञानिक भौतिकवाद	१९४२	आधुनिक पुस्तक
४०—(२) दर्शन-दिग्दर्शन	,,	किताब महल
४१—(३) बौद्ध-दर्शन	,,	—
देश दर्शन		
४२—(१) सोवियत भूमि (१,२)	१९३८	किताब महल
४३—(२) सोवियत मध्य-एशिया	१९४५	युनिवर्सल प्रेस
४४—(३) किन्नर देश	१९४८	किताब महल
४५—(४) दार्जिलिंग परिचय	१९५०	आधुनिक पुस्तक भवन
४६—(५) कुमाऊँ	१९५१	ज्ञान मण्डल
४७—(६) गढ़वाल	१९५२	ला जर्नल प्रेस
४८—(७) नेपाल (अप्रकाशित)	१९५३	—
४९—(८) हिमाचल प्रदेश (अप्रकाशित)	१९५४	—
५०—(९) जौनसार-देहरादून	१९५५	—
बौद्धधर्म		
५१—(१) बुद्ध-चर्या	१९३०	महाबोधि सभा
५२—(२) धम्मपद	१९३३	,,
५३—(३) मज्झिमनिकाय	,,	,,
५४—(४) विनयपिटक	१९३४	,,
५५—(५) दीर्घ निकाय	१९३५	,,
५६—(६) महामानव बुद्ध	१९५६	—

क्रम पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
भोजपुरी (नाटक)		
५७-५९ (१-३) तीन नाटक	१९४४	किताब महल
६०-६४ (४-८) पाँच नाटक	"	अच्युतानंद सिंह, छपरा
यात्रा		
६५—(१) मेरी लद्दाख-यात्रा (यात्रावलि १)	१९२६	किताब महल
६६—(२) लंका	१९३३	"
६७—(३) तिब्बत में सवा वर्ष	१९२६-२८	"
६८—(४) मेरी यूरोप-यात्रा	१९३९	"
६९—(५) मेरी तिब्बत-यात्रा	१९३२	"
७०—(६) यात्रा के पन्ने	१९३४	"
७१—(७) जापान	१९३४-३६	सा० सदन
७२—(८) ईरान	१९३५	अच्युतानन्द
७३—(९) रूस में पच्चीस मास	१९३५-३६	नवभारती
७४—(१०) घुमक्कड़ शास्त्र	१९४४-४७	आलोक प्रकाशन
७५—(११) एशिया के दुर्गम खंडों में	१९४९	किताब महल
	१९५६	नव भारती
राजनीति, साम्यवाद		
७६—(१) बाईसवीं सदी	१९२३	किताब महल
७७—(२) साम्यवाद ही क्यों ?	१९३४	"
७८—(३) दिमागी गुलामी	१९३७	"
७९—(४) क्या करें	"	"
८०—(५) तुम्हारी क्षय	१९४७	"
८१—(६) सोवियत न्याय	१९३९	वाणी
८२—(७) राहुल जी का अपराध	"	त्रिवेदी
८३—(८) सोवियत कम्यूनिस्ट पार्टी का इतिहास	१९३९	प्रयाग
८४—(९) मानव समाज	१९४२	आधुनिक पुस्तक
८५—(१०) आज की समस्यायें	१९४४	किताब महल
८६—(११) आज की राजनीति	१९४९	आधुनिक पुस्तक
८७—(१२) भागो नहीं बदलो	१९४४	किताब महल
८८—(१३) कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं ?	१९५३	राहुल प्रकाशन
विज्ञान		
८९—(१) विश्व की रूपरेखा	१९४२	किताब महल
साहित्य और इतिहास		
९०—(४) इस्लाम धर्म की रूपरेखा	१९२३	किताब महल

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
९१—(२)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१९३५	,,
९२—(३)	पुरातत्व निबंधावलि	१९३६	,,
९३—(४)	हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश)	१९४४	,,
९४—(५)	बौद्ध-संस्कृति	१९४९	आधुनिक पुस्तक
९५—(६)	साहित्य निबंधावलि	,,	किताब महल
९६—(७)	आदि हिन्दी की कहानियाँ	१९५	राहुल पुस्तक
९७—(८)	दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा	१९५२	रा० भा० परिषद्
९८—(९)	मध्य एशिया का इतिहास (भाग १,२)	१९५२	,,
९९—(१०)	सरह दोहा कोश	१९५४	,,
१००—(११)	ऋग्वेदिक आर्य	१९५६	किताब महल
१०१—(१२)	अकबर	,,	,,
१०२—(१३)	भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक	१९५	करेन्ट बुक डिपो
१०३—(१४)	तुलसी रामायण संक्षेप	१९५७	—

ग) संस्कृत

संस्कृत (टीका, अनुवाद)

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
१०४-८ (१-५)	संस्कृत पाठमाला	१९२८	चौखम्बा
१०९—(६)	अभिधर्म कोश (टीका)	१९३०	काशी विद्यापीठ
११०—(७)	विज्ञप्तिमात्रता सिद्धिः (पुनरनूदित)	१९३४	बिहार रिसर्च
१११—(८)	प्रमाण वार्त्तिक स्ववृत्ति	१९३७	किताब महल
११२—(९)	हेतु बिन्दु	१९४४	गायकवाड
११३—(१०)	सम्बन्ध परीक्षा	,,	जायसवाल
११४—(११)	निदान सूत्र;	१९५१	बुद्ध बिहार, लखनऊ
११५—(१२)	महापरिनिर्वाण सूत्र	,,	,,
११६—(१३)	संस्कृत काव्यधारा	१९५५	किताब महल
११७—(१४)	प्रमाण वार्त्तिक (अंग्रेजी)	—	—

(घ) तिब्बती

भाषा व्याकरण

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
११८—(१)	तिब्बती बालशिक्षा	१९३३	महाबोधि सभा
११९-२१ (२-४)	पाठावलि (१,३)	,,	यंगमैन एसो०, लद्दाख
१२२—(५)	तिब्बती व्याकरण	१९३३	महाबोधि सभा

(ङ) संस्कृत तालपोथी सम्पादन

दर्शन, धर्म

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
१२३—(१)	वादन्याय	१९३५	बिहार रिसर्च
१२४—(२)	प्रमाणवार्त्तिक	,,	,,

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
१२५—(३)	अध्यर्द्धशतक	१९३५	बिहार रिसर्च
१२६—(४)	विग्रहव्यावर्त्तनी	,,	,,
१२७—(५)	प्रमाण वार्त्तिकभाष्य	१९३५-३६	जायसवाल इंस्टीट्यूशन
१२८—(६)	प्रमाण वार्त्तिक वृत्ति	१९३६	बिहार रिसर्च सो०
१२९—(७)	प्र० वा० स्ववृत्तिटीका	१९३७	किताब महल
१३०—(८)	विनय सूत्र	१९४३	भारती विद्या भवन

उपर्युक्त सूची में पुस्तकों की कुल संख्या १३० है। कमला जी ने इस सूची में दो पुस्तकें—'नेपाल' तथा 'हिमाचल प्रदेश'—अप्रकाशित दिखाई हैं। इस प्रकार प्रकाशित पुस्तकों की संख्या १२८ रह जाती है। कमला जी ने इस संख्या की पुष्टि अपने १७ अगस्त १९६५ के पत्र द्वारा की है।[१] यह सूची अन्य उपलब्ध सूचियों की अपेक्षा बृहत्तर है। राहुल जी तथा उनके साहित्य से निकटतम सम्पर्क होने के कारण कमला जी की सूची के प्रामाणिक होने की अधिक सम्भावना है। अतः अन्य सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए इस सूची को आधार बनाया गया है।

(२) राहुल कृत 'जय यौधेय' उपन्यास के आवरण-पत्र के पिछली ओर छपी सूची[२]—

इस सूची में ९८ पुस्तकों के नाम हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि आवरण पत्र पर स्थानाभाव के कारण राहुल जी की केवल प्रसिद्ध और लोकप्रिय पुस्तकों के ही नाम दिये गये हैं। पुस्तकों के नाम कमला जी की उपर्युक्त सूची के अनुकूल हैं।

(३) 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' नामक पुस्तक पर आधारित सूची[३]—

इस सूची में राहुल जी की केवल ८८ पुस्तकों के नाम दे रखे हैं। तिब्बत में बौद्धधर्म, दार्जिलिंग परिचय, विश्व की रूप रेखा—पुस्तकों के नाम इस सूची में दो-दो बार दिये गये हैं। 'रूस में पच्चीस मास' नामक पुस्तक के अतिरिक्त एक और पुस्तक 'रूस में पचास मास' पृथक रूप से दिखाई गई है। इस नाम की पुस्तक उपर्युक्त अन्य किसी सूची में नहीं है। 'सोवियत् भूमि' और 'मेरी जीवन यात्रा' के दो भागों में से प्रत्येक भाग को भिन्न पृथक पुस्तक के रूप में गिना गया है। हिमाचल प्रदेश—पुस्तक अप्रकाशित है किन्तु इस सूची में इसको प्रकाशित दिखाया गया है। शेष ८१ पुस्तकों के नाम कमला जी की सूची के अनुसार हैं।

(४) 'आज' हिन्दी दैनिक पत्र, वाराणसी, के दिनांक २८-४-१९६३ के पृष्ठ ६ पर 'राहुल साहित्य' शीर्षक के अन्तर्गत छपी सूची—

इस सूची में कुल पुस्तकें १२९ हैं। इनमें से 'हिमाचल प्रदेश' और 'नेपाल'—दो अप्रकाशित हैं। १२७ प्रकाशित पुस्तकों में से केवल एक पुस्तक 'आजमगढ़

---

[१] पत्र दिनांक १७ अगस्त, १९६५ के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

[२] प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण, १९५६

[३] प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण, सम्वत् २०१४ वि०।

पुरातत्व' ऐसी पुस्तक है जो कमला जी की सूची में नहीं है, शेष सभी पुस्तकें उस सूची के अनुकूल हैं।

(५) 'उपमा' मासिक पत्रिका, कानपुर के अगस्त १९६३ के राहुल विशेषांक के अन्तर्गत पृष्ठ १८० से १८३ पर छपी सूची—

इस सूची में प्रकाशित पुस्तकों की कुल संख्या १२६ (सिंघल के वीर पुरुष, क्रमांक १३४ समेत) है। कमला जी की सूची से इस सूची में यह दो पुस्तकें कम हैं—प्रमाणवार्त्तिक (अंग्रेजी) और शादी (अनूदित उपन्यास)। शेष पुस्तकों के नाम कमला जी की सूची से मिलते हैं।

(६) 'ज्ञानपीठ', मासिक पत्रिका, वाराणसी, नवम्बर १९६३ के अन्तर्गत पृष्ठ १४ से १६ पर प्रकाशित राहुल साहित्य की सूची—

इस सूची में पुस्तकों की कुल संख्या १२५ है। इसमें 'मेरी जीवन-यात्रा', 'सोवियत भूमि', तथा 'मध्य एशिया का इतिहास' नामक पुस्तकों के दो-दो भागों को पृथक पृथक पुस्तकों के रूप में गिना गया है। कमला जी तथा 'उपमा' पत्रिका की सूचियों में इन पुस्तकों के दो भागों की एक पुस्तक के रूप में गणना की गई है। 'नेपाल', 'हिमाचल प्रदेश' एवं 'मेरी जीवन यात्रा'—भाग ३, अप्रकाशित पुस्तकों को ज्ञानपीठ पत्रिका की सूची में प्रकाशित दिखाया गया है। इस सूची में 'सप्तसिन्धु' व 'दिवोदास' दो पृथक पुस्तकें मानी गई हैं। वास्तव में यह एक पुस्तक है। प्रकाशित होने पर 'सप्तसिन्धु' उपन्यास का नाम बदल कर 'दिवोदास' कर दिया गया है। इसमें कमला जी की सूची की ये पुस्तकें—'जादू का मुल्क', 'जो दास थे', 'सूदखोर की मौत','शादी','विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि'—नहीं हैं। इस सूची की 'आजमगढ़ पुरातत्व' पुस्तक का नाम कमला जी की सूची मे नहीं है। इस सूची की शेष ११७ पुस्तकों के नाम कमला जी की सूची के अनुकूल हैं।

राहुल जी की प्रकाशित पुस्तकों की उपर्युक्त सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि कुछ[1] सूचियों में 'मेरी जीवन-यात्रा', 'सोवियत भूमि', 'मध्य एशिया का इतिहास' नामक पुस्तकों के दो-दो भागों को पृथक पुस्तकों के रूप में गिना गया है। वस्तुतः ये एक एक ही पुस्तक हैं। विषय के बृहत आकार के कारण इन पुस्तकों को दो दो खण्डों में प्रकाशित किया है। कमला जी की ओर से प्राप्त सूची में तथा 'उपमा' पत्रिका और 'आज' दैनिक पत्र की सूचियों में इन पुस्तकों को एक एक पुस्तक माना गया है। कुछ[2] सूचियों में 'हिमाचल प्रदेश' व 'नेपाल' को प्रकाशित पुस्तकों के अन्तर्गत

---

[1] 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' तथा 'ज्ञानपीठ' मासिक पत्रिका नवम्बर १९६३ नामक शीर्षकों के अन्तर्गत इसी अध्याय में दी गई सूचियाँ।

[2] 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य', 'ज्ञानपीठ' मासिक पत्रिका, नवम्बर १९६३, एवं 'आज' दैनिक पत्र शीर्षकों के अन्तर्गत इसी अध्याय में दी गई सूचियाँ।

ग्रहण किया गया है। वास्तव में ये प्रकाशित[1] हैं। इन्हीं कारणों से उपयुक्त सूचीगत पुस्तकों की संख्या में भिन्नता है।

कमला जी की सूची उपर्युक्त अन्य सूचियों की अपेक्षा बृहत्तर ही नहीं, इसमें पुस्तकों के लेखनकाल व प्रकाशकों के नाम भी अंकित हैं। अतः राहुल जी की प्रकाशित पुस्तकों के सम्बन्ध में किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, इस सूची को आधार बनाना युक्तिसंगत है। इस सूची की १२८ पुस्तकों में 'प्रमाणवार्त्तिक' (अंग्रेजी, क्रमांक ११७) को पृथक् पुस्तक के रूप में गिना गया है। वास्तव में, यह पुस्तक, राहुल जी की 'प्रमाणवार्तिक' (संस्कृत) का अनुवादमात्र है, अतः इसे पृथक् नहीं गिना जा सकता। इस सूची में भोजपुरी के आठ छोटे नाटकों को आठ पृथक् रचनायें माना गया है। ये आठ नाटक दो पुस्तकों में संगृहीत हैं। अतः इन्हें केवल दो पुस्तकें मानना अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार १२८ पुस्तकों में से एक 'प्रमाणवार्त्तिक' (अंग्रेजी) निकाल देने तथा आठ नाटकों को दो पुस्तकें ग्रहण करने से राहुल जी की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या १२१ रह जाती है। कमला जी ने अपने २५-६-६४ के पत्र[2] में 'चीन में क्या देखा' तथा 'चीन में कम्यून'—पुस्तकों को प्रकाशित माना है। उन्होंने इसी पत्र[3] में लिखा है कि 'आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा' तथा 'सिंघल भाषा' साहित्य सम्मेलन की पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। कमला जी ने अपने १७ अगस्त १९६५ के पत्र[4] में सूचित किया है कि राहुल जी के महापरिनिर्वाण के बाद हिन्दी में केवल एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का नाम है—'पालि साहित्य का इतिहास'। इन पाँच पुस्तकों को और सम्मिलित कर लेने से राहुल जीकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची १२६ हो जाती है। इन पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
	क—हिन्दी		
कहानी			
१—(१)	सतमी के बच्चे	१९३५	किताब महल, इलाहाबाद
२—(२)	वोल्गा से गंगा	१९४४	,,
३—(३)	बहुरंगी मधुपुरी	१९५३	राहुल प्रकाशन, मसूरी
४—(४)	कनैला की कथा[5]	१९५५-५६	किताब महल, इलाहाबाद

---

[1] कमला जी ने अपने १७ अगस्त १९६५ के पत्र में इन्हें अप्रकाशित बताया है। पत्र के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

[2-3] कमला जी के दिनांक २५-६-६४ के पत्र के लिये कृपया देखिये—परिशिष्ट।

[4] पत्र के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

[5] पुस्तकों की जो विधा यहाँ उल्लिखित है वह सूची-पत्रों के उल्लेख के आधार पर है। साहित्यिक दृष्टि से इनके रूप-निर्णय के लिए कृपया देखिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय ३, वहाँ इसे कहानी-संग्रह नहीं, वरन् कनैला का इतिहास माना गया है।

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
उपन्यास (मौलिक)			
५—(१)	जीने के लिए	१६४०	किताब महल, इलाहाबाद
६—(२)	सिंह सेनापति	१६४४	,,
७—(३)	जय यौधेय	,,	,,
८—(४)	मधुर स्वप्न	१६४६	आधुनिक पुस्तक भवन कलकत्ता
९—(५)	विस्मृत यात्री	१६५४	किताब महल, इलाहाबाद
१०—(६)	दिवोदास	१६६१	,,
उपन्यास अनुवादित			
११—(१)	शैतान की आँख	१६२३	किताब महल, इलाहाबाद
१२—(२)	विस्मृति के गर्भ में	,,	,,
१३—(३)	जादू का मुल्क	,,	,,
१४—(४)	सोने की ढाल	,,	,,
१५—(५)	दाखुंदा	१६४७	,,
१६—(६)	जो दास थे	,,	,,
१७—(७)	अनाथ	१६४८	,,
१८—(८)	अदीना	१६५१	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना
१९—(९)	सूदखोर की मौत	१६५१	,,
२०—(१०)	शादी	१६६५[1]	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पिशाचमोचन, वाराणसी
भोजपुरी नाटक			
२१—(१)	तीन नाटक	१६४४	किताब महल, इलाहाबाद
२२—(२)	पाँच नाटक	१६४४	अच्युतानन्द सिंह, छपरा
जीवनी			
२३—(१)	मेरी जीवन-यात्रा (दो भाग)	१६४४	किताब महल, इलाहाबाद
२४—(२)	सरदार पृथ्वीसिंह	,,	ज्ञान मंडल, काशी
२५—(३)	नये भारत के नये नेता	,,	किताल महल, इलाहाबाद
२६—(४)	राजस्थानी रनिवास	१६५३	राहुल प्रकाशन, मसूरी
२७—(५)	बचपन की स्मृतियाँ	,,	किताब महल, इलाहाबाद
२८—(६)	अतीत से वर्तमान	,,	हिन्दी प्रचारक, वाराणसी
२९—(७)	स्तालिन	१६५४	पी० प० हाउस, नई दिल्ली
३०—(८)	कार्ल मार्क्स	,,	किताब महल, इलाहाबाद

---

[1] कृपया देखिये श्रीमती कमला सांकृत्यायन का दिनांक १७ अगस्त, १६६५ का पत्र—परिशिष्ट।

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
३१—(६)	लेनिन	१९५४	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
३२—(१०)	माओ चे-तुंग	,,	किताब महल, इलाहाबाद
३३—(११)	घुमक्कड़ स्वामी	१९५६	किताब महल, इलाहाबाद
३४—(१२)	असहयोग के मेरे साथी	,,	,,
३५—(१३)	जिनका मैं कृतज्ञ	,,	,,
३६—(१४)	कप्तान लाल	१९६१	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
३७—(१५)	सिंहल के वीर पुरुष	१९६३	किताब महल, इलाहाबाद
३८—(१६)	सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन	१९६१	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
यात्रा			
३९—(१)	मेरी लद्दाख यात्रा (यात्रावली १)	१९२६-३३	किताब महल, इलाहाबाद
४०—(२)	लंका	१९२७-२८	,,
४१—(३)	तिब्बत में सवा वर्ष	१९३९	,,
४२—(४)	मेरी यूरोप यात्रा	१९३२	,,
४३—(५)	मेरी तिब्बत यात्रा	१९३४	,,
४४—(६)	यात्रा के पन्ने	१९३४-३६	सा० सदन, देहरादून
४५—(७)	जापान	१९३५	अच्युतानन्द सिंह, छपरा
४६—(८)	ईरान	१९३५-३७	नवभारती, प्रयाग
४७—(९)	रूस में पच्चीस मास	१९४४-४७	आलोक प्रकाशन, बीकानेर
४८—(१०)	घुमक्कड़ शास्त्र	१९४९	किताब महल, इलाहाबाद
४९—(११)	एशिया के दुर्गम खंडों में	१९५६	नवभारती, प्रयाग
देश दर्शन			
५०—(१)	सोवियत भूमि (दो भाग)	१९३८	किताब महल, इलाहाबाद
५१—(२)	सोवियत मध्य एशिया	१९४७	युनिवर्सल प्रेस, इलाहाबाद
५२—(३)	किन्नर देश	१९४७	किताब महल, इलाहाबाद
५३—(४)	दार्जिलिंग परिचय	१९५०	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
५४—(५)	कुमाऊँ	१९५१	ज्ञान मण्डल, काशी
५५—(६)	गढ़वाल	१९५२	ला-जर्नल प्रेस, इलाहाबाद
५६—(७)	जौनसार देहरादून	१९५५	विद्यार्थी ग्रंथागार, इलाहाबाद
५७—(८)	चीन में क्या देखा	१९५९	पीपुल्स प० हा०, नई दिल्ली
५८—(९)	आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा		साहित्य सम्मेलन की पत्रिका में प्रकाशित
५९—(१७)	सिंहल भाषा		,, ,,

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
साहित्य और इतिहास			
६०—(१)	इस्लाम धर्म की रूपरेखा	१९२३	किताब महल, इलाहाबाद
६१—(२)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१९३५	,,
६२—(३)	पुरातत्व निबंधावली	१९३६	,,
६३—(४)	हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश)	१९४४	,,
६४—(५)	बौद्ध-सस्कृत	१९४९	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
६५—(६)	साहित्य-निबंधावली	,,	किताब महल, इलाहाबाद
६६—(७)	आदि हिन्दी की कहानियाँ	१९५०	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना
६७—(८)	दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा	१९५२	बिहार रा० भा० परिषद
६८—(९)	मध्य एशिया का इतिहास (दो भाग)	,,	,,
६९—(१०)	सरहपाद कृत दोहा कोश	१९५४	,,
७०—(११)	ऋग्वेदिक आर्य	१९५६	किताब महल, इलाहाबाद
७१—(१२)	अकबर	,,	,,
७२—(१३)	भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक	१९५७	करेन्ट बुक डिपो, कानपुर
७३—(१४)	तुलसी रामायण संक्षेप	१९५७	भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के लिए[1]
७४—(१५)	पालि साहित्य का इतिहास	१९६४	हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ
राजनीति, साम्यवाद			
७५—(१)	बाईसवीं सदी	१९२३	किताब महल, इलाहाबाद
७६—(२)	साम्यवाद ही क्यों	१९३४	,,
७७—(३)	दिमागी गुलामी	१९३७	,,
७८—(४)	क्या करें	,,	,,
७९—(५)	तुम्हारी क्षय	१९४७	,,
८०—(६)	सोवियत न्याय	१९३९	वाणी मंदिर, छपरा
८१—(७)	राहुल जी का अपराध	,,	त्रिवेदी प्रकाशन, छपरा
८२—(८)	सो० कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास	,,	पी० प० हाउस, नई दिल्ली

[1] कृपया देखिये—श्रीमती कमला सांकृत्यायन का दिनांक १७ अगस्त, १९६५ का पत्र—परिशिष्ट।

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
८३—(९)	मानव समाज	१९४२	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
८४—(१०)	आज की समस्याएं	१९४४	किताब महल, इलाहाबाद
८५—(११)	आज की राजनीति	१९४९	आधुनिक पु० भवन, कलकत्ता
८६—(१२)	भागो नहीं बदलो	१९४४	किताब महल, इलाहाबाद
८७—(१३)	कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं ?	१९५३	राहुल प्रकाशन, मसूरी
८८—(१४)	चीन में कम्यून	१९५९	पी० प० हाउस, नई दिल्ली
दर्शन			
८९—(१)	वैज्ञानिक भौतिकवाद	१९४२	आधु० पुस्तक भवन, कलकत्ता
९०—(२)	दर्शन-दिग्दर्शन	,,	किताब महल, इलाहाबाद
९१—(३)	बौद्ध-दर्शन	,,	आधु०पुस्तक भवन, कलकत्ता
बौद्ध-धर्म			
९२—(१)	बुद्धचर्या	१९३०	महाबोधि सभा, सारनाथ बनारस
९३—(२)	धम्मपद	१९३३	,,
९४—(३)	मज्झिम निकाय	१९३३	,,
९५—(४)	विनय पिटक	१९३४	,,
९६—(५)	दीर्घ निकाय	१९३५	,,
९७—(६)	महामानव बुद्ध	१९५६	बुद्ध बिहार, लखनऊ
कोश			
९८—(१)	शासन शब्द कोश	१९४८	हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग
९९—(२)	राष्ट्रभाषा कोश	१९५१	राष्ट्रभाषा समिति, वर्धा
विज्ञान			
१००—(१)	विश्व की रूपरेखा	१९४२	किताब महल, इलाहाबाद
	ख—संस्कृत (टीका, अनुवाद)		
१०१-५ (१-५)	संस्कृत पाठमाला	१९२८	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
१०६—(६)	अभिधर्म कोश (टीका)	१९३०	काशी विद्यापीठ
१०७—(७)	विज्ञप्ति मात्रता सिद्धिः (पुनरनूदित)	१९३४	बिहार रिसर्च सोसा०, पटना
१०८—(८)	प्रमाणवार्त्तिक स्ववृत्ति	१९३७	किताब महल, इलाहाबाद
१०९—(९)	हेतु बिन्दु	१९४४	बिहार रिसर्च सोसा०, पटना के जर्नल में प्रकाशित।
११०—(१०)	सम्बन्ध-परीक्षा	१९४४	,,
१११—(११)	निदानसूत्र	१९५१	बुद्ध बिहार, लखनऊ
११२—(१२)	महापरिनिर्वाण सूत्र	,,	,,
११३—(१३)	संस्कृत काव्यधारा	१९५५	किताब महल, इलाहाबाद

क्रम	पुस्तक	लेखनकाल-सन्	प्रकाशक
	ग—संस्कृत तालपोथी सम्पादन		
	दर्शन धर्म		
११४—(१)	वादन्याय	१९३५	बिहार रिसर्च सो०, पटना
११५—(२)	प्रमाण वार्त्तिक	,,	,,
११६—(३)	अध्यर्द्ध शतक	,,	,,
११७—(४)	विग्रह व्यावर्त्तनी	,,	,,
११८—(५)	प्रमाण वार्त्तिक भाष्य	१९३५-३६	जायसवाल इन्स्टी०, पटना
११९—(६)	प्रमाण वार्त्तिक वृत्ति:	१९३६	बिहार रिसर्च सो०, पटना
१२०—(७)	प्रा० वा० स्ववृत्ति टीका	१९३७	किताब महल, इलाहाबाद
१२१—(८)	विनयसूत्र	१९४३	भारती विद्याभवन, बम्बई
	घ—तिब्बती (भाषा-व्याकरण)		
१२२—(१)	तिब्बती बाल शिक्षा	१९३३	महाबोधि सभा, सारनाथ
१२३-२५ (२ ४)	पाठावलि १-३	१९३३	यंग मैन एसो० लद्दाख
१२६[1]—(५)	तिब्बती व्याकरण	१९३३	महाबोधि सभा सारनाथ

अप्रकाशित राहुल साहित्य

राहुल जी की उपर्युक्त प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी अन्य अप्रकाशित रचनाएँ हैं। इन रचनाओं की पाण्डुलिपियाँ श्रीमती कमला सांकृत्यायन के पास हैं। कमला जी ने ज्ञानपीठ, मासिक पत्रिका, सितम्बर, १९६५ में, राहुल जी के अप्रकाशित साहित्य की निम्नांकित सूची दी है :[2]

(१) तिब्बती हिन्दी कोश (इसे साहित्य अकादेमी छाप रही है)

(२) तिब्बती संस्कृत कोश

(३) जीवन-यात्रा—भाग ३

(४) राहुल जी की दैनिक डायरियाँ—सन् १९२७ से सन् १९६१ ई० तक

(५) पालि काव्यधारा

(६) नेपाल

---

[1] कमला जी ने अपने १७ अगस्त, १९६५ के पत्र में राहुल जी की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या १२८ दी है। वस्तुतः प्रकाशित पुस्तको की कुल संख्या १२६ बनती है। कमला जी ने अपने १८-९-६५ के पत्र द्वारा सूचित किया है कि उन्होने १२८ पुस्तकों वाली सूची में दो अप्रकाशित रचनाओं—'राहुल निबंधावली' तथा 'राहुल पत्रावली' को भी जोड रखा है। इस प्रकार कमला अनुसार भी राहुल जी की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या १२६ ही है। उक्त पत्रों के लिए कृपया देखिये—परिशिष्ट।

[2] (अ) यह सूची, ज्ञान पीठ, मासिक पत्रिका, सितम्बर, १९६५ में पृ० ५५-५७ पर प्रकाशित कमला जी के लेख पर आधारित है।

(ब) इसी सम्बन्ध में कृपया देखिये—कमला जी का १८-९-६५ का पत्र

(७) हिमाचल परिचय

(८) राहुल जी द्वारा १९५९-६१ ई० के बीच अपने पुत्र जेता और पुत्री जया को लिखे गये पत्र

(९) राहुल जी द्वारा अपने मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों को लिखे गये पत्र

(१०-१२) फुटकल हिन्दी निबन्ध—तीन संग्रह (अनुमानित)

(१३) फुटकल संस्कृत निबंध—एक संग्रह

(१४) फुटकल अंग्रेजी निबन्ध—एक संग्रह

राहुल जी की हिन्दी साहित्यिक रचनाएँ

राहुल जी की हिन्दी ललित साहित्य के अन्तर्गत आने वाली पुस्तकों के सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के प्रसंग में साहित्य के स्वरूप की चर्चा वांछनीय है। साहित्य क्या है, इस विषय पर पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यकारों ने विचार किया है। साहित्य शब्द के अर्थ की व्यापकता के कारण अंग्रेजी के प्रामाणिक कोष 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में साहित्य के स्वरूप के विषय में लिखा गया है—साहित्य एक व्यापक शब्द है जो सही परिभाषा के अभाव में सर्वोत्तम विचार की सर्वोत्तम लिपिबद्ध अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत किया जा सकता है। साहित्य को व्यापक और सीमित—दो अर्थों में प्रयुक्त किया जा सकता है। व्यापक अर्थ में साहित्य ऐसी शाब्दिक रचना-मात्र का वाचक है, जिससे पाठक का कुछ हित अथवा प्रयोजन हो। व्यापक अर्थ में साहित्य, सम्पूर्ण वाङ्मय का पर्याय है। समस्त शब्द-भण्डार और वाणी का विस्तार इसके अन्तर्गत आ जाता है। रघवंश, तुलसीकृत रामायण, साकेत, कामायनी, गोदान, चिन्तामणि आदि समस्त गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ ही नहीं, पंचांग, बीमा कम्पनी एवं दवाइयों के विज्ञापन तक सम्मिलित हैं। व्यापक अर्थ में साहित्य के दो विभाग हैं—काव्य और शास्त्र। काव्य रसात्मक होता है, इसे शक्ति का साहित्य कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जो मानव-हृदय को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। शास्त्र में शासन या नियन्त्रण का भाव होता है। इसे ज्ञान का साहित्य कहा जाता है। इसमें धर्म शास्त्र, नीति, व्याकरण, दर्शन, छन्द, ज्योतिष, इतिहास सभी कुछ आ जाता है।[1]

साहित्य के काव्य और शास्त्र—उपर्युक्त दो विभागों के आधार पर राहुल जी द्वारा कृत साम्यवाद, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, दर्शन, देश-दर्शन, भाषा-व्याकरण, कोश, एवं धर्मशास्त्र सम्बन्धी रचनाएँ शास्त्र के अन्तर्गत आती हैं। राहुल जी की उपन्यास, कहानी, जीवनी एवं यात्रा सम्बन्धी रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत आती हैं। काव्य को यहाँ साहित्य के अर्थ में प्रयोग किया गया है। साहित्य अपने सीमित एवं रूढ़ अर्थ में काव्य अथवा भावना-प्रधान साहित्य का पर्याय है। इस दृष्टि से

---

[1] बा० गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० ३-४ के आधार पर।

राहुल जी की केवल निम्नलिखित मौलिक रचनाएं हिन्दी ललित साहित्य की परिधि में आती हैं—

क्रम-संख्या	साहित्य-विधा	विधानुसार संख्या	पुस्तक	लेखनकाल-सन्
१.	(क) कहानी	(१)	सतमी के बच्चे	१९३५
२.	,,	(२)	वोल्गा से गंगा	१९४४
३.	,,	(३)	बहुरंगी मधुपुरी	१९५३
४.	,,	(४)[१]	कनैला की कथा	१९५५-५६
५.	(ख) उपन्यास	(१)	जीने के लिए	१९४०
६.	,,	(२)	सिंह सेनापति	१९४४
७.	,,	(३)	जय यौधेय	१९४४
८.	,,	(४)	मधुर स्वप्न	१९४९
९.	,,	(५)	विस्मृत यात्री	१९५४
१०.	,,	(६)	दिवोदास	१९६१
११.	(ग) जीवनी	(१)	मेरी जीवन-यात्रा	१९४४
१२.	,,	(२)	सरदार पृथ्वीसिंह	१९४४
१३.	,,	(३)	नये भारत के नये नेता	१९४४
१४.	,,	(४)	राजस्थानी रनिवास	१९५३
१५.	,,	(५)	बचपन की स्मृतियाँ	,,
१६.	,,	(६)	अतीत से वर्तमान	,,
१७.	,,	(७)	स्तालिन	१९५४
१८.	,,	(८)	कार्ल मार्क्स	१९५४
१९.	,,	(९)	लेनिन	१९५४
२०.	,,	(१०)	माओ-त्से-तुंग	१९५४
२१.	,,	(११)	घुमक्कड़ स्वामी	१९५६
२२.	,,	(१२)	असहयोग के मेरे साथी	१९५६
२३.	,,	(१३)	जिनका मैं कृतज्ञ	१९५६
२४.	,,	(१४)	कप्तान लाल	१९६१
२५.	,,	(१५)	सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन	१९६१
२६.	,,	(१६)	सिंहल के वीर पुरुष	१९६३
२७.	(घ) यात्रा	(१)	मेरी लद्दाख-यात्रा (यात्रावलि १)	१९६३

[१] साहित्यिक दृष्टि से 'कनैला की कथा' के रूप-निर्णय के लिए कृपया देखिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का अध्याय—३ (वहाँ इसे कहानी संग्रह नहीं, वरन् कनैला का इतिहास माना गया है)।

क्रम-संख्या	साहित्य-विधा	विधानुसार संख्या	स्तक	लेखनकाल-सन्
२८.	यात्रा	(२)	लंका	१९२७-२८
२९.	,,	(३)	मेरी यूरोप यात्रा	१९३२
३०.	,,	(४)	मेरी तिब्बत यात्रा	१९३४
३१.	,,	(५)	यात्रा के पन्ने	१९३४-३६
३२.	,,	(६)	जापान	१९३५
३३.	,,	(७)	ईरान	१९३५,१९३६
३४.	,,	(८)	तिब्बत में सवा वर्ष	१९३९
३५.	,,	(९)	रूस में पच्चीस मास	१९४४-४७
३६.	,,	(१०)	एशिया के दुर्गम खण्डों में	१९५६

उपर्युक्त सूची में राहुल जी की केवल हिन्दी मौलिक साहित्य कृतियाँ सम्मिलित की गई हैं। उनकी भोजपुरी, संस्कृत एवं तिब्बती भाषा की कृतियों को अलग रखा गया है। राहुल जी की रचनाओं से सम्बद्ध निम्नांकित निष्कर्ष प्रस्तुत हैं—

१—राहुल जी की प्रकाशित रचनाएँ १२६

२—अप्रकाशित रचनाएँ ... ... १४[1]

३—अन्य भाषाओं की रचनाएँ

(क) संस्कृत १३

(ख) तिब्बती ५

(ग) सम्पादित संस्कृत तालपोथी रचनाएँ ८

(घ) भोजपुरी रचनाएँ २

४—राहुल जी की समस्त हिन्दी रचनाएँ—

(क) ललित साहित्य के अन्तर्गत हिन्दी रचनाएँ ३६

(ख) ललित साहित्य से इतर हिन्दी रचनाएँ ५२

(ग) अनुवादित हिन्दी रचनाएँ (उपन्यास) १०

५—राहुल जी का हिन्दी ललित साहित्य—

(क) उपन्यास ६

(ख) कहानी-संग्रह ... ... ४[2]

(ग) जीवनी १६

(घ) यात्रा १०

---

[1] यह संख्या, ज्ञानपीठ, मासिक पत्रिका, सितम्बर, १९६५ में पृष्ठ ५५-५७ पर प्रकाशित कमला जी के लेख पर आधारित है।

[2] पुस्तकों की विधानुसार जो संख्या यहाँ उल्लिखित है, वह सूची-पत्रों के आधार पर है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में राहुल जी द्वारा रचित कहानी-संग्रह तीन माने गये हैं। 'कनैला की कथा' को कहानी संग्रह नहीं, वरन् इतिहास माना गया है।

तृतीय अध्याय

कथा-साहित्य तथा राहुल जी द्वारा रचित उपन्यास एवं कहानियाँ

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय राहुल जी का कथा-साहित्य है। उनकी कथा-रचनाओं पर विचार करने से पूर्व कथा-साहित्य के स्वरूप एवं तत्वों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

कथा साहित्य—साहित्य का मुख्य अंग

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। जीवन को प्रतिबिम्बित करने के लिए साहित्य के विभिन्न रूपों को अपनाया जाता है। उन सभी रूपों में कथा-साहित्य सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रभावोत्पादक साहित्यांग है। सजीवता, स्वाभाविकता आदि गुणों के कारण कथा-साहित्य में जीवन को प्रतिबिम्बत करने की क्षमता अधिक है। जीवन में रहते हुए हम जीवन के धरातल पर ही तैरते रहते हैं पर कथा-साहित्य में हम डुबकी लगा कर जीवन के अन्तस्तल तक पहुँचते हैं और जीवन का वास्तविक रूप देखते हैं।

कथा साहित्य का गद्यात्मक रूप है। इसमें कल्पना, भावोन्मेष तथा मनोरंजन के साथ अनुभवजन्य ज्ञान-विशेष भी होता है। कथाकार अपनी कथा को केवल पाठकों के मनोरंजन का साधन ही नहीं बनाता अपितु अपनी कृति द्वारा किसी मौलिक विचार-परम्परा को जगत में छोड़ना चाहता है। कथा-साहित्य पाठकों में कुतूहल जगा कर उनको अपनी ओर आकर्षित करता है और उनकी जिज्ञासा की स्वाभाविक प्रवृत्ति को तृप्त करता है। कथा-साहित्य के दो रूप हैं—उपन्यास और कहानी।

उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास (उप+नि+अस् धातु) का शब्दार्थ है—प्रस्तुत करना। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसको नाटक की प्रतिमुख सन्धि का एक उपभेद माना गया है और इसकी व्याख्या दो प्रकार से की गई है। 'उपन्यासः प्रसादनम्' अर्थात् प्रसन्न करने वाले तत्व को उपन्यास कहते हैं। दूसरी व्याख्या इस प्रकार की गई है—'उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः संकीर्तित:' अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है। सम्भव है कि उपन्यास में प्रसन्नता प्रदान करने की शक्ति और युक्तियुक्त रूप में अर्थ को उपस्थित करने की प्रवृत्ति के कारण इस प्रकार की कथात्मक रचनाओं का नाम उपन्यास पड़ा हो किन्तु

नाटक साहित्य के प्राचीन 'उपन्यास' शब्द और आधुनिक उपन्यास शब्द में नाममात्र का साम्य है ।[1]

आजकल जिस अर्थ में बंगला में उपन्यास, गुजराती में नवलकथा, मराठी में कादम्बरी तथा अंग्रेजी में नावेल शब्द का प्रयोग होता है उसी अर्थ में हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग होता है । हिन्दी में उपन्यास कथा-साहित्य के एक रूप में प्रस्तुत हुआ है ।

उपन्यास के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं । इनमें से उल्लेखनीय मतों का विश्लेषण इस प्रकार है ।

मुंशी प्रेमचन्द का कथन है, "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[2]

उपर्युक्त कथन में इस बात पर बल दिया गया है कि उपन्यास वास्तविक जीवन नहीं, जीवन की प्रतिलिपि नहीं, अपितु जीवन का चित्र मात्र है । उपन्यास एक कला है । इसमें वास्तविकता के साथ कल्पना का संयोग होता है । उपन्यासकार उपन्यास में उन घटनाओं को स्थान देता है जो घटित हो चुकी होती हैं या जिनके घटने की सम्भावना होती है । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना तथा उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है । मानव-चरित्र महत्वपूर्ण और रहस्यमय विषय है । निज चरित्र सम्बन्धी रहस्य भी मनुष्य के अपने बोधवृत्त से बाहर होता है । मनुष्य का चरित्र उसके चेतन तथा अवचेतन मन का परिणाम होता है । उसके कार्यों को आचरण की संज्ञा दी जा सकती है । उपन्यासकार पात्रों के चेतन मन को पात्रों की क्रियाओं तथा घटनाओं द्वारा प्रकाश में लाता है । अचेतन मन का ज्ञान प्राप्त करना चेतन की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन होता है । उपन्यासकार पात्रों के अन्तस्तल में प्रविष्ट होता है और विश्लेषण के माध्यम से उनके अवचेतन मन सम्बन्धी रहस्यों को पाठकों के सम्मुख रखता है । इस प्रकार उपन्यासकार उपन्यास के माध्यम से मानव-चरित्र के रहस्यों को प्रकाश में लाने का कार्य करता है ।

डा० श्यामसुन्दरदास के अनुसार, "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।"[3]

यहाँ 'काल्पनिक' का तात्पर्य कपोल-कल्पना से नहीं वरन् घटना के ठेठ सत्य के शुष्क बन्धनों के छुटकारे से है । उपन्यास की कथा में वैज्ञानिक सत्य— 'ऐसा हुआ या ऐसा है'—भले ही न हो किन्तु उसका मूलाधार जीवन-प्रवाह और मानव सुलभ प्रवृत्तियाँ रहने के कारण उपन्यास मानव-जीवन के निकट रहता है । उपन्यास घटना के कोरे सत्य से नहीं बँधता वरन् उसकी संगति और सम्भावना से

---

[1] डा० गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० १५७ से उद्धृत ।

[2] प्रेमचन्द—कुछ विचार, पृ० ३८

[3] साहित्यालोचन, पृ० १८०

अधिक नियन्त्रित रहता है।[1] उपन्यास में जीवन के सत्य की अपेक्षा नाम और तिथियों को कम महत्व दिया जाता है। उसके दृष्टिकोण में शाश्वतता और व्यापक मानवता का अधिक मूल्य है। अतः उपन्यास काल्पनिक घटनाओं द्वारा जीवन के सत्य का उद्घाटन करता है। "न्यू इंग्लिश डिक्शनरी" में दी हुई उपन्यास की परिभाषा "एक लम्बे आकार की काल्पनिक कथा या प्रकथन जिसके द्वारा एक कार्य-कारण शृंखला में बँधे हुये कथानक में वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और कार्यों का चित्रण किया गया हो।"[2] उक्त परिभाषा का समर्थन करती है।

उपन्यास की उपर्युक्त सभी परिभाषाओं की परीक्षा करने के उपरान्त उपन्यास के स्वरूप सम्बन्धी निम्नांकित तत्व सामने आते हैं—

(क) उपन्यास साहित्य का गद्यात्मक रूप है।

(ख) उपन्यास में कथानक का होना आवश्यक है। बिना कथानक के उपन्यास ऐसा है जैसे हड्डी रहित शरीर।

(ग) उपन्यास, मानव-जीवन का चित्र है। इसमें जीवन की प्रतिनिधि घटनाओं का चित्रण होता है। उपन्यास में केवल उन घटनाओं का समावेश किया जाता है जो मानव-चरित्र को प्रभावित करने और पाठकों को आकर्षित करने का सामर्थ्य रखती हैं।

(घ) उपन्यास का आकार लम्बा होता है। इसमें विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश होता है।

(ङ) उपन्यास एक कला है। इसका सम्बन्ध यथार्थ जीवन से होने पर भी इसमें आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रेरणा होती है।

(च) उपन्यास की घटनाएँ रोचक और मनोरंजक होती हैं। घटनाएँ पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। घटनाओं में तन्मय होने के कारण पाठक उपन्यास में रस का अनुभव करते हैं।

(छ) उपन्यासकार, मनोविश्लेषण द्वारा, पात्रों के अन्तराल में प्रविष्ट हो उनके मानसिक रहस्यों को ढूँढ़ निकालता है।

उपन्यास सम्बन्धी उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—उपन्यास गद्यसाहित्य का वह कथात्मक रूप है जिसमें अपेक्षाकृत लम्बी, वास्तविक व काल्पनिक तथा कार्य-कारण शृंखलाबद्ध घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य की रसात्मक रूप से अभिव्यक्ति की जाती है।

कहानी का स्वरूप

कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य मात्र में मिलती है। मनुष्य कहानी में अपने अनुभवों का प्रतिबिम्ब देखता है, इसलिए प्राचीनकाल से मनुष्य का कहानी से सम्बन्ध रहा है। मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण उसके

---

[1] डा० शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १६

[2] बा० गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० १६१ से उद्धृत।

जीवन के साथ कहानी के रूप में निरन्तर विकास होता रहता है। ऐसी स्थिति में कहानी की सुनिश्चित परिभाषा देना कठिन है। यहाँ कुछ मान्य परिभाषाओं पर विचार किया जाता है।

मुंशी प्रेमचन्द का मत है—"कहानीकार का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का अंग दिखाना है।"[१] इस उक्ति से अभिप्राय है कि कहानी में मानव के सम्पूर्ण जीवन पर नहीं अपितु उसके चरित्र के केवल किसी एक पक्ष पर घटनाओं अथवा विश्लेषण द्वारा प्रकाश डाला जाता है।

जयशंकर प्रसाद के अनुसार, "सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना कहानी का उद्देश्य है।"[२]

इस उक्ति में सौंदर्य शब्द से अभिप्राय है—जीवन-सत्य। मानव, मूलरूप में एक पशु है। उसके मन में संकलन की अपेक्षा विग्रह की प्रवृत्ति अधिक काम करती है। जो इस संकलन में सहायक हो, वही सौन्दर्य है और वही जीवन-सत्य है। साहित्यान्तर्गत घटनाएँ अथवा विचार-सरणियाँ हमें इतना प्रभावित करती हैं कि हम अपनी व्यक्तिगत जीवन-पद्धति में परिवर्तन करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। यही साहित्य का सौन्दर्य है। कहानी में इस सौन्दर्य की एक झलक मात्र होती है। वहाँ विस्तार के लिए अवकाश नहीं होता। अतः सम्पूर्ण जीवन की अपेक्षा उसकी एक झलक मात्र प्रस्तुत की जाती है।

प्रसाद जी की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार पाठकों को रस की प्राप्ति होती है। साहित्यान्तर्गत 'रस' लौकिक सुख से भिन्न है। भरतमुनि ने रस की परिभाषा यों की है—'विभावानुभाव संचारियोगाद्रसनिष्पतिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव या संचारि-भाव के संयोग से सामाजिकों के हृदय में वासनारूप में उद्‌बुद्ध रत्यादि स्थायीभाव की अभिव्यक्ति को 'रस' कहते हैं। रस इन्द्रिय-सुलभ सुख से परे आनन्द है। विश्वनाथ जी कहते हैं—'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।' रस की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। इसका अनुभव केवल हृदय में हो सकता है। कहानी पढ़ते समय घटना एवं चरित्र सम्बन्धी गहराइयों में मनुष्य तन्मय हो जाता है। यह तन्मयता सहृदयों को आनन्द प्रदान करती है।[3]

डा० श्यामसुन्दर दास ने कहानी की परिभाषा करते हुए लिखा है—"आख्या-यिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।"[४]

नाटकीय से अभिप्राय है कि कहानी की घटनाएँ साक्षात् घटित होती जान पड़ें। घटना का वर्णन सजीव हो और सम्वाद प्रवाहयुक्त हों। नाटकीय घटना पाठकों

---

१ कहानी-दर्शन—श्री भालचन्द्र गोस्वामी 'प्रखर', पृ० ४० से उद्धृत।
२ डा० छविनाथ त्रिपाठी—कहानी-कला और हिन्दी कहानियों का विकास, पृ० ७ से उद्धृत।
3 आदर्शालोचन—प्रो० टेकचंद व डा० वेदपाल, पृ० ५०-५१।
४ साहित्यालोचन, पृ० २२६।

को अपनी ओर आकर्षित कर प्रभावित करती है। कहानी में जीवन की एक झाँकी रहती है। वह झाँकी कहानी का लक्ष्य होती है। इस लक्ष्य से सम्बन्धित घटनाओं एवं चरित्रों को कहानी में स्थान मिलता है।

बाबू गुलाबराय ने कहानी की परिभाषा में इन्हीं तथ्यों पर बल दिया है—"छोटी कहानी एक स्वतःपूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति-केन्द्रित घटना अथवा घटनाओं के आवश्यक परन्तु कुछ कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कुतूहल-पूर्ण वर्णन हो।"[1]

पाश्चात्य साहित्य में कहानी की विधा ने बहुत उन्नति की है। अमरीकी लेखक एडगर एलिन पो (सन् १८०९-१८४९ ई०) आधुनिक कहानी के जन्मदाताओं में से एक माने जाते हैं। वे लिखते हैं—"छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव के उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो। उसमें ऐसी सब बातों का बहिष्कार कर दिया जाता है जो उस प्रभाव को अग्रसर करने में सहायक न हों। वह स्वतःपूर्ण होती है।"[2]

इस परिभाषा में कहानी के छोटे आकार पर बल दिया गया है। इसे एक बैठक में पढ़ा जा सकता है। साधारणतः मनुष्य ३०-३५ मिनट से लेकर ४०-४५ मिनट तक बिना किसी थकावट के एक स्थान पर बैठ सकता है। इतने समय में वह एक कहानी को सुगमता से पढ़ सकता है। उपन्यास की भाँति कहानी को पढ़ने के लिए कई दिन नहीं चाहिये। मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, डा० श्यामसुन्दर दास तथा बा० गुलाबराय जी की पूर्वोल्लिखित परिभाषाएँ भी कहानी के छोटे आकार का समर्थन करती हैं। एच० जी० वेल्स ने कहानी के आकार की दृष्टि से उसके पठन-समय का निर्देश किया है। वे कहते हैं कि छोटी कहानी एक ऐसा घटना-साहित्य है जो एक घण्टे के अन्दर-अन्दर पढ़ा जा सके।[3]

कहानी की उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर कहानी की निम्न-लिखित विशेषताएँ सामने आती हैं :—

(१) छोटी कहानी गद्य-साहित्य का कथात्मक रूप है। कथा में घटनाएँ, चरित्र और सम्वाद होते हैं।

(२) यह स्वतःपूर्ण होती है। अपनी पूर्णता के लिए इसे पूर्वापर कथा-सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती।

(३) कहानी में एकतथ्यता होती है—मानव-चरित्र की एक झलक अथवा एक मनोवैज्ञानिक सत्य का प्रदर्शन, मुख्य रूप से रहता है।

---

१ काव्य के रूप—बा० गुलाबराय, पृ० २०३

२ काव्य के रूप—बा० गुलाबराय, पृ० २०३ से उद्धृत।

३ काव्य के रूप—पृ० २०२ से उद्धृत।

(४) कहानी का आकार छोटा होता है।

(५) इसकी शैली सजीव होती है। क्षिप्रगति से कहानी अपने लक्ष्य का ओर बढ़ती है।

(६) जीवन सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि कराने के साथ पाठकों को रस का अनुभव कराती है।

कहानी की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कहानी की परिभाषा की जा सकती है—कहानी साहित्य का वह लघु पर स्वतःपूर्ण गद्यरूप है जिसमें जीवन के किसी एक तत्व, मर्म अथवा लक्ष्य की घटनात्मक स्थिति द्वारा कुतूहलजनक अभिव्यक्ति हो।

उपन्यास और कहानी

साहित्य मूलरूप में जीवन की आलोचना है। कथा-साहित्य, जिसमें उपन्यास और कहानी दोनों सम्मिलित हैं, इस कथन का विशेष साक्षी है। उपन्यास की भांति कहानी समाख्यानात्मक शैली में होती है और भूतकाल से सम्बन्ध रखती है। दोनों की कथावस्तु कुतूहल जगाकर पाठकों तथा श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। दोनों विधाएँ कलात्मक रूप से मानव-जीवन पर प्रकाश डालती हैं। इनमें परस्पर इतनी समानताएँ होते हुए भी इनकी निजी भिन्न विशेषताएँ हैं जो कि एक को दूसरे से पृथक् करती हैं।

रचना की गठन-दृष्टि से उपन्यास को प्रबंध और कहानी को निबंध के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। प्रबन्ध रचना विशद होती है। उसके फैले हुए आदि, मध्य और अन्त के सूत्र पारस्परिक तारतम्य की अपेक्षा रखते हैं। निबन्ध-रचना संक्षिप्त और सुगठित होती है। प्रबन्ध में जीवन के विशद पक्ष को चित्रित किया जाता है पर निबन्ध में जीवन के किसी एक अंग की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की जाती है। प्रबन्ध-रचना का प्रवाह शिथिल और निबन्ध-रचना का तीव्र होता है।

उपन्यास में जीवन की विविध सुख-दुःखमयी परिस्थितियों का विशद चित्रण किया जाता है। लघु-काय होने के कारण कहानी में जीवन के किसी एक अंग की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। उपन्यास में मानव-जीवन अथवा समाज की जितनी गहन व्याख्या संभव होती है उतनी कहानी में नहीं।

तात्विक दृष्टि से उपन्यास और कहानी में मौलिक अन्तर नहीं है पर एक की कला विस्तार में है और दूसरे की संक्षिप्ति में। कहानी में उपन्यास के सभी तत्व होते हैं किन्तु इस में एक या दो तत्वों को प्रधानता दी जाती है और शेष तत्व गौण अथवा उपेक्षित होते हैं। उपन्यास में प्रायः सभी तत्वों के विकास को महत्व दिया जाता है। उपन्यास में कई प्रासंगिक कथाएँ होती हैं पर कहानी में प्रासंगिक कथाओं के लिए अवकाश नहीं होता। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में पात्र थोड़े होते हैं। कहानी में पात्रों के चरित्र-विकास के लिए अधिक अवकाश नहीं रहता। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में संवाद संक्षिप्त और अधिक गतियुक्त होते हैं। देशकाल और

वातावरण के चित्रण में कहानीकार उपन्यासकार की अपेक्षा सीमाओं में बँधा रहता है। उपन्यास में कहानी की अपेक्षा जीवन-दर्शन और सामाजिक मूल्यों की आलोचना प्रत्यालोचना के लिए अधिक अवकाश होता है। उपन्यास की शैली व्याख्यात्मक होती है पर कहानी की व्यंजनात्मक।

किसी उपन्यास को आद्योपान्त पढ़ लेने के बाद ऐसा अनुभव नहीं होता कि उसमें कोई बात कहीं छूट गई है पर कहानी पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है। इस अनोखेपन के कारण कहानी का वातावरण विशेष कुतूहलजनक बन जाता है। इसीलिए पाठक उपन्यास की अपेक्षा कहानी को अधिक तन्मयता से पढ़ते हैं।

उपन्यासकार अपने पाठकों को, रम्य स्थलों की सैर कराता हुआ, विश्राम कराता हुआ, कथा को अन्त की ओर शनैः शनैः अग्रसर करता है। कहानीकार प्रायः एक जीवन-बिन्दु पर सम्पूर्ण कला को केन्द्रस्थ कर उसके प्रभाव को तीव्रतम बनाता है। वह पाठकों को अन्तिम संवेदना तक शीघ्रातिशीघ्र ले जाता है। कहानी की झाँकी क्षणिक पर पाठकों के हृदय पर उपन्यास की अपेक्षा अधिक स्थायी छाप छोड़ने वाली होती है।

उपन्यास और कहानी के तत्व

'तत्व' शब्द से अभिप्राय है वह उपकरण जो किसी वस्तु के निर्माण में अपना योग देता है। उपन्यास और कहानी के तत्व वे उपकरण हैं जिनके द्वारा उपन्यास और कहानी का संघटन होता है। उपन्यास और कहानी के तत्व—कथावस्तु, पात्र-चरित्रचित्रण, कथोपकथन, वातावरण, भाषाशैली और उद्देश्य—नाम और संख्या में समान हैं पर मात्रा, स्थिति, गुण तथा धर्म की दृष्टि से इन दोनों के तत्वों में पर्याप्त अन्तर है। उपन्यास और कहानी के तत्वों की व्याख्या इस प्रकार है—

कथावस्तु

कथावस्तु उपन्यास और कहानी का मेरुदण्ड है और कथावस्तु का मेरुदण्ड है कथा। कथावस्तु और कथा दोनों एक वस्तु नहीं हैं। कथा की परिभाषा कथावस्तु की परिभाषा से भिन्न है। कथा में कालक्रम के अनुसार घटनाओं का वर्णन होता है। कथावस्तु भी घटनाओं का कथन है पर इसमें निहित रहस्य पर अधिक बल दिया जाता है। 'राजा मरा और उसके बाद रानी मर गई', यह कथा है। 'राजा मरा और शोक से रानी भी मर गई', यह कथावस्तु है।[1] कथा की प्राण है उत्सुकता और कथावस्तु की जिज्ञासा। कथा में हमारा ध्यान होता है—'आगे क्या हुआ', पर कथावस्तु में हमारा ध्यान होता है—'ऐसा क्यों हुआ ?'

ई० एम० फास्टर के मतानुसार संयोगाश्रित घटनावली का शृंखलाबद्ध नियोजन कथावस्तु कहलाता है।[2] कथावस्तु में कथा की घटनाओं को संयोजित किया

---

[1] श्री नारायण अग्निहोत्री, उपन्यास-तत्व एवं रूप विधान, पृ० १२ (यह विचार उन्होंने ई० एम० फ़ास्टर से ग्रहण किया है)।

[2] 'एस्पेक्ट्स् आफ़ दी नॉविल', पृ० ११६

जाता है। कथावस्तु की घटनाओं में सामंजस्य होता है, उनमें उचित अनुपात होता है। एक घटना दूसरी घटना से निकलती प्रतीत होती है। संघटन के अभाव में घटनाएँ कथा बन सकती हैं पर कथावस्तु नहीं। अतः कथावस्तु से अभिप्राय है घटनाओं का कुशल संघटन।

कथावस्तु के गुण

कथावस्तु में संघटन-कौशल के साथ उसमें कुछ और गुण भी अपेक्षित हैं—

(क) सम्बद्धता—जिस प्रकार अनियंत्रित भीड को गोष्ठी का नाम नहीं दिया जा सकता इसी प्रकार घटनाओं के जमघट को कथावस्तु नहीं कहा जा सकता। चुनाव के उपरान्त घटनाओं को सुसम्बद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। घटनाओं की पारस्परिक सम्बद्धता के अभाव में कथावस्तु की शृंखला टूट जाती है और कथा की प्रभावात्मकता को ठेस पहुँचती है।

(ख) मौलिकता—जिस कथावस्तु में जितनी मौलिकता होती है उतना ही उसका महत्व होता है। कथा में विषय की नवीनता का होना बहुत अच्छी बात है किन्तु वर्णन का ढंग अवश्य नवीन होना चाहिये। मानव सुलभ अनुभूति को अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने की योग्यता मौलिकता को जन्म देती है।

(ग) सत्यता—उपन्यास का यह गुण पाठकों में रचना के प्रति विश्वास जाग्रत करता है। साहित्य में सत्य से अभिप्राय है ऐसा चित्रण जो मानव-जीवन के आधार पर किया गया हो। भले ही कथा में वर्णित नाम, तारीख एवं स्थान वास्तविक न हों किन्तु उसमें जो कुछ प्रस्तुत किया गया हो वह मानव-जीवन के आधार पर हो। घटनाएं मानवस्वभाव अथवा मनुष्य के चरित्र के अनुसार विकसित हों। साहित्य का सत्य मानव-जीवन के परम लक्ष्य को समझने और समझाने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिए मनुष्य को भली प्रकार जीने की प्रेरणा देने वाला दृष्टिकोण जीवन का सत्य है। जीवन का सत्य मानवमात्र की एकता, पारस्परिक स्नेह, त्याग, बलिदान आदि का संदेश देता है।

(घ) रोचकता—साहित्य के सभी अंगों विशेषकर, उपन्यास का मूल उद्देश्य मनोरंजन करना है। अतः उपन्यास की कथावस्तु में रोचकता का गुण होना आवश्यक है। रोचकता के लिए कुतूहल और नवीनता अपेक्षित हैं। आकस्मिक और अप्रत्याशित को भी उपन्यास में उचित स्थान मिलना चाहिए। अप्रत्याशित ऐसा हो जो कार्य-कारण शृंखला से बाहर न हो पर पाठक की कल्पना से बाहर हो। रोचकता के लिए न तो अधिक ब्यौरे की आवश्यकता है और न उसकी उपेक्षा की।

चरित्रचित्रण

चरित्रचित्रण, कथा-साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में ही है। चरित्र द्वारा मनुष्य के आपे (व्यक्तित्व) को जाना जा सकता है। "चरित्र में मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा दोनों ही आ जाते हैं। बाहरी आपे में मनुष्य का आकार-प्रकार, वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन

सहन, चाल-ढाल, बातचीत के विशेष ढंग (तकिया-कलाम, सम्बोधन आदि) और कार्य-कलाप भी आ जाता है। भीतरी आपा इन सब बातों से अनुमेय रहता है। पात्र के भीतरी आपे का चित्रण बाहरी आपे के चित्रण से कहीं अधिक कठिन होता है। उसकी बाहरी परिस्थितियों के प्रति संवेदनशीलता, उसके राग-विराग, उसकी महत्वाकांक्षाएँ, उसके अन्धविश्वास, पक्षपात, मानसिक संघर्ष, दया, करुणा, उदारता आदि मानवीय गुण अथवा नृशंसता, क्रूरता, अनुदारता आदि दुर्गुण सभी बातों का चित्रण रहता है।[१] चरित्र-चित्रण तत्व में मानव के बाह्य और आन्तरिक आपे का चित्रण किया जाता है। चरित्रचित्रण विश्लेषणात्मक और नाटकीय दोनों रीतियों से सम्भव है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण चाहे किसी भी रीति से किया जाय पर उसमें अनुकूलता, संगति एवं स्वाभाविकता अवश्य होनी चाहिये। उपन्यासकार को चाहिए कि पात्रों की प्रकृति के अनुकूल उनको चलने दे। उनके चरित्र से जैसा कार्य विकसित हो सके उनसे वैसा ही काम लेना चाहिये। चरित्रचित्रण में संगति का होना भी आवश्यक है। चरित्र को बिना कारण बदलना उचित नहीं। पात्र उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली न बन जायें। उनके चरित्र का परिवर्तन परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। चरित्रचित्रण के गुणों में स्वाभाविकता भी आवश्यक है। उपन्यास में पात्रों का आचार-व्यवहार वैसा होना चाहिए जैसा कि वास्तविक जीवन में होता है। ऐसा न होने से चरित्रचित्रण में अस्वाभाविकता का दोष आ जायगा।

कथोपकथन

पात्रों के परस्पर वर्तालाप को 'संवाद' अथवा कथोपकथन कहा जाता है। इसका सम्बन्ध कथावस्तु तथा पात्रों दोनों से है। पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन और कथा-क्रम के विकास के लिए इसका उपयोग किया जाता है। कथोपकथन परिस्थिति और पात्र के बौद्धिक विकास के अनुकूल होने चाहिए। कथोपकथन की भाषा तथा उसमें प्रकट किये गये विचारों के पात्र के अनुकूल न होने से उसमें अस्वाभाविकता आ जाती है। कथोपकथन में परिस्थिति के अनुकूल गाम्भीर्य, ओज अथवा माधुर्य आदि गुण होने चाहिए। इसमें सार्थकता एवं संक्षिप्तता के गुण भी अभीष्ट हैं।

वातावरण

कथा-साहित्य में चित्रित मानव स्वतन्त्र इकाई के रूप में नहीं होता। कथा में मानव के चरित्रचित्रण के साथ वातावरण का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप में आवश्यक है। वास्तव मे कथा के सभी तत्वों—कथावस्तु, चरित्रचित्रण, उद्देश्य, भाषाशैली और देशकाल का मिला-जुला रूप होता है। वातावरण की परिभाषा देते हुए श्री 'प्रखर' लिखते हैं—कथानक की गतिविधि, पात्रों का व्यक्तित्व, कहानी का देशकाल

---

१ बा० गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० १६६

(अर्थात् वह जिस स्थान पर और जिस समय घटित होती हुई बताई गई है), कहानी की भाषा और शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य को पाठक तात्कालिक रूप में अर्थात् कहानी पढ़ते-पढ़ते जिस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है।"[1] वातावरण में देशकाल का विशेष महत्व है। देशकाल के अन्तर्गत घटनाओं से सम्बन्धित स्थान अ समय का वर्णन होता है। प्रकृति वर्णन और स्थानीय-रंग देशकाल के अंग हैं। स्थानीय-रंग में घटनास्थल के दृश्यचित्रण पर अधिक बल होता है।

भाषा-शैली

भाषा और शैली दो विभिन्न तत्व है पर इन दोनों मे घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण भाषा-शैली को एक तत्व माना जाता है। भाषा से अभिप्राय है कथ्य का शब्दरूपी शरीर और शैली से अभिप्राय है वह ढंग जिसके द्वारा कथाकार अपने विचार और भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। भाषा-शैली भावों तथा विचारों की वाहन है। इस तत्व के बिना कथ्य कथा का रूप धारण नहीं करता। इस तत्व के सजीव होने पर कथा के दूसरे तत्वों की दुर्बलता छिप जाती है।

उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन

साहित्य की भाँति कथा साहित्य का भी उद्देश्य होता है, जो मानोरंजन से निश्चित रूप में भिन्न होता है। मनोरंजन तो उस उद्देश्य तक पहुँचने का एक साधन है। मनोरंजन मार्ग के श्रम को दूर करता है। कथा की घटना, उसके पात्रों के चरित्र तथा वातावरण के उपकरणों का पाठकों के मन पर सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है। इसी प्रभाव को कथा का उद्देश्य कहा जाता है। प्रत्येक कथा का अन्तर्निहित उद्देश्य होता है—'सत्य का प्रतिपादन'। यहाँ सत्य से अभिप्राय है मानव-जीवन का सत्य। मानव शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। 'मैं' और 'तू' की भावना के कारण वे परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझते हैं। पर भिन्न दीख पड़ने वाले मानव-शरीरों में परस्पर एकता का एक अदृश्य सूत्र विद्यमान है। विभिन्न शरीरों को धारण करने वाली आत्माएँ उस महान सत्ता, परमात्मा का अंश हैं। जो तत्व, मानव-जीवन की अनेकता में एकता के सूत्र की पुन:स्थापना में सहायक होता है, वही जीवन का सत्य है। अहिंसा, दया, प्रेम, एकता आदि भाव जीवन का सत्य हैं। कथा साहित्य का उद्देश्य इसी जीवन-सत्य का प्रतिपादन करना है। कथाकार कथासाहित्य द्वारा दया, सत्य, न्याय, प्रेम, एकता आदि उत्कृष्ट भावों का प्रतिपादन करता है और असत्य, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि भावों की निन्दा करता है।

उपन्यास और कहानी में उद्देश्य का निरूपण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से किया जा सकता है।

---

[1] श्री भालचन्द्र गोस्वामी, 'प्रखर'—कहानी-दर्शन, पृ० ३११

उपन्यासों का वर्गीकरण

हिन्दी में उपन्यास का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। पर इस अल्पावधि में ही इतने अधिक और विभिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गये हैं कि उन सबका वर्गीकरण करना कठिन है। उपन्यासों के वर्गीकरण के लिए विभिन्न आधार प्रस्तुत किये गये हैं।

डा० त्रिभुवनसिंह ने शैली, वर्ण्यविषय, वस्तुनिर्माण तथा तत्वविशेष की प्रधानता को उपन्यासों के वर्गीकरण का आधार माना है।[१]

डा० श्री नारायण अग्निहोत्री ने उपन्यासों के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित आधार माने हैं—[२]

(१) वर्ण्यवस्तु की दृष्टि से
(२) ढाँचे की दृष्टि से
(३) कथावस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार
(४) क्रियाकलाप की दृष्टि से
(५) उपन्यास-संघटन के अनुसार
(६) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से
(७) शैली की दृष्टि से
(८) उद्देश्य की दृष्टि से
(९) जीवन के प्रति दृष्टिकोण के विचार से
(१०) दीर्घविस्तार तथा प्रभाव की तीव्रता के विचार से
(११) साधारण जन-दृष्टि के विचार से
(१२) ऐतिहासिक वर्गीकरण द्वारा
(१३) वर्ण्यविषय के प्रति दृष्टिकोण के विचार से

ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि डा० अग्निहोत्री द्वारा माने गये वर्गीकरण के उपर्युक्त आधारों को केवल दो मुख्य आधारों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे दो आधार हैं—

(१) तत्व विशेष की प्रमुखता
(२) वर्ण्य वस्तु

डा० शशिभूषण सिंहल ने उपन्यासों के वर्गीकरण के लिए उपर्युक्त इन दो मूल आधारों को उपयुक्त समझा है।[३]

प्रस्तुत प्रबन्ध में उपन्यासों के वर्गीकरण के आधार रूप में उक्त दो दृष्टिकोणों को स्वीकार किया जा रहा है।

---

[१] हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ७२
[२] हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, पृ० २७५
[३] उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १८

तत्वविशेष की प्रमुखता के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण

औपन्यासिक तत्वों की प्रधान, गौण और समन्वित स्थिति के आधार पर उपन्यासों को निम्नलिखित प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) घटना प्रधान उपन्यास
(ख) चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यास
(ग) नाटकीय उपन्यास
(घ) शैली प्रधान उपन्यास
(ङ) देशकाल सापेक्ष निरपेक्ष उपन्यास
(च) उद्देश्य प्रधान उपन्यास

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण निम्नलिखित है—

(अ) **सामाजिक उपन्यास**—सामाजिक उपन्यासों का सम्बन्ध होता है समाज से। "स्थायी तथा सर्वसाधारण महत्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए शांतिपूर्वक प्रयत्नशील सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है।"[1] समाज के मनुष्य सह-अस्तित्व, परोपकार पर दुःख निवारण हेतु सतत तत्पर रहते हैं। समाज के मनुष्यों के पारस्परिक संबंध, सामान्य हित तथा उन हितों की पूर्ति के मार्ग में आई अड़चनें, उनको दूर करने के लिए किये गये प्रयत्न तथा परिणाम सामाजिक उपन्यासों के विषय बनते हैं।

समाज का सम्बन्ध मनुष्य मात्र के जीवन से होता है। समाज के जीवन को प्रभावित करने वाले कई तत्व होते हैं जिनमें से मुख्य हैं—राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियाँ। इस दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों के कई उपवर्ग किये जा सकते हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—

(क) राजनीतिक उपन्यास
(ख) आर्थिक उपन्यास
(ग) धार्मिक व पौराणिक उपन्यास
(घ) जासूसी, तिलिस्मी, ऐयारी सम्बन्धी उपन्यास
(ङ) प्रेमाख्यानक उपन्यास

(ब) **मनोवैज्ञानिक उपन्यास**—मानव के अन्तर्जगत पर प्रकाश डालने वाले उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनोविश्लेषण को विशेष महत्व दिया जाता है। ऐसे उपन्यासों का उद्देश्य मानव-मन के रहस्यों का उद्घाटन करना होता है। इनमें कथोपकथन आदि तत्वों को मनोजगत् के प्रत्यक्षीकरण का साधन बनाया जाता है। ऐसे उपन्यासों में मानव-चरित्र और उसकी प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं के सूक्ष्म अंकन को प्राथमिकता दी जाती है।

---

१ डा० शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २५

कहानियों का वर्गीकरण

हिन्दी कहानी का विकास इतना बहुमुखी हुआ है कि उसका समुचित वर्गीकरण करना कठिन कार्य है। हिन्दी कहानियों के वर्गीकरण के आधारों के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं।

डा० ब्रह्मदत्त शर्मा का विचार है कि प्रतिपादन-शैली, रचना-लक्ष्य तथा स्वरूप विकास के आधार पर किया गया कहानियों का वर्गीकरण स्वाभाविक तथा महत्वपूर्ण होगा।[१]

श्री भालचन्द गोस्वामी 'प्रखर' ने कहानियो के वर्गीकरण के ये आधार माने हैं[२]—(क) वातावरण और वस्तु, (ख) तत्व विशेष की प्रमुखता, (ग) शैली, (घ) रस, (ङ) परिणाम या निवृत्ति, (च) काल की इकाई, (छ) विचारधारा व उद्देश्य।

कहानी के वर्गीकरण के उपर्युक्त आधारों को केवल दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—तत्व विशेष की प्रधानता और वर्ण्य विषय।

तत्व विशेष की प्रधानता के आधार पर कहानियों के मुख्य वर्ग हैं—

(क) घटना प्रधान कहानियाँ
(ख) चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ
(ग) नाटकीय कहानियां
(घ) शैली प्रधान कहानियाँ
(ङ) देशकाल सापेक्ष-निरपेक्ष कहानियां
(च) उद्देश्य प्रधान कहानियाँ

वर्ण्य-वस्तु के आधार पर कहानियों के ये वर्ग बनते हैं—

(अ) **सामाजिक कहानियाँ**—समाज को प्रभावित करने वाले तत्वों के आधार पर सामाजिक कहानियों को निम्नांकित उपवर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(क) राजनीतिक कहानियां
(ख) आर्थिक कहानियाँ
(ग) धार्मिक व पौराणिक कहानियां
(घ) जासूसी व तिलिस्मी सम्बन्धी कहानियाँ
(ङ) वैज्ञानिक कहानियां

(ब) **मनोविज्ञानिक कहानियाँ**—पात्रों के मानसिक रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है।

---

१ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० ३५
२ कहानी-दर्शन, पृ० ८३

राहुल जी के उपन्यास

राहुल जी द्वारा रचित मौलिक उपन्यासों की लेखनकाल के क्रम से सूची इस प्रकार है :—

क्रमसंख्या	उपन्यास	लेखनकाल, सन्	पृष्ठ संख्या
१.	जीने के लिए	१९४०	३३५
२.	सिंह सेनापति	१९४४	२८३
३.	जय यौधेय	१९४४	३५२
४.	मधुर स्वप्न	१९४९	३११
५.	विस्मृत यात्री	१९५४	३९९
६.	दिवोदास	१९६१	१४६

'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' नामक पुस्तक में राहुल जी की रचनाओं की सूची में 'राजस्थानी रनिवास' को उपन्यास-विधा के अन्तर्गत दिखाया गया है।[1] डा० गणेशन ने भी 'राजस्थानी रनिवास' को उपन्यास माना है।[2] उपन्यास को वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा गया है। पर राजस्थानी रनिवास एक तथ्यात्मक रचना है। इसमें सन् १९१० ई० से १९५२ ई० तक के राजस्थान के सामन्ती जीवन का चित्रण किया गया है। सात पर्दों में रहने वाली रानियों और ठकुरानियों की विवशता की दुखगाथा और वहाँ के पुरुषों की स्वेच्छाचारिता इतिहास के पृष्ठों से मिट न जाये, यही सोच कर राहुल जी ने 'राजस्थानी रनिवास' की रचना की। पुस्तक में सभी स्थानों और व्यक्तियों के नाम अवश्य बदल दिये गये हैं पर इसका विषय तथ्यात्मक है।[3] 'गौरी' के जीवन द्वारा राजस्थानी स्त्रियों के दुखमय जीवन तथा उसके पति ठाकुर साहब श्रीमान सिंह के माध्यम द्वारा उस समय के सामन्तों की स्वेच्छाचारिता का चित्रण किया गया है। इस रचना में कल्पना का योग नहीं है। अतः 'राजस्थानी रनिवास' जीवनी अथवा इतिहास के अधिक निकट है, उपन्यास के नहीं। इस रचना में नाटकीयता का अभाव है, इसलिए भी यह उपन्यास नहीं है। उपन्यास में नाटकीयता आती है घटनाओं के सजीव चित्रण द्वारा, पात्रों के उभार से तथा सम्वादों के द्वारा। इनका इस रचना में अभाव है। रचना, वर्णन मात्र है। उपन्यास मानव-चरित्र का उद्घाटन करता है। इस रचना में यह गुण भी नहीं है। यहाँ लेखक का ध्यान चरित्र के विकास की ओर नहीं वातावरण एवं परम्पराओं के चित्रण की ओर है। इसकी घटनाओं में कार्यकारण शृंखला का अभाव

---

[1] हिन्दी में उच्चतर साहित्य—सम्पादक राजबली पाण्डेय, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१४

[2] डा० गणेशन—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ८६

[3] राजस्थानी रनिवास—प्राक्कथन।

है। उक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'राजस्थानी रनिवास' उपन्यास नहीं है। राहुल जी ने स्वयं इस रचना को उपन्यास नहीं माना है।[1]

'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' में राहुल जी की रचना 'बाईसवीं सदी' को उपन्यास-विधा के अन्तर्गत दिखाया गया है।[2] पर राहुल जी ने इस कृति को निबंधों की संज्ञा दी है।[3] आरम्भ में यह रचना कथा जैसी लगती है। विश्वबन्धु, देवमित्र और उसके साथियों के मध्य रोचक कथोपकथन हैं। पर आगे चल कर इसमें कथा का अभाव हो गया है केवल जीवन दर्शन मात्र रह गया है। इस पुस्तक में सोलह परिच्छेद हैं। परिच्छेदों के शीर्षक निबन्ध सरीखे हैं—'शिशु संसार', 'विद्यालय के विषय में', रेल की यात्रा', 'बीसवीं सदी' आदि आदि। परिच्छेदों के विषय भी निबन्धात्मक हैं। परिच्छेद नौ से सोलह निबन्ध मात्र हैं। इस कृति की शैली निबन्धात्मक है, विशेषकर उत्तरार्द्ध की। उपन्यास वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है पर 'बाईसवीं सदी' कल्पना ही कल्पना है। यह राहुल जी के २१२४ ई० की, भविष्य की, कल्पित दुनिया है, जिसे विश्वबन्धु के भ्रमण-वृतान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका विषय मानव जीवन के सत्य से अति दूर है। इसलिये इसे उपन्यास कहना उपयुक्त नहीं। इस रचना की घटनाओं में न ही कार्य-कारण श्रृंखला है और न ही मानव चरित्र का उद्घाटन। अतः यह कहा जा सकता है कि यह रचना उपन्यास नहीं, वरन् लेखक की कल्पना में जो आदर्श संसार है उसे निबन्धों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

डा० प्रतापनारायण टंडन ने राहुल की रचना 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' को उपन्यास माना है।[4] पर वास्तव में यह रचना उपन्यास नहीं है। इसकी रचना एक विशेष राजनीतिक उद्देश्य को लेकर हुई है। राहुल जी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है—"जनता को वोट देने का अख्तियार दे देने से काम नहीं चलेगा, उसे अपनी भलाई बुराई भी मालूम होनी चाहिये और यह भी मालूम होना चाहिये कि राजनीति के अखाड़े में कैसे दाँव-पेंच खेले जाते हैं। इस पोथी में इस बात के समझाने की मैंने थोड़ी सी कोशिश की है।"[5] राजनीतिक प्रचार की वार्ता कुछ पात्रों के सम्वादों के माध्यम से होती है। पात्र तीन-चार हैं। वार्ता के विभिन्न परिच्छेद उनकी विभिन्न बैठकों पर आधारित हैं। बैठकों के प्रकरण और शीर्षक भिन्न

---

१ राजस्थानी रनिवास—प्राक्कथन।

२ हिन्दी में उच्चतर साहित्य—सम्पादक राजबली पाण्डेय, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सं० २०१४ वि०।

३ बाईसवीं सदी—दो शब्द।

४ डा० प्रतापनारायण टण्डन—हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, पृ० ३३१

५ भागो नहीं, दुनिया को बदलो—पहली छाप की भूमिका।

हैं। इस रचना का उद्देश्य न मनोरंजन है और न ही जीवन-सत्य का प्रतिपादन। कोरे प्रचार के लिए लिखी गई इस रचना को उपन्यास नाम देना असंगत है। सम्पूर्ण रचना सम्वादों के माध्यम पर आधारित है। उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण तत्वों—कथा, पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथा का वातावरण, नाटकीयता आदि का पूर्णतया अभाव है। इस प्रकार 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' को किसी दृष्टि से भी उपन्यासों की पंक्ति में स्थान प्राप्त होना कठिन है। यह कहा जा सकता है कि यह रचना साम्यवादी विचारधारा पर जन-साधारण की भाषा में सम्वादात्मक शैली में प्रबन्ध है।

राहुल जी द्वारा रचित उपन्यासों का वर्गीकरण

(अ) तत्वों के आधार पर

राहुल जी के उपन्यासों में घटनाओं के चित्रण द्वारा पात्रों के चरित्र का उद्घाटन किया गया है। उनके उपन्यासों में प्रायः दोनों प्रमुख तत्वों, कथानक और पात्र-चरित्र के परस्पर घात-प्रतिघात द्वारा उनके विकास की योजना की गई है। इसलिए राहुल जी के—(१) जीने के लिए, (२) सिंह सेनापति, (३) जय-यौधेय, (४) मधुर स्वप्न, (५) विस्मृत-यात्री, (६) दिवोदास सभी उपन्यास नाटकीय उपन्यासों की कोटि में रखे जा सकते हैं।

नाटकीय उपन्यासों में कथावस्तु और चरित्र-चित्रण दोनों पर बल दिया जाता है। घटनाएँ तथा पात्रों के चरित्र एक दूसरे के विकास में सहायक होते हैं। इन दोनों में कार्य-कारण का सम्बन्ध होता है।

(ब) वर्ण्य-विषय के आधार पर

उपन्यासों के वर्ण्य-विषय के आधार पर किये गये वर्गों एवं उपवर्गों का उल्लेख इस अध्ययन में पहले किया जा चुका है। उनमें से राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों पर यहाँ विचार करना अभीष्ट है।

राजनीतिक उपन्यास

समाज को प्रभावित करने वाले तत्वों में से एक तत्व राजनीति है। वर्तमान समय में सभ्यता इतनी विकसित हो चुकी है और मानव अपने अधिकारों के प्रति इतने जागरूक हो गये हैं कि राजनीति के बिना समाज की कल्पना करना असंगत है। राजनीतिक उपन्यास मूलतः सामाजिक उपन्यास हैं। इनमें समाज की राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों को मुख्य विषय बनाया जाता है। भारतवर्ष की राजनीतिक गतिविधि मुख्यरूप से राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलन तक सीमित रही है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व लिखे गये राजनीतिक उपन्यासों में गान्धीवादी अहिंसात्मक विचारों का प्रभाव रहा है। गान्धीवाद के अतिरिक्त भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाला वाद 'साम्यवाद' है। साम्यवादी रचनाओं का मूलाधार मार्क्सवादी दर्शन रहा है। "मार्क्सवादी साहित्यकार अपने साहित्य के केन्द्र में मानव की प्रतिष्ठा करता है। मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार समाज में केवल दो वर्ग हो

सकते हैं—सर्वहारा और शोषक। आज के मशीनी युग में बहुत बड़ा वर्ग आर्थिक गुलामी से त्रस्त है। आर्थिक विपन्नता का अर्थ है—जीवनधारण के तत्वों का अभाव। भौतिक जीवन का यह अभाव व्यक्तित्व को अत्यन्त संकीर्ण, निष्प्राण और रुद्ध कर देता है। नैतिक मान्यताएँ और चारित्रिक मूल्य अत्यधिक गिर जाते हैं। शोषक और शोषित दोनों वर्गों में अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक, ग्रन्थियाँ मानसिक विक्षिप्तता और यौन-विकृतियाँ आ जाती हैं। मार्क्सवाद के ही प्रकाश में हम सब व्यक्ति और समाज की समस्याओं का ठीक निदान कर पाते हैं।"[१] साम्यवादी विचारधारा के आधार पर हिन्दी में पर्याप्त उपन्यास लिखे गये हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यास देशकाल सापेक्ष होते हैं। इनका सम्बन्ध विगत समाज से होता है। इन में बीते हुये किसी काल की घटना, व्यक्ति तथा वातावरण का चित्रण होता है। ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और उपन्यास दोनों का मनोरम मिश्रण रहता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का कौशल इसी में है कि उसकी कृति में इतिहास और उपन्यास पृथक् प्रतीत न हों अपितु दूध और चीनी की तरह घुले मिले हों।

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास आधार होने पर भी दोनों में पर्याप्त अन्तर है। ऐतिहासिक और इतिहासकार दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। इतिहासकार तथ्यों और उनके कारणों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान अथवा तर्क द्वारा उन्हें शृंखलाबद्ध करता है। कल्पना तथा व्याख्या का कार्य उसके क्षेत्र से बाहर है। वह खोजमात्र करके परिस्थिति और घटना का वर्णन करता है, उसका निर्माण नहीं। उसके लिए बाह्य घटनाएँ मुख्य हैं। आन्तरिक भावनाओं के वर्णन से वह यथासम्भव बचता है। उसके लिए 'राष्ट्र' मुख्य है और 'व्यक्ति' गौण। इस प्रकार उसका क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं होने पाता। दूसरी ओर ऐतिहासिक उपन्यासकार कल्पना और व्याख्या का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र है। वह पात्रों के मानसिक विश्लेषण द्वारा उनके आन्तरिक रहस्य का दिग्दर्शन करता है। राष्ट्र की अपेक्षा व्यक्ति को वह अधिक महत्व देता है। व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है।[१]

ऐतिहासिक उपन्यासकार कथावस्तु को शृंखलाबद्ध तथा सजीव रूप प्रदान करने के लिए इतिहास के तथ्यों के अतिरिक्त परम्पराओं तथा किम्वदन्तियों का आश्रय लेता है। कल्पना के आधार पर इन तथ्यों को वह आकर्षक और मनोरंजक रूप में प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार का कौशल इसी में है कि उसकी कृति से इतिहास और कल्पना को पृथक्-पृथक् पहचान लेना असम्भव प्रतीत हो।

राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की उपर्युक्त विशेषताओं को दृष्टि में

---

[१] डा० श्री नारायण अग्निहोत्री—हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, पृ० २८७

रखते हुए, वर्ण्य-विषय के आधार पर राहुल जी के उपन्यासों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है:—

(क) राजनीतिक उपन्यास

(१) जीने के लिए

राहुल जी के पूर्वोक्त छः उपन्यासों में से यही एक उपन्यास राजनीतिक है। इस उपन्यास से बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सन् १६३६ ई० तक के भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। इस उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। मुख्य लक्ष्य राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण है। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति के हेतु किये गये आन्दोलन, अंग्रेजी शासकों का आन्दोलनकर्त्ताओं पर अत्याचार, जमींदारों और कृषकों के मध्य भूमि-अधिकार सम्बन्धी आन्दोलन—विषयों के आधार पर इस उपन्यास का निर्माण किया गया है। इस उपन्यास से कांग्रेसी कार्य-कर्त्ताओ की, स्वतंत्रता-प्रप्ति के लिए की गई, गतिविधियों का ज्ञान होता है।

(ख) ऐतिहासिक उपन्यास

(१) दिवोदास (१२२० ई० पू०)
(२) सिंह सेनापति (५०० ई० पू०)
(३) जय यौधेय (३५०-४०० ई०)
(४) मधुर स्वप्न (४६२-५२६ ई०)
(५) विस्मृत यात्री (५१८-५८६ ई०)

इन सभी उपन्यासों का इतिहास की विभिन्न घटनाओं से सम्बन्ध है।

राहुल जी के कहानी-संग्रह

राहुल जी की प्रकाशित कहानियों के तीन संग्रह उपलब्ध हैं। लेखनकाल के क्रम से उनकी सूची इस प्रकार है—

क्रम संख्या	कहानी-संग्रह	लेखनकाल	कहानी-संख्या
१.	सतमी के बच्चे	१६३५	१०
२.	वोल्गा से गंगा	१६४४	२०
३.	बहुरंगी मधुपुरी	१६५३	२१

कई सूची पत्रों[१] में 'कनैला की कथा' को कहानी-विधा के अन्तर्गत दिखाया गया है। इस रचना को कहानी-संग्रह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। इस संग्रह के नौ परिच्छेदों में राहुल जी ने अपने पितृ-ग्राम 'कनैला' का १३०० ईसा पूर्व से लेकर

---

[१] अ—श्रीमती कमला सांकृत्यायन द्वारा भेजी गई सूची—देखिये द्वितीय अध्याय।
ब—उपमा मासिक पत्रिका, कानपुर से अगस्त, १६६३ के राहुल-विशेषांक के अन्तर्गत पृ० १८०-१८४ पर छपी सूची।

सन् १९५७ ईसवी तक का इतिहास प्रस्तुत किया है। इस अवधि में हुये, कनैला के उतार-चढ़ावों का वर्णन है। प्रथम परिच्छेद त्रिवेणी में राहुल जी ने १३०० ईसा पूर्व के कनैला की परिस्थितियों का उल्लेख किया है। यह वह समय था जबकि मनुष्य नंगे रहा करते थे। इस भूमि पर किरातों के बाद निषादों ने अधिकार किया। दूसरे परिच्छेद काशीग्राम में ७०० ई० पू० के 'कनैला' का इतिहास है। इसी प्रकार 'बड़ी रानी', 'देवपुत्र' आदि अगले अध्यायों में 'कनैला' के उत्तरोत्तर विकास का वर्णन है। इस रचना के अन्तिम भाग में राहुल जी ने स्वतन्त्रता के बाद के तथा आजकल (१९५७) के कनैला का विस्तृत चित्रण किया है। यहाँ के लोग खेती बाड़ी के काम मे रुचि न होने के कारण नगर के जीवन को चाहने लगे हैं। रचना में प्रतिपादित विषय के आधार पर इसे कनैला' का इतिहास कहना उपयुक्त है, 'कहानी-संग्रह' नहीं। विषय तथ्यात्मक है। कल्पना का अभाव है। घटनाओं में कार्य-कारण शृंखला का अभाव है। पात्रों के चरित्र चित्रण और कथा का भी अभाव है। शैली विवरणात्मक है। इन कहानियो मे न कोई जीवन-दर्शन है और न ही उद्देश्य। इन सभी कारणों से इस रचना को कहानी-संग्रह कहने के स्थान पर इतिहासात्मक निबन्ध-संग्रह मानना उपयुक्त होगा।

राहुल जी की कहानियों का वर्गीकरण

(अ) तत्वों के आधार पर

तत्वों के आधार पर किये गये कहानियों के वर्गों एवं उपवर्गों का उल्लेख इस अध्याय मे किया जा चुका है। उनमे से यहाँ चरित्र चित्रण प्रधान तथा चित्रण प्रधान कहानियों पर दृष्टिपात करना वांछनीय है।

चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ

चरित्र चित्रण प्रधान कहानियों में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व दिया जाता है। इस वर्ग की कहानियों का मुख्य उद्देश्य एक अथवा एक से अधिक पात्रों का कलात्मक ढंग से चरित्र-चित्रण करना होता है। इन मे पात्रों के बाह्य चरित्रचित्रण के अतिरिक्त उनकी मानसिक प्रवृत्तियों का उद्घाटन किया जाता है।

चित्रण प्रधान कहानियाँ

इन का सम्बन्ध मुख्यत: देशकाल सापेक्ष कहानियों से होता है। इनमें पात्रों के चित्रण के अतिरिक्त समय और स्थान के चित्रण को विशेष महत्व दिया जाता है। सामाजिक चित्रण-प्रधान कहानियों में सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को विषय बनाया जाता है। सांस्कृतिक चित्रण-प्रधान कहानियों में किसी समाज की संस्कृति का चित्र खींचा जाता है।

चित्रण-प्रधान तथा चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियों की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर राहुल जी की कहानियों को मुख्यत: दो भागों में बांटा जा सकता है :—

(क) चित्रण-प्रधान कहानियाँ—

(१) 'सतमी के बच्चे' की सभी कहानियाँ।

(२) 'वोल्गा से गंगा' की सभी कहानियाँ।

इनमें भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

(ख) चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ—

(१) 'बहुरंगी मधुपुरी' की सभी कहानियाँ।

इनमें पात्रों के चरित्र का उद्घाटन किया गया है।

(ब) वर्ण्य-विषय के आधार पर

इस आधार पर किये गये कहानियों के वर्गीकरण की चर्चा पूर्व की जा चुकी है। यहाँ सामाजिक कहानियों के स्वरूप का विहगंम-दृष्टि से उल्लेख करना अपेक्षित है।

समाज को प्रभावित करने वाले तत्वों के आधार पर सामाजिक कहानियों का निर्माण किया जाता है। सामाजिक कही जाने वाली कहानियों में समाज में प्रचलित रीति रिवाजों का चित्रण होता है। इसी वर्ग की आर्थिक कहानियों में किसी समाज की आर्थिक परिस्थितियों का चित्र खींचा जाता है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों में विगत समाज के इतिहास और संस्कृति का उल्लेख होता है।

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से राहुल जी के तीनों संग्रहों की कहानियाँ सामाजिक कोटि की हैं। 'सतमी के बच्चे' की कहानियों ('स्मृतज्ञानकीर्ति' को छोड़ कर) में उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी ईसवी के भारत की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। 'वोल्गा से गंगा' की सभी कहानियों में भारतीय आर्यों के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास को लक्ष्य किया गया है। 'बहुरंगी मधुपुरी' का सम्बन्ध बीसवीं शताब्दी की मधुपुरी (मसूरी) की बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों से है।

चतुर्थ अध्याय

राहुल जी के उपन्यासों का अध्ययन

(कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं जीवन-दर्शन के तत्वों की दृष्टि से)

इस अध्याय में राहुल जी के उपन्यासों का कथावस्तु, चरित्रचित्रण, वातावरण तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) राहुल जी के उपन्यासों का कथावस्तु की दृष्टि से विश्लेषण

सर्वप्रथम राहुल जी के उपन्यासों की कथावस्तु पर विचार किया जा रहा है। उपन्यासों का क्रम रचनाकाल के अनुसार है।

जीने के लिए—कथा-सूत्र

(१) 'जीने के लिए' उपन्यास की मुख्यकथा का सम्बन्ध नायक देवराज के जीवन-संघर्ष की घटनाओं से है। विधवा राधा अपने द्वादश वर्षीय पुत्र देवराज को, उसकी उन्नति के लिए, अपने भतीजे सुचितसिंह के साथ कलकत्ता भेजती है। वहाँ वह मोहनलाल खन्ना के 'हितैषी' पुस्तकालय में चपरासी हो जाता है। मोहनलाल के पुस्तकालय में रह कर देवराज राजनीतिक समस्याओं पर चिन्तन करने योग्य बनता है।

अठारह वर्ष की आयु में देवराज सेना में भर्ती होता है। सितम्बर सन् १६१४ ई० में प्रथम विश्वयुद्ध यूरोप में भीषण रूप धारण कर लेता है। देवराज की राजपूत सेना यूरोप के युद्ध में भाग लेती है। जर्मनों के साथ कड़े मुकाबले में देवराज की जाँघ की हड्डी टूट जाती है। अस्पताल की एक नर्स जेनी ब्राउन देवराज की मन से सेवा सुश्रूषा करती है। दोनों परस्पर प्रेम करने लगते हैं।

अपंग घोषित किये जाने पर देवराज इंगलैंड में मजदूरी करने लगता है। इंगलैंड प्रवास में उसे वहाँ के मजदूरों के जीवन को देखने का अवसर मिलता है। इसी बीच वह जेनी ब्राउन से विवाह कर लेता है।

भारत की स्वतंत्रता सम्बन्धी आन्दोलनों का समाचार सुनकर देवराज इंगलैंड से भारत पहुँचता है। जेनी इंगलैंड में ही रहती है। अपने गाँव में देवराज कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में कार्य आरम्भ करता है; बन्दी बनाया जाता है।

जेल से छूटने पर मजदूरों के जीवन को विशेष निकट से देखने के लिए देवराज कुछ समय के लिए अज्ञातवास करता है।

स्पेन और उसके विरोधी राष्ट्रों इटली और जर्मनी के संघर्ष में अन्तर्राष्ट्रीय ब्रिगेड में काम करती हुई जेनी घायल होकर मर जाती है। देवराज को जेनी की

मृत्यु से आघात पहुँचता है किन्तु वह पूर्ववत् अपने कार्य में जुटा रहता है। जमींदारों के विरुद्ध किसानों के मोर्चों का वह नेतृत्व करता है पर कन्हाईसिंह नामक जमींदार के आदमियों द्वारा उसका अन्त कर दिया जाता है।

(२) इस उपन्यास की दूसरी कथा मोहनलाल खन्ना के क्रान्तिकारी विचारों और उनके दुःखात्मक जीवनान्त की है। मोहनलाल खन्ना 'हितैषी' पुस्तकालय का मालिक है। वह स्वतन्त्रता-आन्दोलनों में आतंकवाद के विरुद्ध है। लुकछिपकर किसी पर पिस्तौल चलाने या बम फेंकने को वह अच्छा नहीं समझता। क्रान्ति के लिए, यह जनता के उद्बोधन को आवश्यक समझता है। उसका विचार है कि क्रान्ति सार्वत्रिक उथल-पुथल है। क्रान्ति को वह धर्म से निर्लेप रखने के पक्ष में है। वह हर प्रकार के शोषण को रोकना क्रान्ति का ध्येय मानता है।

एक दिन एक सरकारी मोटर पर बम फेंका जाता है। कई व्यक्ति हताहत होते हैं। घटनास्थल पर मिले हुए केवल एक रूमाल के आधार पर मोहनलाल खन्ना दोषी ठहराया जाता है। मोहनलाल पर मुकदमा चलाया जाता है। झूठे गवाह इकट्ठे किये जाते हैं। निर्दोष मोहनलाल को फांसी की सजा मिलती है।

कथा-विश्लेषण

नायक देवराज की कथा उपन्यास की आधिकारिक कथा है। आरम्भ से अन्त तक इसी कथा का विस्तार है। प्रथम छः परिच्छेदों में देवराज के माता पिता तथा घरेलू जीवन सम्बन्धी परिस्थितियों का परिचय दिया गया है। इस भाग को मुख्य कथा की 'भूमिका' कहा जा सकता है। सातवें परिच्छेद में देवराज का जीवन मोड़ लेता है। वह मोहनलाल खन्ना के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप देश की राजनीतिक गतिविधि में रुचि लेने लगता है। सेना में अपनी वीरता का प्रमाण देता है। इंगलैंड में रहते हुए वह मजदूरों के जीवन को निकट से देखता है। भारत के स्वतन्त्रता० आन्दोलनों के समाचार सुन, वह भारत आकर कांग्रेस के आन्दोलनों में भाग लेता है, जमींदारों के विरुद्ध किसानों के सत्याग्रह का नेतृत्व करता है। इसके बाद मुख्यकथा चरमसीमा पर पहुँचती है। 'वह स्थल, वहां विरोधी व्यक्तियों की हार जीत का अन्तिम निर्णय होता है संघर्ष एवं चरमसीमा कहलाता है।'[1] मीनापुर के किसानों और वहां के जमींदार रायबहादुर कन्हाई सिंह के झगड़े में, देवराज किसानों का साथ देता है। बात पंचायत तक पहुँचती है। निर्णय किसानों के पक्ष में होता है। उन्हें उनकी जमीन मिल जाती है। कन्हाई सिंह देवराज से अधिक चिढ़ जाता है और अपने आदमियों से उसे मरवा देता है। इसके साथ मुख्यकथा समाप्त हो जाती है।

मोहनलाल खन्ना की कथा, उपन्यास में प्रासंगिक है। इस कथा को प्रकरी[2]

---

[1] डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३७८

[2] प्रकरी उन छोटी छोटी कथाओं को कहते हैं जो समय समय पर उपस्थित होकर मुख्यकथा की सहायता कर समाप्त हो जाती हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४६४

कहा जा सकता है। यह कथा सातवें परिच्छेद तक, केवल बाईस पृष्ठों में चलती है। इन पृष्ठों में से केवल आठ पृष्ठों में मोहनलाल खन्ना की गतिविधि सम्बन्धी सामग्री है, शेष चौदह पृष्ठों में मोहनलाल और उनके मित्रों के बीच राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर चर्चा है। इस प्रकार इस कथा में रसात्मक भाग कम और व्याख्यात्मक भाग अधिक है। मोहनलाल खन्ना वाली प्रकरी कथा आधिकारिक कथा को अग्रसर करने में अधिक सहायक नहीं है।

उपन्यास में प्रथम परिच्छेद से तीसवें परिच्छेद तक की घटनायें देवराज के जीवन को अग्रसर करती हैं। परिस्थितियों के अनुसार देवराज का जीवन ढलता रहता है। माता की अनुमति से देवराज कलकत्ता जाता है। वहाँ सुचित सिंह के कारण उसे नौकरी मिलती है। मा० महेन्द्र की सहायता से वह मोहनलाल खन्ना के पुस्तकालय में चपरासी हो जाता है। मोहनलाल की प्रेरणा से वह सेना में भर्ती होता है। देवराज के घायल होने पर अस्पताल में उसका जेनी से प्रेम होने पर दोनों का विवाह हो जाता है। अपंग घोषित होने के कारण देवराज इंगलैंड में मजदूरी करने लगता है। भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से प्रेरित हो वह भारत आकर राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेता है।

इकतीसवें परिच्छेद से लेकर चालीसवें परिच्छेद अर्थात् मुख्यकथा के अन्त तक की घटनाओं का संचालन देवराज स्वयं करता है। वह कांग्रेस-आदोलनों में सक्रिय भाग लेता है, राजनीतिक कार्यकर्ताओं को उत्साहित करता है, उन्हें संगठित करता है। छद्म वेश में रह कर मजदूरों की वास्तविक अवस्था से अवगत होता है। जमींदारों के विरुद्ध किसानों के सत्याग्रहों का संचालन करता है। ये सभी घटनाएँ देवराज के चरित्र से विकसित होती हैं।

मोहनलाल का जीवन परिस्थितियों के अधीन है। उस पर झूठा अभियोग लगाया जाता है और फलस्वरूप वह फाँसी पाता है।

इसी प्रकार जेनी, राधा, लौटूसिंह, सुचितसिंह आदि पात्र भी परिस्थितियों के अधीन हैं।

उपन्यास में स्थान-स्थान पर पात्रों के विचार प्रकाशन एवं विचार विनिमय के कारण उपन्यास में कथा तत्व की रोचकता को ठेस पहुँची है। उदाहरणार्थ, आठवें तथा नौवें परिच्छेदों में मोहनलाल खन्ना की अपने साथियों के साथ आतंकवाद तथा स्वतन्त्रता-क्रान्ति सम्बन्धी विषयों पर चर्चा, तेरहवें परिच्छेद में कर्नल ज्याफरे की अन्य सहयात्रियों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर वार्ता, पन्द्रहवें अध्याय में कर्नल ज्याफरे की हिमालय-यात्रा सम्बन्धी चर्चा, छत्तीसवें परिच्छेद में प्रोफेसर ब्राउन का अपने मित्रों के साथ प्रथम विश्वयुद्ध तथा तत्कालीन परिस्थितियों पर विवाद, पैंतीसवें परिच्छेद में देवराज और केशवसिंह वकील की अंग्रेजी शासन तथा अंग्रेजी माल के बहिष्कार पर चर्चा, उनतालीसवें परिच्छेद में देवराज, रामप्रसाद तथा उनके साथियों द्वारा कांग्रेसी नेताओं पर टीका टिप्पणी, चालीसवें परिच्छेद में हर-

नन्दन, रामप्रसाद, कमाल, जुमराती, और रहीम की सरकार और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति पर आवश्यकता से अधिक नोंक झोंक—वाले प्रसंग कथावस्तु के सुसंगठन में बाधक हैं।

सिंह सेनापति—कथासूत्र

(१) 'सिंह सेनापति' उपन्यास की मुख्य कथा लिच्छवी कुमार सिंह के 'पार्श्वों' और 'मागधों' के विरुद्ध युद्ध में पराक्रम तथा अपने गणराज्य के सेवा कार्य की है।[1]

लिच्छवि कुमार सिंह तक्षशिला जाकर आचार्य बहुलाश्व से शस्त्र-शास्त्र तथा गण-सिद्धान्तों की शिक्षा प्राप्त करता है। पार्श्वों के विरुद्ध लड़कर उन्हें पराजित करता है। इस सहायता के उपलक्ष में सिंह को गान्धार नागरिक स्वीकार किया जाता है। आचार्य बहुलाश्व की पुत्री रोहिणी और सिंह एक दूसरे से प्रेम करते थे। इस युद्ध में रोहिणी अपने प्राणों की चिन्ता न कर सिंह की सहायता करती है। दोनों का प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है। गान्धार गण-संस्था के आग्रह पर दोनों का विवाह होता है।

सपत्नीक वैशाली लौटने पर सिंह का हार्दिक स्वागत होता है। उसको वैशाली संस्थागार का सदस्य और दक्षिण वाहिनी का सेनानायक बनाया जाता है। वह, मगधराज बिम्बसार को, लिच्छवियों पर आक्रमण के समय पराजित करता है।

इस युद्ध में सिंह के पराक्रम से प्रसन्न हो गण-संस्था उसे सेनापति पद पर नियुक्त करती है। युद्धोपरान्त लिच्छवियों की समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहने के साथ सिंह जैनमत में दीक्षित हो जाता है। वहाँ मानसिक परितोष न पाकर महात्मा बुद्ध का अनुयायी बनता है और उनके 'बहुजन हिताय' अनात्मवादी सिद्धान्त में जीवन का समाधान प्राप्त करता है।

(२) द्वितीय कथा गांधार कुमार, कपिल के पराक्रम और उसके सिंह के प्रति प्रेम की है। कपिल ने कई प्रदेशों की यात्रा की है। पार्श्वों द्वारा उत्तरकुरु पर आक्रमण के समय कपिल वहाँ के लोगों की सहायता करता है और पार्श्वों को हराता है। उत्तरकुरु में सम्मान प्राप्त कर वह तक्षशिला लौटता है।

पार्श्वों द्वारा तक्षशिला पर आक्रमण के समय कपिल को वीरता प्रदर्शन का पुनः अवसर प्राप्त होता है। वह अपनी जान जोखिम में डालकर सिंह की रक्षा करता है। कपिल और सिंह दोनों एक दूसरे के मित्र बन जाते हैं।

सिंह के वैशाली लौटने के समय तक्षशिला से कपिल के नेतृत्व में एक गांधार नागरिक मंडल वैशाली भेजा जाता है। वैशाली पहुँचने पर सिंह के साथ कपिल का स्वागत होता है।

मगधराज के वैशाली पर आक्रमण के समय कपिल लिच्छवियों की ओर से लड़ता है और मागधों को पराजित करने में सिंह को पूर्ण सहयोग देता है। वैशाली में रहते हुए कपिल और लिच्छवी, कन्या क्षेमा एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। अन्त में दोनों का विवाह सम्बन्ध निश्चित हो जाता है।

इन दो कथाओं के अतिरिक्त उपन्यास में एक प्रसंग[१] है जो सिंह के फलोद्यान के माली कृष्ण के जीवन-वृत्तान्त को प्रस्तुत करता है। कृष्ण रोहिणी को बताता है कि वह किस प्रकार कौशाम्बी में उत्पन्न हुआ और अपनी माँ के साथ काशी में बिका था। सयाना होने पर मगध के एक बनिये ने उसे खरीद लिया। वह बनिया बड़ा क्रूर था, साधारण से अपराध पर उसे कठोर दण्ड देता था। उस सेठ ने एक बार क्रोध में कृष्ण को गर्म लोहे से पीठ पर दाग भी दिया था। उस समय सिंह के दादा उस बनिये के पास कोई वस्तु खरीदने पहुँच गये। कृष्ण की दीन दशा पर दया करके उन्होंने उसे बनिये से खरीद लिया। तब से कृष्ण सिंह के परिवार में काम कर रहा है और अपने कुटुम्ब का पेट पाल रहा है। उसके बहुत से बेटे और पोते-पोतियाँ हैं, पत्नी मर चुकी है। वह और उसके बेटे तन मन से सिंह के बागों और खेतों में कार्य कर रहे हैं। सिंह और रोहिणी, कृष्ण और उसके परिवार को तथा काम करने वाले अन्य श्रमिकों को अदास घोषित करते हैं, उनमें कपड़े बांटते हैं और उनके साथ भोजन करते हैं।

कथा-विश्लेषण

उपन्यास की मुख्य कथा को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग की घटनायें वैशाली से सम्बन्धित हैं। दोनों भागों के घटनास्थलों के भिन्न होने पर भी उनका सम्बन्ध उपन्यास के नायक सिंह से है।

तक्षशिला की घटनाओं का सम्बन्ध पार्श्वों और गांधारों के पारस्परिक युद्ध से है। पार्श्वों को हराने में सहायता करने से सिंह के जीवन में विशेष मोड़ आता है। वह वहाँ की गण-संस्था का सदस्य बनने के साथ आचार्य बहुलाश्च की पुत्री रोहिणी से विवाह करता है।

वैशाली की घटनाओं का सम्बन्ध लिच्छवियों और मगध सम्राट बिम्बसार के युद्ध में है। इस युद्ध में सिंह मागधों के दाँत खट्टे करता है। मगधराज बिम्बसार के साथ सन्धि हो जाने पर कथा समाप्त होती जान पड़ती है। परन्तु राजतन्त्र पर गण-तन्त्र की विजय दिखाने के साथ राहुल जी जैनधर्म की श्रेष्ठता दिखाना चाहते हैं, कथा और आगे बढ़ाई गई है। सिंह जैन धर्म को छोड़ कर बौद्धधर्म का अनुयायी बन जाता है।

गांधार कुमार कपिल की प्रासंगिक कथा मुख्य कथा के साथ आठवें से अन्तिम परिच्छेद तक विच्छिन्न रूप में चलती है। इस कथा की घटनायें मुख्य कथा की घटनाओं को बढ़ाने का कार्य नहीं करतीं।

पन्द्रहवें परिच्छेद में कृष्ण माली का प्रसंग राहुल जी के विवरण-मोह का परिणाम है। यह प्रसंग कथा-विकास में सहायक नहीं है। मगधराज में दासों के

---

[१] प्रसंग से यहाँ अभिप्राय है, वह स्थल जहाँ कथा अथवा कथाओं को रोककर उपन्यासकार किन्हीं घटनाओ का पात्रों द्वारा सार रूप में वर्णन कराता है। इसमें मुख्यकथा जैसी सजीवता एवं रसात्मकता नहीं होती।

साथ क्रूरता का व्यवहार किया जाता है और तक्षशिला तथा वैशाली में कोई दास नहीं है—केवल यह बताने के लिए तेरह पृष्ठ लिखे गये हैं। उसका संक्षिप्त संकेत पर्याप्त था।

सिंह सेनापति की ऐतिहासिकता

पाठकों को 'सिंह सेनापति' की कथा की इतिहास-सम्मतता का विश्वास दिलाने के लिए इसकी भूमिका में राहुल जी ने एक मनोरंजक घटना का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि "छपरा जिला में भूमि की खुदाई करते समय उन्हें कुछ ईंटें मिली थीं। उन ईंटों पर ब्राह्मी अक्षरों में जो लिखा हुआ था, उसका अनुवाद 'सिंह सेनापति' है।" अपने कथन को विशेष प्रामाणिक बनाने के लिए वे लिखते हैं—"आपको मेरी सच्चाई पर सन्देह हो तो इन सोलह सौ ईंटों को जाकर पटना म्यूजियम में देख लीजिये।"[1] राहुल जी के शब्दों को सत्य मानकर बहुत से पाठक ईंटों को देखने के लिए पटना म्यूजियम गये पर उन्हें निराश लौटना पड़ा। राहुल जी वास्तविकता को कहाँ तक छुपा सकते थे। अन्ततः उन्हें लिखना पड़ा—यदि वह वस्तुतः ईंटों पर उत्कीर्ण होता तो वह उपन्यास नहीं होता। ईंटों के दर्शनार्थी पाठकों को समझ लेना चाहिये था कि यह उपन्यास है, हाँ ऐतिहासिक है, अर्थात् उस काल के देश-काल-पात्र की परिधि से बाहर नहीं जा सकता।[2] इस प्रकार 'ईंटों वाली घटना' का उल्लेख निरी कल्पना है। इस सम्बन्ध में डा० गोपीनाथ तिवारी का भी यही मत है। उन्होंने राहुल जी द्वारा लिखी हुई 'ईंटों वाली घटना' को मनोरंजक प्रसंग बताया है।[3]

डा० नगेन्द्र ने 'सिंह सेनापति' में बिम्बसार और अजातशत्रु के व्यक्तित्व को तथा उनके लिच्छवियों से युद्ध की घटना को ही प्रामाणिक रूप से ऐतिहासिक माना है। उन्होंने नायक 'सिंह' को काल्पनिक व्यक्ति माना है।[4]

सिंह सेनापति का काल ईसा पूर्व ५०० का है। इसकी मुख्य कथा का सम्बन्ध लिच्छवि-कुमार सिंह से है। वह पार्श्वों और मागधों के विरुद्ध युद्ध में पराक्रम दिखाता है और अपने गणराज्य को समृद्धि के पथ पर अग्रसर करता है। द्वितीय कथा गांधार-कुमार कपिल के पराक्रम और उसके सिंह के प्रति प्रेम की है।

सिंह सेनापति के लिच्छवियों के सम्बन्ध में डा० विमल चरण की पुस्तक 'सम् क्षत्रिय ट्राइब्ज आफ एन्शीयन्ट इण्डिया'[5] से उपलब्ध तथ्य इस प्रकार हैं:—

---

[1] सिंह सेनापति—विषय प्रवेश, पृ० १३
[2] विस्मृत यात्री—"दो शब्द", पृ० ४
[3] डा० गोपीनाथ तिवारी, 'ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार', पृ० १४२
[4] डा० नगेन्द्र—विचार और विवेचन, देखिये—१२६-१२७
[5] डा० विमल चरण—'सम् क्षत्रिय ट्राइब्स् ऑफ़ एन्शीयन्ट इण्डिया',
क्रम सं० १ के लिए पृ० १०४, क्रम सं० २ के लिए पृ० ११६,
क्रम सं० ३ के लिए पृ० ६०, क्रम सं० ४ के लिए पृ० ३१, ३७
क्रम सं० ५ के लिए पृ० ७३-७४।

(१) छठी शताब्दी ईसा पूर्व में लिच्छवियों का उत्तर पूर्वी भारत में एक शक्तिशाली गणतंत्रीय संघ था।

(२) छठी शताब्दी ईसा पूर्व में अजातशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित किया पर उनका उच्छेदन नहीं किया।

(३) लिच्छवि युवक शिक्षा-प्राप्ति हेतु अन्य देशों को जाते थे। महाली नाम का लिच्छवि-कुमार शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला गया था।

(४) वैशाली लिच्छविगण की राजधानी थी। यह एक विशाल नगर था। चीनी यात्री युवान् च्वांग ने इसे सातवीं शताब्दी ईसवी में देखा। उसने अपनी यात्राओं में इस नगर की विशालता की चर्चा की है।

(५) विनयपिटक के 'महावाग' में लिखा है कि सिंह नाम का लिच्छवि-सेनापति पहले जैनमत का अनुयायी था। महात्मा बुद्ध के उपदेश को सुनकर वह उनका अनुयायी बन गया। महात्मा बुद्ध ने सिंह के निमन्त्रण पर सामिष भोजन किया। जैनमत-तीर्थंकर महावीर तथा उनके मतानुयायियों ने महात्मा बुद्ध के इस कार्य की निन्दा की।

डा० रमेशचन्द्र मजूमदार[1] की पुस्तक 'कारपोरेट लाइफ इन एन्शीयन्ट इण्डिया' तथा दी आक्सफोर्ड हिस्टरी ऑफ इण्डिया'[2] में लिच्छवियों के सम्बन्ध में जो तथ्य दिये गये हैं ये उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं।

राहुल जी ने 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों से सम्बद्ध जो प्रसंग दिये हैं वे ऊपर उद्धृत तथ्यों के अनुकूल हैं।

'सिंह सेनापति' उपन्यास के बिम्बसार व अजातशत्रु नामक शासक पात्रों के विषय में 'दी आक्सफोर्ड हिस्टरी ऑफ इण्डिया'[3] से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं :

(१) पुराणों के अनुसार सम्राट बिम्बसार ने अट्ठाईस वर्ष तक तथा सिंहली साहित्य में प्रचलित परम्परा के अनुसार बावन वर्ष शासन किया। सम्राट् बिम्बसार ने अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया।

(२) सन् ४९४ ई० पूर्व में बिम्बसार के बाद उसका पुत्र अजातशत्रु सिंहासनारुढ़ हुआ। अजातशत्रु ने लगभग २७ वर्ष शासन किया।

(३) अजातशत्रु की माता लिच्छवि-जाति से थी।

---

[1] डा० रमेशचन्द्र मजूमदार—कारपोरेट लाइफ इन एन्शीयण्ट इंडिया, पृ० २२३ से २३३।

[2] दी आक्सफोर्ड हिस्टरी ऑफ इंडिया—तृतीय संस्करण (स्वर्गीय विनशेन्ट ए० स्मिथ), पृ० ७२-७४।

[3] डा० रमाशंकर त्रिपाठी—हिस्टरी ऑफ एन्शीयण्ट इण्डिया, पृ० ९३-९६।

डा० रमाशंकर त्रिपाठी की पुस्तक 'हिस्टरी ऑफ एन्शीयण्ट इण्डिया'[१] से बिम्बसार और अजातशत्रु से सम्बद्ध तथ्य ऊपर उद्धृत तथ्यों का अनुमोदन करते हैं। इस सम्बन्ध में राहुल जी ने 'सिंह सेनापति' में इतिहास के जिन प्रसंगों का उल्लेख किया है उपर्युक्त तथ्यों के अनुकूल हैं।

'सिंह सेनापति' तथा उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के तुलनात्मक विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

(१) 'सिंह सेनापति' उपन्यास के नायक 'सिंह' का चरित्र इतिहास में उपलब्ध लिच्छवि-सेनापति 'सिंह' के व्यक्तित्व के अनुकूल है। इतिहास में प्रसंग मिलता है कि 'सिंह' महात्मा बुद्ध का उपदेश सुनकर जैनमत छोड़ देता है और बौद्धमत का अनुयायी बन जाता है। वह महात्मा बुद्ध और उसके अनुयायियों को भोजन के लिए निमंत्रित करता है। जैन तीर्थंकर महावीर तथा उसके अनुयायी महात्मा बुद्ध के माँस खाने की निन्दा करते हैं।

'सिंह सेनापति' में उल्लिखित घटनाओं से सिद्ध होता है कि बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु के लिच्छवियों से सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। वह उन्हें समाप्त करना चाहता था। ये प्रसंग इतिहासानुकूल हैं। 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों और बिम्बसार के मध्य युद्ध का वर्णन है पर इतिहास-पुस्तकों में इस प्रकार के युद्ध की घटना का उल्लेख अप्राप्य है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अजातशत्रु ने लिच्छवियों को पराजित किया। किन्तु इस घटना को प्रस्तुत उपन्यास का विषय नहीं बनाया गया है। उपन्यास का सम्बन्ध अजातशत्रु के शासक बनने से पूर्व की घटनाओं से है। पार्श्वों और गांधारों के मध्य पाँचवीं छठी शताब्दी ईसा पूर्व में संघर्ष ऐतिहासिक तथ्य हैं।

लिच्छवि सेनापति 'सिंह', बिम्बसार तथा अजातशत्रु और पार्श्व-गांधार संघर्ष सम्बन्धी उपर्युक्त इतिहास-सम्मत तथ्यों को लेकर राहुल जी ने 'सिंह सेनापति' की आधिकारिक कथा का निर्माण किया है। गांधार कुमार कपिल के पराक्रमों से सम्बद्ध गौण कथा तथा 'कृष्णमाली' का प्रसंग कल्पित हैं।

(२) 'सिंह सेनापति' उपन्यास का नायक 'सिंह' ऐतिहासिक पात्र है। 'डिक्शनरी आफ पाली प्रोपर नेम्ज़'[२] में 'सिंह' के लिए 'सिह' लिखा गया है। लिच्छवि कुमार महाली, इतिहास में उपलब्ध पात्र है। बिम्बसार और अजातशत्रु इतिहास प्रसिद्ध सम्राट हैं। इन पात्रों तथा महात्मा बुद्ध और तीर्थंकर महावीर को छोड़कर अन्य पुरुष तथा नारी-पात्र कल्पित हैं।

---

[१] जी० पी० मलालासेकर, 'डिक्शनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्ज़', द्वितीय खण्ड, १९६१, पृ० ११६५।

[२] जी० पी० मलालासेकर, 'डिक्शनरी ऑफ पाली प्रोपर नेम्ज़', द्वितीय खण्ड, १९६१, पृ० ११६५

(३) 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों तथा गांधारों की गणतन्त्रीय शासन प्रणाली का चित्रण इतिहास-सम्मत है। पाँचवीं छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध मत तथा जैनमत की प्रतिद्वन्द्विता की चर्चा इतिहास के अनुकूल है। उस समय के खान-पान तथा आचार विचार सम्बन्धी वर्णनों में राहुल जी ने कल्पना का अधिक उपयोग किया है।

जय यौधेय—कथा सूत्र

(१) 'जय यौधेय' उपन्यास की मुख्य कथा नायक जय की यात्राओं, उसके पराक्रम तथा यौधेय गण के सेवाकार्य से सम्बद्ध है।

जय की बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्राओं में विशेष रुचि है। बौद्ध-धर्म के निकट सम्पर्क में आने के लिए वह सिंहल जाता है। सिंहल के मार्ग में उसे कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समुद्र में तूफान आ जाता है। बच कर वह समुद्र तट पर स्थित शबरों की बस्ती में पहुँचता है। वहाँ वह एक शबर कन्या से विवाह करता है। पर विवश हो वह अपनी प्रेमिका को वहीं छोड़ सिंहल पहुँचता है।

अन्य राज्यों को हथिया लेने पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य यौधेयभूमि पर आक्रमण करता है। जय उसके दाँत खट्टे करता है। यौधेय नारियाँ इस युद्ध में योगदान करती हैं। वसुनन्दा की वीरता पर मुग्ध हो जय उससे विवाह कर लेता है।

जय चन्द्रगुप्त के सभी प्रलोभनों को ठुकरा देता है। चन्द्रगुप्त अपनी पराजय का बदला लेने के लिए यौधेयों पर फिर चढ़ाई करता है। इस युद्ध में सेनापति जय वीरगति को प्राप्त होता है।

(२) उपन्यास की द्वितीय कथा चन्द्रगुप्त के सम्राट् बनने तथा उसके राज्य विस्तार की घटनाओं की है। पिता समुद्रगुप्त की मृत्यु पर रामगुप्त गद्दी पर बैठता है। रामगुप्त आक्रमणकारी शकराज को अपनी पत्नी तक समर्पित करने को तत्पर है। छोटा भाई चन्द्रगुप्त शकराज तथा कायर रामगुप्त का वध करके स्वय विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर सम्राट् बनता है। कई वर्षों के निरन्तर युद्ध के पश्चात् चन्द्रगुप्त यौधेय-भूमि पर अधिकार करने में सफल होता है।

इन कथाओं के अतिरिक्त उपन्यास में एक प्रसंग है। यह सिंहवर्मा और उसकी प्रेमिका बासन्ती की प्रणयलीला से सम्बन्ध रखता है। कांची की ओर जाते हुये समुद्र में तूफान आने के कारण पोत के सभी यात्री मर जाते हैं, केवल सिंहवर्मा, सार्थवाह कन्या बासन्ती और सिंहवर्मा का मित्र जय जीवित रहते हैं। सिंहवर्मा और बासन्ती एक दूसरे से प्रेम करते थे। वे समुद्रतट पर स्थित शबरों की पल्ली में पहुँचकर विवाह कर लेते हैं। सिंह के सपत्नीक कांची पहुँचने पर सिंहवर्मा के माता पिता हर्ष प्रकट करते हैं।

कथा-विश्लेषण

प्रथम आठ परिच्छेदों में जय के आरम्भिक जीवन, उसकी शिक्षा तथा तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन है। इस भाग को मुख्य कथा की भूमिका कहा जा

सकता है। नौवें परिच्छेद से पन्द्रहवें परिच्छेद तक जय की सिंहल यात्रा से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है।सोलहवें परिच्छेद में कथा विशेष माड़ लेती है। चन्द्रगुप्त और यौधेयों के युद्ध में जय चन्द्रगुप्त के दाँत खट्टे कर देता है। यही उपन्यास की मुख्य घटना है।

साधारणतया जय की मृत्यु के साथ कथा समाप्त होनी चाहिए थी किन्तु ऐसा नहीं हुआ है। यौधेय चन्द्रगुप्त की सेना से युद्ध करते हैं। चन्द्रगुप्त विजयी होता है। वह अन्य राज्यों पर अधिकार प्राप्त कर विजयोत्सव मनाता है।

चन्द्रगुप्त की प्रासंगिक कथा मुख्य कथा के साथ प्रथम परिच्छेद से लेकर अन्तिम परिच्छेद तक विच्छिन्न रूप में चलती है। यह कथा मुख्य कथा को बढ़ाने में सहायक है। पन्द्रहवें परिच्छेद के बाद उपन्यास का कथानक इसी कथा पर निर्भर करता है।

नौवें परिच्छेद से बारहवें परिच्छेद तक सिंहवर्मा और बासन्ती के प्रेम का प्रसंग राहुल जी के विवरण-मोह का परिचायक है। इस प्रसंग से मुख्य-कथा के विकास में कोई सहायता नहीं मिली है।

जहाँ तक पात्रों और परिस्थितियों के पारस्परिक संबंध का प्रश्न है नौवें परिच्छेद से अन्तिम परिच्छेद तक की घटनाओं पर जय के व्यक्तित्व की छाप है। वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में समर्थ है। चन्द्रगुप्त की राज्यविस्तार-प्रवृत्ति के फलस्वरूप उद्भूत घटनाओं के मूल में उसका चरित्र है।

कथावस्तु की गति में शिथिलता है। सिंहवर्मा और बासन्ती प्रेम-प्रसंग, समुद्र तट पर स्थित पल्ली के श्यामवर्ण लोगों के जीवन का वर्णन, सिंहल में एक नपुंसक सेठ की पत्नी का जय के प्रति आकर्षण और जय की उसके प्रति उदासीनता आदि प्रसंगों का मुख्य कथा के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं है। स्पष्ट है कि विवरण मोह के कारण राहुल जी की दृष्टि मुख्य कथा से हटकर अन्य स्थलों में रम जाती है।

जय यौधेय की ऐतिहासिकता

'जय यौधेय' को ऐतिहासिक बताते हुये इस उपन्यास के प्राक्कथन में राहुल जी ने लिखा है कि इसमें सन् ३५०-४०० ई० (गुप्त सं० ३०-८०) के भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का चित्रण किया गया है।[१] इस उपन्यास की मुख्य कथा यौधेय कुमार 'जय' की यात्राओं, उसके पराक्रम तथा गण के सेवाकार्य से सम्बद्ध है। द्वितीय कथा चन्द्रगुप्त के सम्राट् बनने और उसके राज्यविस्तार करने की है। इन कथाओं के अतिरिक्त इस उपन्यास में एक प्रसंग है। यह प्रसंग सिंह वर्मा और उसकी प्रेमिका बासन्ती की प्रणयलीला से सम्बन्ध रखता है।

'जय यौधेय' उपन्यास के यौधेयों के सम्बन्ध में डा० रमेशचन्द मजूमदार

---

[१] जय यौधेय—प्राक्कथन, पृ० १

और डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर की पुस्तक 'दी वाकातक—गुप्त एज'[1] से उपलब्ध तथ्य इस प्रकार हैं :—

(१) द्वितीय शताब्दी ईसवी के अन्त में यौधेयों ने कुषाणों के दाँत खट्टे किये और उनको अपने राज्य की सीमा से निकाल कर सतलुज के पार भगा दिया। इन घटनाओं का प्रमाण वे सिक्के हैं जो सतलुज और यमुना के मध्य स्थित प्राचीन यौधेय प्रदेश से मिले हैं।

(२) तृतीय और चतुर्थ शताब्दी ईसवी में उत्तरी राजपूताना और दक्षिण-पूर्वी पंजाब में यौधेय का एक शक्तिशाली गणतन्त्रीय राज्य था। यौधेयगण यौधेय, अर्जुनायन और कुणिन्द—इन तीनों गणों का संघ था। इन गणों की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि ये गण आन्तरिक प्रबन्ध की दृष्टि से पूर्णतया स्वतन्त्र थे पर बाह्य आक्रमणों की दशा में सुरक्षा का प्रबन्ध सम्मिलित था।

(३) समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले शिलालेख से सूचित होता है कि यौधेय, माद्र, आर्जुनायन और मालव गण समुद्रगुप्त की प्रभुसत्ता मात्र को स्वीकार करते थे।

डा० रमाशंकर त्रिपाठी[2] व डा० राधाकुमुद मुकर्जी[3] की इतिहास-पुस्तकों में यौधेयों से सम्बद्ध जो तथ्य उपलब्ध हैं वे उपर्युक्त तथ्यों का अनुमोदन करते हैं।

रोहतक जिला (पंजाब) में यौधेय के समय के जो सिक्के उपलब्ध हुये हैं उनसे भी सिद्ध होता है कि तृतीय चतुर्थ शताब्दी ई० में रोहतक और उसके निकटवर्ती प्रदेश में यौधेयों का गणराज्य था।[4]

यौधेयों के सम्बन्ध में ऊपर उद्धृत ऐतिहासिक तथ्य 'जय यौधेय' सम्बन्धी उल्लेखों के अनुकूल हैं।

सम्राट् समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो तथ्य 'दी आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डिया'[5] से प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं :—

---

[1] डा० रमेशचन्द मजूमदार व डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर 'दी वाकातक—गुप्त एज', क्रम संख्या १ के लिए देखिये, पृ० २८-२९
„ „ २ „ „ पृ० ३२
„ „ ३ „ „ पृ० ३५

[2] डा० रमाशंकर त्रिपाठी, 'हिस्टरी आफ एनशीन्ट इण्डिया', पृ० ५७-५८, २४४, २५१।

[3] डा० राधाकुमुद मुकर्जी, 'दी गुप्ता एम्पायर', पृ० १७, ४३, ४५, ४७ तथा ४८।

[4] दी जर्नल आफ दी न्यूमिसटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, १९३२, लेख, ४

[5] विनसेन्ट ए० स्मिथ, 'दी आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डिया', तृतीय संस्करण, पृ० १६६-१६८।

(१) समुद्रगुप्त अपने पिता चन्द्रगुप्त प्रथम के अनन्तर सन् ३३० ई० के आस-पास सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपने राज्य को विस्तृत किया। पंजाब में स्थित यौधेय और मालवगण स्वतन्त्र थे पर समुद्रगुप्त की संरक्षणता इन गणों पर भी थी।

(२) चन्द्रगुप्त द्वितीय सन् ३८० ई० के आसपास अपने पिता समुद्रगुप्त के पश्चात् शासक बना। उसने यौधेय, मालव आदि गणसंघों को अपने राज्य में सम्मिलित किया।

(३) रामगुप्त भीरु शासक था। शकराज के कहने पर रामगुप्त उसे अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को देने के लिए तत्पर हो गया। रामगुप्त के छोटेभाई चन्द्रगुप्त ने इस बात को सहन न किया। ध्रुवस्वामिनी के रूप में वह शकराज के पास गया और उसका वध कर दिया। रामगुप्त को कायर समझकर चन्द्रगुप्त ने उसका वध कर दिया और स्वयं चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के नाम से गुप्तसम्राट् बना। उसने ध्रुवस्वामिनी को पत्नी के रूप में ग्रहण किया। अधिकांश इतिहासकार इस घटना पर विश्वास नहीं करते हैं पर इसमें सत्य का अंश हो सकता है।

डा० राधाकुमुद मुकर्जी[१] और डा० रमाशंकर त्रिपाठी[२] की इतिहास पुस्तकों से समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के सम्बन्ध में उपलब्ध तथ्य उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल हैं। जयशंकर प्रसाद जी ने अपने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा शकराज तथा रामगुप्त का वध और चन्द्रगुप्त द्वितीय का रामगुप्त की पत्नी धुवस्वामिनी से विवाह का उल्लेख किया है। इस नाटक की भूमिका में प्रसाद जी ने लिखा है कि राखालदास बैनर्जी, प्रोफेसर अल्तेकर और श्री जायसवाल जी ने अन्य प्रामाणिक आधार न मिलने के कारण ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य मान लिया है।[3]

चन्द्रगुप्त द्वितीय रामगुप्त के वध के पश्चात् स्वयं शासक बनता है। इस घटना के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है, पर राहुल जी ने इसे सत्य माना है।

'जय यौधेय' उपन्यास तथा तत्सम्बन्धी उपर्युक्त ऐतिहासिक सामग्री के तुलनात्मक विश्लेषण के उपरान्त जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(१) समुद्रगुप्त के पश्चात् उसके पुत्र रामगुप्त का सिंहासनारोहण, चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अपने भाई रामगुप्त तथा शकराज का वध, सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा यौधेय प्रदेश पर अधिकार—ऐतिहासिक तथ्य हैं। इन सूक्ष्म ऐतिहासिक तन्तुओं के आधार पर राहुल जी ने 'जय यौधेय' उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण किया है।

---

१ डा० राधाकुमुद मुकर्जी—'दी गुप्ता एम्पायर', पृ० ३७-४७।

२ डा० रमाशंकर त्रिपाठी—'हिस्टरी आफ एनशेण्ट इण्डिया', पृ० २४०-२५१।

3 जयशंकर प्रसाद—ध्रुवस्वामिनी, सूचना, पृ० ४।

उपन्यास का नायक 'जय' कल्पित पात्र है। इस बात की पुष्टि राहुल जी के इन शब्दों से होती है—'यौधेयों का जाति के तौर पर नाम विस्मृत हो चुका था, तो उनके व्यक्तियों के नामों के मिलने की आशा कहाँ से हो सकती है।'[१] इस प्रकार उपन्यास की आधिकारिक कथा में जय के बाल्यकाल की घटनाएँ, उसके यौवनकाल की यात्राएँ उपन्यासकार की कल्पना पर आधारित हैं। चन्द्रगुप्त और यौधेयों का संघर्ष ऐतिहासिक तथ्य है।

उपन्यास की प्रासंगिक कथा का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय के रामगुप्त को मार कर शासक बनने से है। यह कथा इतिहास-सम्मत है।

(२) नायक 'जय' के समान सभी यौधेय पात्र कल्पित हैं। सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटककार कालिदास सम्राट् चन्द्रगुप्त का समकालीन है और ऐतिहासिक पात्र है। कालिदास को स्वार्थी और विलासी के रूप में चित्रित किया गया है।[२]

(३) यौधेय के तत्कालीन जीवन का अधिकांश चित्रण राहुल जी ने कल्पना के आधार पर किया है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि यौधेयों के सम्बन्ध में विशेष ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नहीं है।[३] गुप्तकालीन समाज के चित्रण में कालिदास के ग्रन्थों और उसी समय यात्रा करने वाले चीनी भिक्षु फाहियान के यात्रा-विवरण, गुप्तकालीन शिलालेखों तथा डाक्टर अल्तेकर, डाक्टर आर० एन० डण्डेकर आदि के इतिहास-ग्रन्थों का उपयोग किया गया है।[४]

मधुर स्वप्न—कथा-सूत्र

'मधुर स्वप्न' उपन्यास की कथा का सम्बन्ध, ईरान प्रदेश के सम्राट् शाह कवात की साम्यवादी प्रवृत्ति जीवन-संघर्ष से है। शाह कवात् सासानी वंश (२८ अप्रैल २२८ ई० से ६४२ ई० तक) का उन्नीसवाँ शासक है। उसके सिंहासनारोहण के समय (४८८ ई० में) सासानी वंश को राज्य करते दो सौ-साठ वर्ष हो गये हैं। एक रात शाह कवात और अन्दर्जगर मज्दक जो साम्यवादी विचार रखने वाले लोगों का नेता है, दोनों तस्फ़ौन राजधानी के उपनगरों का जीवन देखने निकलते हैं। भूख से मृतप्राय लोगों का जीवन देख कर सम्राट् दुःखी होता है और उन्हें शाही अन्नागार से अन्न प्रदान करने की घोषणा करता है।

शाही दरबारियों और अन्दर्जगर मज्दक के शत्रुओं को शाह कवात की गरीबों के प्रति सहानुभूति अच्छी नहीं लगती। वे शाह कवात को बन्दी बना कर उसके भाई जामास्प को गद्दी पर बैठाते हैं। कुछ मज्दक-अनुयायी मार दिये जाते हैं। शेष जान बचा कर इधर उधर घूमते फिरते हैं। शाह कवात अपनी पत्नी सम्बिक

---

[१] जय यौधेय, प्राक्कथन, पृ० २

[२] जय यौधेय, पृ० ३३८, ३४२

[३] जय यौधेय, प्राक्कथन, पृ० २

[४] जय यौधेय, प्राक्कथन, पृ० २

और मज्दक-अनुयायियों की सहायता से 'विस्मृतिकारा' से निकल भागने में सफल हो जाता है।

पदच्युत शाह कवात् को शत्रुओं की पकड़ से बचाने के लिए मज्दक-अनुयायी उसे केदारी हूणों के देश हेफ्ताल में भेज देते हैं। हेफ्ताल राज्य का शाह तोरमान अपने साले शाह कवात् का हार्दिक स्वागत करता है। वह अपनी कन्या का विवाह शाह कवात् से कर देता है। हेफ्ताल शाह तोरमान ईरान राज्य का शत्रु है। शाह तोरमान की सेना और मज्दक-अनुयायियों के सहयोग के कारण शाह कवात् का ईरान पर पुन: अधिकार हो जाता है।

सन् ५२९ ई० में ईरान सम्राट् शाह कवात् के सम्मुख अपना उत्तराधिकारी चुनने का प्रश्न उपस्थित होता है। शाह कवात् अपने अज्ञातवास-काल की प्रेमिका अवहरशहर (प्राचीन खुरासान) प्रदेश के एक सामन्त की पुत्री नवानदुख्त से उत्पन्न अपने पुत्र खुसरो को सिंहासन का स्वामी बनाना चाहता है। मज्दक-अनुयायी, शाह कवात् की विवाहिता पत्नी सम्बिक से उत्पन्न पुत्र काबूस को शाह कवात् का उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में हैं। शाह कवात् और मज्दक-अनुयायियों का पारस्परिक मतभेद वैमनस्य का कारण बनता है। शास्त्रार्थ द्वारा उत्तराधिकारी सम्बन्धी निर्णय करने के बहाने बुलाकर शाह कवात् का पुत्र खुसरो सभी मज्दक अनुयायियों को मरवा देता है। उसकी आज्ञा से अन्दर्जगर मज्दक को फाँसी पर लटकाया जाता है।

उपर्युक्त कथा के अतिरिक्त इस उपन्यास में कोई अन्य कथा नहीं है। इस में कुछ घटनायें ऐसी अवश्य हैं जो जल में तेल की बूँद के समान फैलती हैं पर कहानी का रूप धारण नहीं करतीं। ये घटनायें इस प्रकार हैं :

(१) शाह कवात् को कारागृह से छुड़ाने के लिए मज्दक-अनुयायी और शाह कवात् की पत्नी सम्बिक प्रयत्नशील हैं। सम्बिक सोग्द के किसी सामन्त की कुमारी के रूप में अयरान के प्रसिद्ध नगर गुन्देशापुर में रह रही है। उसका जीवन राजकुमारियों के जीवन जैसा है। वह अपनी संगीत कला के लिए प्रसिद्ध है। गुन्देशापुर और उसके दुर्ग का उच्च अधिकारी हजारपत जो राजकुमारी से बीस वर्ष बड़ा है, उससे प्रेम करने लगता है। राजकुमारी भी उसके प्रति प्रेम का अभिनय करती है। वह उसकी अधिकाधिक शराब पीने की आदत डालती है।

एक रात जब हजारपत शराब के नशे में चूर है, सम्बिक अन्दर्जगर मज्दक के अनुयायियों की सहायता से शाह कवात् को मुक्त करा देती है।

(२) शाह कवात् और उसका साथी दोनों गुप्त देश में हैफ्ताल की ओर बढ़ रहे हैं। मार्ग में जा रहे लोलियों के काफ़िले में उनका वेश बनाकर ये लोग शामिल हो जाते हैं। इन दोनों को लोलियों का जीवन देखने का अवसर मिलता है। इन दोनों में से एक तरुण (शाह कवात्) वर्दक के गुणों से बहुत प्रभावित होता है। वर्दक को अपनी नृत्य और संगीत कला पर गर्व है। वह विस्रोह-सामन्त स्पन्दियार के

प्रासाद में नृत्य प्रतियोगिता में भाग लेती है। नाचते-नाचते थक कर गिर पड़ती है और मर जाती है। इस तरुण (शाह कवात्) को वर्दक की मृत्यु पर बहुत दुःख होता है।

कथा-विश्लेषण

नायक शाह कवात् की इस उपन्यास की एक मात्र कथा है। शाह कवात् के सिंहासनारूढ़ होने, उसके पदच्युत होने, पुनः शासन प्राप्त करने, तथा अपना उत्तराधिकारी चुनने की घटनाये कथा के मुख्य सूत्र हैं।

प्रथम परिच्छेद कथा की भूमिका के रूप में है। इससे शाह कवात् के भव्य तथा विशाल राज-प्रासादों, उसके शानदार दरबार तथा वहां के लोगों की दशा का वर्णन है। दूसरे से पाँचवें परिच्छेद तक कथा का विकास है। शाह कवात् गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है। छठे परिच्छेद में कहानी नया मोड़ लेती है। शाह कवात् को पदच्युत करके बन्दी बना लिया जाता है। सातवें परिच्छेद से लेकर छब्बीसवें परिच्छेद तक शाह कवात् को कारागृह से मुक्त कराने तथा ईरान राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किये जाने का चित्रण है। सत्ताइसवें परिच्छेद में कहानी का अगला मोड़ है। शाह कवात् ईरान के सिंहासन पर पुनः बैठता है। यहाँ कथा समाप्त होती प्रतीत होती है। पर राहुल जी उत्तराधिकारी चुनने के प्रश्न पर शाह कवात् द्वारा किया गया अन्याय दिखाना चाहते हैं, इसलिए कथा और आगे बढ़ती है। अगले तीन परिच्छेदों मे शाह कवात् द्वारा उनके बध का क्रम है।

उपन्यास की कथा का लक्ष्य है—उत्तराधिकारी चुनने के प्रश्न पर शाह कवात् का अन्याय और स्वार्थहित साम्यवादियों का बध। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए केवल एक कथा को सूत्र बनाया गया है। लेखक के विवरण मोह के कारण कथा की धारा बीच-बीच में छितर जाती है। शाह कवात् को कारागृह से मुक्त कराने के लिए उसकी पत्नी का गुन्देशापुर के दुर्ग के अधिकारी हजारपत से प्रेम-अभिनय तथा लोलियों की कन्या 'वर्दक' से शाह कवात् का परिचय और उसकी मृत्यु पर शाह कवात् की सहानुभूति ऐसे प्रसंग हैं। ये धारायें इस उपन्यास में स्वतंत्र प्रासंगिक कथाओं का रूप धारण नहीं कर सकी हैं।

शाह कवात् परिस्थितियों का निर्माता है। वह वंश परम्परा के अनुसार सिंहासन पर बैठता है। मज्दक के साम्यवादी विचारों से प्रभावित होकर वह अपनी इच्छानुसार आचरण करता है। शाही दरबारियों द्वारा किये गये विरोध की चिन्ता नहीं करता। बन्दी बना लिए जाने पर भी सिर नहीं झुकाता। अपने साथियों के सहयोग से परिस्थितियों से संघर्ष करता है और पुनः सिंहासन पर बैठता है। उत्तराधिकारी चुनने के प्रश्न पर भी वह विरोधियों की चिन्ता नहीं करता, अपनी इच्छा को कार्यान्वित करता है। इस प्रकार परिस्थितियों के वशीभूत होने की अपेक्षा वह अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। उसके चरित्र के अनुसार घटनाओं का विकास होता है। मज्दक-अनुयायियों और शाह कवात् की पत्नी सम्बिक का भी चरित्र संघर्षशील है।

मधुर स्वप्न की ऐतिहासिकता

राहुल जी ने उपन्यास के प्राक्कथन में लिखा है—'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' की भाँति 'मधुर स्वप्न' भी मेरा ऐतिहासिक उपन्यास है ।...मैंने इस उपन्यास द्वारा इतिहास के एक विस्तृत पन्ने को पाठकों के सामने रखने की कोशिश की है ।[1] परिशिष्ट में राहुल जी ने ईसाई, पारसी तथा मुसलमान लेखकों की कृतियों के आधार पर इस उपन्यास के शाह कवात् और मज्दक से सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है ।

'मधुर स्वप्न' उपन्यास का सम्बन्ध पाँचवीं-छठी शताब्दी ईसवी के ईरान सम्राट शाह कवात् की जीवन घटनाओं से है । मज्दकियों के साम्यवादी आन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखने के कारण शाह कवात् को पदच्युत होना पड़ता है । हूण-सम्राट तोरमान की सहायता से वह पुनः ईरान का शासक बनता है । उत्तराधिकारी नियुक्त करने के प्रश्न पर वह मज्दकियों का विरोध करता है और उनका बध करवा देता है ।

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स'[2] से 'मधुर स्वप्न' के मज्दक और उसके मत से सम्बद्ध प्राप्त तथ्य इस प्रकार हैं—

(१) वामदात्-पुत्र, मज्दक, ईरान में पाँचवीं शताब्दी के अन्त में साम्यवादी वर्ग का नेता हुआ है । ईरान में फैली हुई अराजकता के कारण उसे अपने मत के प्रचार में सामयिक सफलता मिली ।

(२) मज्दक का मत साम्यवादी था । वह चाहता था कि सम्पत्ति पर सभी को सम्मिलित अधिकार हो । वह अमीरों और गरीबों को समान आर्थिक स्तर पर लाने के पक्ष में था । मज्दकी पति-पत्नी सम्बन्ध के स्थान पर 'सम्मिलित पत्नी' के सिद्धान्त का प्रचार करते थे । उनका मत था कि वैयक्तिक भावना को समाप्त करने का यह सर्वश्रेष्ठ उपाय है । उनके इस प्रचार से इतनी गड़बड फैली कि कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र—इसका ज्ञान लोगों को नही रहा था ।

(३) मज्दक समाज सुधारक था । वह सभ्यता के विकास के लिए अपने साम्यवादी मत को एकमात्र सही मार्ग समझता था । आधुनिक साम्यवाद धर्म से अतिदूर है । मज्दकी साम्यवाद का सम्बन्ध धर्म सापेक्ष था । मज्दकी भगवान अहुर्मज्द की पूजा करते थे ।

'दी एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना'[3], 'दी लीजेसी ऑफ परशिया'[4] तथा

---

[1] मधुर स्वप्न, प्राक्कथन ।

[2] 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स', संपादक जेम्स हेस्टिंगंज, खण्ड आठ, पृष्ठ ५०८ ५०९

[3] दी एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना—खण्ड १८, संस्करण १९६१, पृ० ४७२

[4] दी लीजेसी आफ परशिया—सम्पादक ए० जे० आरबेरी, अध्याय १२ परशिया ऐज सीन बाई दी व्यस्ट', लेखक—एल० लाकहाट, पृ० ३३५

परसी स्काईस की 'ए हिस्टरी ऑफ परशिया'[1] से मज्दक और उसके साम्यवादी विचारों से सम्बद्ध उपलब्ध तथ्य उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों का अनुमोदन करते हैं। राहुल जी ने 'मधुर स्वप्न' के निर्माण के लिए मज्दक और उसके मत से सम्बद्ध जिन प्रसंगों को आधार बनाया है, वे उपर्युक्त तथ्यों के अनुकूल हैं।

'मधुर स्वप्न' के सम्राट शाह कवात् और उसके पुत्र खुसरो से सम्बद्ध सर परसी स्काईस की पुस्तक 'दी हिस्टरी आफ परशिया'[2] से निम्नांकित सामग्री उपलब्ध होती है—

(१) कवात् सन् ४८७ ई० में ईरान का शासक बना।

(२) शासनकाल के आरम्भ में कवात् मज्दक के साम्यवादी विचारों से प्रभावित हुआ। दरबारियों और अमीरों के विरोध के कारण उसे पदच्युत होना पड़ा। उसके स्थान पर उसके भाई जामास्प को सिंहासन पर बैठाया गया। जामास्प ने अपने भाई कवात् को फाँसी नहीं दी। उसे प्रसिद्ध 'विस्मृति-दुर्ग' में बन्दी बना दिया।

(३) अपनी पत्नी की सहायता से कारावास से निकल कर शाह कवात् हूणों के देश में पहुँचा। उन्होंने कवात् की सहायता की। वह ईरान का पुनः शासक बन गया।

(४) शाह कवात् दूसरी बार सन् ५०१ ई० से ५३१ ई० तक शासक रहा। उसने मज्दकियों की राज्य की ओर से सहायता रोक दी, निजी रूप में वह मज्दकी विचार-धारा को मानता रहा।

(५) मज्दक तथा उसके अनुयायी, कवात् के बाद उसके पुत्र काबूस को ईरान का शासक बनाना चाहते थे। कवात् अपने पुत्र खुसरो को उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में था। उसने एक चाल चली। प्रसिद्ध कर दिया कि काबूस को उत्तराधिकारी बनाया जायेगा। मज्दकियों को इस समारोह के लिए निमंत्रित किया गया। वे कवात् की चाल को न समझ पाये। उसने मज्दकियों का बध करवा दिया। यह घटना सन् ५२३ ई० में हुई।

(६) शाह-कवात् की सन् ५३१ ई० में मृत्यु हुई। उसके पुत्र नोशेर्खां (खुसरो) ने अपने भाइयों का बध करवाया और स्वयं ईरान का शासक बना। उसने मज्दक का बध करवा दिया। मज्दक कवात् के समय की मज्दकियों के बध सम्बन्धी घटना के समय बच गया था। अवशिष्ट अनुयायियों का बध कर दिया गया।

"एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स'[3] तथा 'दी एनसाइक्लो-

---

[1] सर परसी स्काईस—'ए हिस्टरी ऑफ परशिया', खण्ड प्रथम, पृ० ४४१, ४४३, ४४९-४५०

[2] सर परसी स्काईस—'ए हिस्टरी ऑफ परशिया', खण्ड प्रथम, पृ० ४४१-४४३, ४४९-५०

[3] एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स, पृ० ५०८

पीडिया अमेरिकना'[1] से शाह-कवात् सम्बन्धी उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्य, उपर्युक्त तथ्यों का अनुमोदन करते हैं। 'मधुर स्वप्न' के शाह कवात् सम्बन्धी प्रसंग उपर्युक्त तथ्यों के अनुकूल है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों तथा 'मधुर स्वप्न' उपन्यास के तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त निम्नांकित निष्कर्ष सामने आते हैं—

(१) 'मधुर स्वप्न' की शाह कवात् के जीवन से सम्बद्ध मुख्यकथा, इतिहास में अपने इस रूप में विद्यमान नहीं है। शाह कवात् ऐतिहासिक पात्र है। वह सन् ४८७ ई० में ईरान का शासक बना। उसकी मज्दकी आन्दोलन के प्रति सहानुभूति, उसकी पदच्युति, श्वेत हूणों की सहायता से उसका पुनः सिंहासनारोहण तथा उत्तराधिकारी चुनने के प्रश्न पर उस द्वारा मज्दकियों का बध ऐतिहासिक तथ्य हैं। इन तथ्यों के आधार पर राहुल जी ने 'मधुर स्वप्न' की मुख्य कथा का निर्माण किया है।

इस उपन्यास की 'विस्मृति कारागृह' सम्बन्धी प्रासंगिक कथा—इतिहास-सम्मत है। पदच्युत किये जाने पर कवात् का 'विस्मृति कारागृह' में रखा जाना तथा उसकी पत्नी द्वारा चालाकी से उसको मुक्त कराना—ऐतिहासिक तथ्य हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर प्रासंगिक कथा का निर्माण किया गया है।

(२) शाह कवात्, खुसरो, काबूस और मज्दक के अतिरिक्त जामास्प, श्वेत हूण सम्राट तोरमान तथा उसका पुत्र मिहिरकुल ऐतिहासिक पात्र हैं।

(३) उपर्युक्त ऐतिहासिक कथा-सूत्रों तथा पात्रो के आधार पर तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण इतिहास-सम्मत है।

विस्मृत यात्री—कथासूत्र

उपन्यास की मुख्य कथा का सम्बन्ध छठी शताब्दी (ई०) के एक यात्री 'नरेन्द्रयश' की यात्राओं तथा उसकी बौद्ध-धर्म-प्रसार सम्बन्धी गतिविधियों से है।

नरेन्द्रयश बौद्धमत प्रधान प्रदेश स्वात (प० पाकिस्तान) का उत्साही बौद्ध है। उसे बौद्ध-धर्म सम्बन्धी तीर्थस्थानों की यात्राओं की उत्कट लालसा है। अपनी प्रेमिका भद्रा से प्रणय-सम्बन्ध असफल हो जाने पर वह तेइसवें वर्ष में कपिशा, गांधार और काश्मीर प्रदेश की यात्रा करता है। कौशाम्बी, श्रावस्ती, लुम्बिनी, कुशीनगर आदि बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा के पश्चात् वह सिंहल द्वीप जाता है।

सात वर्ष की निरन्तर यात्राओं के पश्चात् नरेन्द्रयश अपनी मातृभूमि उद्यान पहुँचता है। जंगल की आग में वहाँ के बिहार के जल जाने पर, उसके जीर्णोद्धार के लिए आर्थिक सहायता-प्राप्ति के निमित्त वह कम्बोज और कची देश की यात्रा करता है। इस यात्रा के पश्चात्, वह काफिलों के साथ हिमालय के

---

[1] दी एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना—पृ० ४७२, खण्ड १८, संस्करण १९६१

पार प्रदेश में पहुँचता है। मार्ग की अनेकानेक कठिनाइयों को सहन करता हुआ वह चीन प्रदेश में प्रविष्ट होता है। छी-वंश का सम्राट उसका स्वागत करता है।

चीन में नरेन्द्रयश बौद्ध धर्म-प्रसार के लिए प्रयत्न करता है। उसके प्रयत्नों से स्थान-स्थान पर बौद्ध-संघ स्थापित होते हैं और चिकित्सालय तथा शरणस्थान बनाये जाते हैं। उसे अपने मार्ग में बौद्ध धर्म विरोधी दलों द्वारा उपस्थित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है किन्तु वह अविचलित रहता है। सूई वंश का सम्राट वेनती नरेन्द्रयश को अपनी राजधानी छाँग-अन में बौद्ध-ग्रन्थों का अनुवाद करने के लिए बुलाता है। अनुवाद-कार्य करता हुआ और लोक हित का कार्य करता हुआ नरेन्द्रयश, इकहत्तर वर्ष की आयु में, चीन में, महाप्रयाण करता है।

उपन्यास की द्वितीय कथा नरेन्द्रयश के मित्र शान्तिल की यात्राओं की है। शान्तिल घुमन्तुओं के 'अवार' परिवार से है। अवार परिवार की तुर्कों से शत्रुता है। हिमालय की ओर बढ़ते हुए अवारों के काफिले पर तुर्क आक्रमण कर देते हैं। शान्तिल का पिता इस मुठभेड़ में मारा जाता है। शान्तिल की माता अपने मायके चली जाती है। शान्तिल नरेन्द्र के साथ हिमालय-पार के प्रदेशों की यात्रा करता रहता है। तत्पश्चात वह साइवेरिया प्रदेश के समीप स्थित एक संघाराम में ठहर कर वहाँ के बौद्ध भिक्षुओं के काम में सहायता करता है।

उपर्युक्त कथाओं के अतिरिक्त इस उपन्यास में लघु आकार के दो उल्लेखनीय प्रसंग हैं :—

(१) कांची की यात्रा करते समय वहलीक् भिक्षु रेवतक वहाँ के राजमन्त्री की अद्वितीय सुन्दरी कन्या पर मुग्ध हो जाता है। कन्या भी रेवतक के प्रति आकृष्ट होती है। राजमन्त्री इस प्रेम का अनुमोदन करता है। रेवतक अपने मित्र नरेन्द्रयश की अनुमति प्राप्त कर पीत चीवर छोड़कर राजमन्त्री का गृह-जामाता बन जाता है।

(२) कांची-यात्रा में नरेन्द्र का साथी सुमन वहाँ के एक वृद्ध की मरणासन्न कन्या को स्वस्थ करता है। सुमन और वह कन्या एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं और प्रेम करने लगते हैं। सुमन अपनी आगे की यात्रा छोड़कर कांची में रहने लगता है।

कथा-विश्लेषण

'विस्मृत यात्री' की मुख्य कथा बीस अध्यायों में प्रस्तुत की गई है। प्रथम चार में नरेन्द्रयश के प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी जन्मभूमि 'उद्यान' की सभ्यता का उल्लेख है। इस भाग को उपन्यास की भूमिका कहा जा सकता है। पांचवें से नौवें अध्याय तक नरेन्द्रयश की भारत के विभिन्न प्रदेशों तथा सिंहल द्वीप की यात्राओं का उल्लेख है। शेष में नरेन्द्रयश की हिमालय के निकटवर्ती प्रदेशों में यात्रा का तथा महाचीन में उसके बौद्धमत सम्बन्धी प्रसारकार्यों का वर्णन है।

मुख्य कथा मे घटनाओं के संगठन तथा उसके उतार-चढ़ाव के अभाव के

कारण इस उपन्यास को विशिष्ट कोटि में स्थान मिल सकता है। उपन्यास के संगठन गुण के प्रसंग में बा० गुलाबराय लिखते हैं—"उपन्यास एक कला-कृति है। यद्यपि जीवन का प्रवाह किसी कटे छटे ढाँचे के अनुकूल नहीं है तथापि उपन्यास के कथानक में संगठन, क्रम और संगति का होना आवश्यक है। आजकल अंग्रेजी भाषा में कुछ उपन्यास ऐसे लिखे गये हैं कि जिनमें जीवन का ब्यौरा पूरा-पूरा दिया गया है और वे पूरे जीवन की सिनेमा रील से बन जाते हैं किन्तु वे नियम नहीं कहे जा सकते वरन् अपवाद ही माने जायेंगे।"[1] 'विस्मृत यात्री' इसी प्रकार का वर्णनात्मक उपन्यास है। इसमें न जीवन की विशिष्ट समस्या का विकास है और न ही समाधान। यहाँ आत्मकथात्मक शैली में नायक की यात्राओं का वर्णन मात्र है।

शान्तिल की प्रासंगिक कथा मुख्य कथा के साथ चौदहवे अध्याय से सत्तारहबें अध्याय तक फैली है। यह मुख्य कथा के विकास में सहायक नहीं है। तेरहवें अध्याय के रेवतक और सुमन सम्बन्धी प्रसंगों के कारण कथा की गति में शिथिलता आ गई है। यात्राओं के अति विस्तृत वर्णन के कारण कथा की रोचकता कम हो गई है।

'विस्मृत यात्री' की ऐतिहासिकता

इस उपन्यास की भूमिका में राहुल जी लिखते हैं—"इतिहास का विद्यार्थी और पर्यटक होने के कारण 'विस्मृत यात्री' जैसे उपन्यास के लिखने के लिये मेरा ध्यान जाना स्वाभाविक ही है।.......ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और भूगोल या तत्कालीन देश काल-पात्र की असंगति को मैं अक्षम्यदोष और इसकी किसी भी बहाने से व्याख्या करना बेकार समझता हूँ। 'विस्मृत यात्री' के लिखने में इन बातों पर कितना ध्यान दिया गया है. इसे सहृदय पाठक समझेंगे। नरेन्द्रयश कोई कल्पित पात्र नहीं है। वह हमारे ही देश के—अब पश्चिमी पाकिस्तान के—स्वात (उद्यान) की भूमि में सन् ५१८ ई० में पैदा हुये थे।"[2]

'विस्मृत यात्री' उपन्यास की मुख्य कथा का सम्बन्ध छठी शताब्दी ईसवी के 'उद्यान' के एक बौद्ध यात्री नरेन्द्रयश' की यात्राओं से है। भारत और लंका के बौद्ध तीर्थों की यात्रा के पश्चात् वह चीन जाता है। वहां वह बौद्ध-धर्म प्रचार के लिए कार्य करता है। बौद्ध-ग्रन्थों का संस्कृत और पाली से चीनी में अनुवाद करता हैं। सूई वंश का चीन सम्राट 'वेनती' जो बौद्ध मतानुयायी है, नरेन्द्रयश की बौद्धमत के प्रसार कार्य में सहायता करता है। द्वितीय कथा नरेन्द्रयश के मित्र शान्तिल की यात्राओं से सम्बद्ध है।

'विस्मृत यात्री' उपन्यास के नायक 'नरेन्द्रयश' तथा अन्य बौद्ध-यात्रियों के

---

[1] काव्य के रूप, पृ० १६७

[2] विस्मृत यात्री, 'दो शब्द', पृ० १

सम्बन्ध में प्रबोधचन्द्र बागची की पुस्तक 'इण्डिया एण्ड चाइना'[1] से निम्नलिखित सामग्री प्राप्त होती है :—

(१) नरेन्द्रयश उत्तरी भारत के उद्यान प्रदेश का बौद्ध-भिक्षु था। उसने मध्य एशिया के विभिन्न देशों की यात्रा की। अन्ततः सन् ५५६ ई० में वह चीन पहुँचा। चीन में रह कर उसने सन् ५५६ से ५६८ ई० के बीच सात तथा सन् ५८२ ई० से ५८५ ई० के बीच आठ बौद्ध-ग्रन्थों का संस्कृत व पाली से चीनी भाषा में अनुवाद किया। उसका चीन में सन् ५५९ ई० में देहान्त हुआ।

(२) गौतमप्रज्ञा रुचि, उपशून्य, विमोक्षसेन, धर्मबोधि, गुणभद्र, यशोगुप्त, आदि बौद्ध-भिक्षु पाँचवीं-छठी शताब्दी में चीन गए और इन्होंने वहाँ रह कर बौद्ध-ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

राहुल जी ने 'विस्मृत यात्री' में नरेन्द्रयश तथा अन्य बौद्ध भिक्षुओं के सम्बन्ध में जिन प्रसंगों का उल्लेख किया है वे उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल हैं।

चीन में रहकर नरेन्द्रयश ने बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस कार्य में सूई वंश के सम्राट 'वेनती' की ओर से उसको प्रोत्साहन मिला। इस सम्बन्ध में बोल्फराम एवरहार्ड की पुस्तक 'ए हिस्टरी आफ चाइना'[2] से निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध हैं :—

(१) सूई वंश की स्थापना यांग चिएन ने की। वह इतिहास में 'वेनती' के नाम से प्रसिद्ध है। उसने चीन में ५५९ ई० से ६०४ ई० तक शासन किया।

(२) 'वेनती' बौद्धमत में अपार श्रद्धा रखता था।

डा० चाउ सिआंग कुआंग की पुस्तक 'चीनी बौद्धधर्म का इतिहास'[3] तथा प्रबोधचन्द्र बागची की पुस्तक 'इण्डिया एण्ड चाइना'[4] से सूई वंश इस वंश के सम्राट् 'वेनती' के सम्बन्ध में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्य उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों का अनुमोदन करते हैं। राहुल जी ने 'विस्मृत यात्री' में 'वेनती' सम्बन्धी जो प्रसंग दिये हैं वे पूर्वोक्त तथ्यों के अनुकूल हैं।

उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों तथा 'विस्मृत यात्री' उपन्यास के तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:—

(१) नरेन्द्रयश ऐतिहासिक पात्र है, अतः उपन्यास की आधिकारिक कथा के सूत्र इतिहास में उपलब्ध हैं। बौद्ध-भिक्षु नरेन्द्रयश की छठी शताब्दी ईसवी में चीन

---

[1] प्रबोधचन्द्र बागची—'इण्डिया एण्ड चाइना'—
क्रम संख्या १ के लिए देखिए, पृ० २१६
क्रम संख्या २ के लिए देखिये पृ० २०७, २११, २१२, २१९-२२०

[2] बोल्फराम एवरहार्ड —'ए हिस्टरी आफ चाइना'
देखिए क्रम संख्या १ तथा २ के लिए पृ० १६६-१६८

[3] डा० चाउ सिआंग कुआंग 'चीनी बौद्धधर्म का इतिहास', पृ० १२८

[4] प्रबोधचन्द्र बागची, 'इण्डिया एण्ड चाइना', पृ० ४७, ६८

यात्रा, सूई वंश के सम्राट् 'वेनती' की बौद्धमत पर अपार श्रद्धा, उसकी नरेन्द्रयश के बौद्धमत-प्रसार सम्बन्धी कार्य में सहायता—ऐतिहासिक तथ्य हैं। इन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर राहुल जी ने 'विस्मृत यात्री' की आधिकारिक कथा का निर्माण किया है। 'शान्तिल' से सम्बद्ध प्रासंगिक कथा कल्पित है।

(२) उपन्यास का नायक नरेन्द्रयश इतिहास-प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु है। उपन्यास में गौतम प्रज्ञारुचि, उपशून्य, विमोक्षसेन, धर्मबोधि आदि भिक्षुओं का उल्लेख किया गया है। ये सभी इतिहास-प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु हैं। सूर्य वंश का सम्राट् वेनती तथा हूण वंश का मिहिरकुल ऐतिहासिक पात्र हैं। मिहिरकुल ने कुछ समय काश्मीर पर शासन किया।

(३) उपर्युक्त ऐतिहासिक कथासूत्रों तथा ऐतिहासिक पात्रो के आधार पर राहुल जी ने 'विस्मृत यात्री' के ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण किया है। चीन की छठी शताब्दी ईसवी की राजनीतिक कथा धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण इतिहासानुकूल है।

दिवोदास—कथासूत्र

(१) उपन्यास की मुख्य कथा का सम्बन्ध तृत्सुओं के राजा दिवोदास और किरातों (अनार्यों) के विरुद्ध संघर्ष से है। दिवोदास अपने पिता वध्यश्व के दिवंगत होने पर ११९५ ई० पू० में तृत्सुजन का राजा बनता है। उसका राज्य व्यास तथा परुष्णी (रावी) दोनों नदियों के बीच की भूमि में स्थित है। सप्तसिन्धु (पंजाब) से पणियों तथा किरातों को निकालने के लिए वह उनसे युद्ध करता है। भुज्यु आदि सेनापतियों की सहायता से पहले वह पणियों को समाप्त करता है और पश्चिमी सिन्धुप्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करता है। तत्पश्चात् संघर्ष में किरातों की पुरियों पर अभियान करता है। इस दीर्घकालीन संघर्ष में किरातों का दुर्दान्त राजा शंबर उसका प्रतिरोध करता है। दिवोदास अपने सेनापतियों की सहायता से किरात-पुरियों का ध्वंस कर द्वन्द्व युद्ध में असुर राजा शंबर का बध कर देता है। दिवोदास सम्पूर्ण सिन्धु प्रदेश का स्वामी बन जाता है।

(२) इस उपन्यास की द्वितीय कथा पुरु राजा पुरुकुत्स के सात किलात-पुरियो का ध्वंस करने की है। परुष्णी और सरस्वती—दोनों नदियों के बीच भूमि में स्थित पुरुजन का राजा पुरुकुत्स अपने प्रदेश को किलातों के आक्रमणों के भय से मुक्त करना चाहता है। वह उत्तर में स्थित पर्वतीय किलातपुरियों पर आक्रमण करता है। किलातों के विरुद्ध तीन वर्ष के संघर्ष के उपरान्त वह उनकी सातों पुरियों का ध्वंस कर देता है।

उपर्युक्त दो कथाओं के अतिरिक्त इस उपन्यास में तीन प्रसंग भी हैं—

(१) आर्यग्राम में एक गन्धर्व-गृहीता आर्यकुमारी है। आर्यकुमारी संज्ञाहीन है। गंधर्व, कन्या के शरीर में प्रविष्ट है। वह कहता है कि वह इन्द्र का अनुचर है। परुष्णी नदी के तट पर उसने उस आर्य कुमारी के नग्न सौन्दर्य को देखा और मुग्ध हो गया।

जब तक यह कुमारी है तब तक वह इससे कभी कभी सम्पर्क रखेगा। गन्धर्व कुमारी के मुख से कभी आर्यों की वाणी में बोलता है और कभी पणियों की वाणी में। वह लोगों के प्रश्नों का उत्तर देता है। वह अदृश्य चीजों के विषय में भी बताता है। दिवोदास से कहता है कि किरात आर्य भूमि पर सात दिन पश्चात आक्रमण करेंगे। उसकी यह बात ठीक सिद्ध होती है।

(२) शम्भु, किरात राजा शम्बर की दुहिता है। वह असुर-स्त्रियों की एक सेना-नायिका है। अपनी सेना को लेकर वह एक आर्य-ग्राम पर धावा बोलती है। आर्यग्राम को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। करुणावश वह एक चार-पांच वर्ष के आर्य-शिशु की हत्या न कर उसे अपने साथ ले आती है। वह उसे अपना पुत्र समझने लगती है। बच्चा बड़ा हो जाने पर भी शम्भु को माता समझता रहता है। वह असुरों का समर्थक और आर्यों का घोर शत्रु सिद्ध होता है। आर्य उसे 'देवक मन्य-मान' नाम देते हैं। आर्यों के विरुद्ध, असुरों की ओर से युद्ध करता हुआ वह अपने प्राण गँवा देता है पर आर्यों के सामने नत मस्तक नहीं होता।

कथा-विश्लेषण

नायक दिवोदास की जीवन-घटनाओं से सम्बद्ध कथा इस उपन्यास की मुख्य कथा है। दिवोदास के सिंहासनारूढ़ होने, उसके पणियों और किरातों के विरुद्ध संघर्ष करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने की घटनाएँ कथा-सूत्र हैं।

मुख्य कथा द्वितीय अध्याय से आरम्भ होती है। इस अध्याय में नायक दिवो-दास का जन्म होता है। तीसरे, चौथे अध्याय में दिवोदास के बाल्यकाल तथा उसकी शिक्षा-दीक्षा का उल्लेख है। पाँचवें अध्याय में उसका राज्याभिषेक होता है। सातवें, आठवें और दसवें से बारहवें तक के अध्यायों में राजा दिवोदास की राज्य-व्यवस्था तथा उसके पणियों और किरातों के विरुद्ध संघर्ष-कथा का वर्णन है। किरातों पर दिवोदास की विजय के साथ, बारहवें और अन्तिम अध्याय में मुख्य कथा समाप्त हो जाती है।

पुरु राजा पुरुकुत्स की सात किलात-पुरियों के ध्वंस से सम्बद्ध कथा इस उपन्यास की प्रासंगिक कथा है। इस का उल्लेख प्रथम अध्याय में हुआ है। इसकी घटनायें मुख्य कथा की घटनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करती हैं। पुरुराज पुरुकुत्स की किलातों की सात पुरियों की ध्वंस करने की घटना से दिवोदास को किरातों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। इस कथा को मुख्य कथा की भूमिका कहा जा सकता है। यह आगामी घटनाओं की पृष्ठभूमि का काम करती है।

मुख्य कथा के कलेवर को स्थूल बनाने तथा तत्कालीन सामाजिक एवं राज-नीतिक परिस्थितियों को सुस्पष्ट करने के लिए राहुल जी ने इस उपन्यास की मुख्य कथा के अन्तर्गत दो प्रसंगों का समावेश किया है। छठे अध्याय से 'गंधर्वगृहीता कुमारी' के प्रसंग से दिवोदास और किलातों के मध्य होने वाले संघर्ष की सूचना मिलती है। नौवें अध्याय में शम्भु नाम की किरात वीरांगना प्रसंग है। इससे उस समय की

किरात-स्त्रियों के पराक्रम का ज्ञान होता है। ऐसे प्रसंगों का ऋग्वेद की ऋचाओं में संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। उन्हीं संक्षिप्त कथा सूत्रों को राहुल जी ने इन प्रसंगों के रूप में प्रस्तुत किया है। ये प्रसंग मुख्य कथा से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नहीं हैं। इन से मुख्य कथा की भावी घटनाओं के सम्बन्ध में यत्किंचित् आभास अवश्य मिलता है।

दिवोदास की ऐतिहासिकता

'दिवोदास' उपन्यास का सम्बन्ध १२ वीं, १३ वीं शताब्दी ईसा पूर्व में सप्तसिन्धु (पंजाब) में, आर्यों तथा अनार्यों के मध्य हुए राज्य-विस्तार सम्बन्धी संघर्ष से है। इस संघर्ष में पुरु राजा पुरुकुत्स किलातों की सात पुरियों का ध्वंस करता है और तृत्सुओं का राजा दिवोदास पणियों को परास्त करने के पश्चात् किरातों की एक सौ पुरियों का ध्वंस करता है।

'दिवोदास' की भूमिका में राहुल जी ने लिखा है कि उनका पूर्व-लिखित 'ऋग्वेदिक आर्य' इस उपन्यास की लम्बी भूमिका है।[1] राहुल जी का यह कथन सत्य है। उन्होने अपने 'ऋग्वेदिक आर्य' ग्रंथ में ऋग्वेदकालीन आर्यों के जीवन का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सूक्ष्म अध्ययन किया है। इस ग्रंथ से तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। उक्त ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रतिपादित विषय के समर्थन में राहुल जी ने साढ़े तीन सौ पृष्ठों के वृहत् परिशिष्ट में ऋग्वेद से ऋचायें उद्धृत की हैं। उक्त परिशिष्ट से 'दिवोदास' उपन्यास सम्बन्धी तथ्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।[2]

(अ) दिवोदास तथा शम्बर के मध्य हुये संघर्ष सम्बन्धी ऋचायें—'जिसके मद में मस्त हो हे इन्द्र, तुमने, दिवोदास के लिए शंबर को मारा। सो यह सोम तुम्हारे लिए छना हुआ है, पियो।' ऋषि भारद्वाज, मण्डल ६, सूक्त ४३, ऋचा १।

"मैंने मस्त हो, शम्बर की निन्यानवें पुरियों को ध्वस्त किया, सवों को प्रवेश करने के लिये (रखा) जब (युद्ध में) दिवोदास अतिथिग्व की मैंने रक्षा की थी।' ऋषि वामदेव, मण्डल ४ सूक्त २६, ऋचा ३।

(ब) दिवोदास के पिता राजा वध्यश्व से सम्बद्ध ऋचा—'इस (सरस्वती) ने भक्त वध्यश्व को ऋणमोचक भयंकर दिवोदास प्रदान किया। जिस (तू) ने दान-

---

[1] दिवोदास—दो शब्द

[2] ऋग्वेदिक आर्य—राहुल सांकृत्यायन,
(अ) के लिए कृपया देखिये, पृ० ३८५
(ब) ,, ,, ,, पृ० ३६६
(स) ,, ,, ,, पृ० ३४६
(द) ,, ,, ,, पृ० ३७७
(य) ,, ,, ,, पृ० ३७७
(र) ,, ,, ,, पृ० ३३५, ३३६

हीन पणि को बराबर खाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ हैं।' ऋषि भारद्वाज, मण्डल ६, सूक्त ६१ ऋचा १।

(स) शंबर (असुर) की अबला सेना के विषय में ऋचा—'दास (शंबर) ने स्त्रियों को आयुध (सैनिक) बनाया, इसकी अवला सेना मेरा क्या करेगी ? उसके दो स्वर प्रसिद्ध हुये। तब दस्यु से लड़ने के लिए आगे बढ़ा।' ऋषि वभु, मण्डल ५, सूक्त ३०, ऋचा ९।

(द) पुरु राजा 'पुरुकुत्स' द्वारा दासों की सात पुरियों के ध्वंस से सम्बद्ध ऋचा—

'हे इन्द्र, तुम्हारी रक्ष द्वारा हम नवीन वन चाहते हैं। (अपने) यज्ञों द्वारा पुरु लोग ये स्तुतियां करते हैं। जब पुरुकुत्स की सहायता करते तुमने दासों की सात शरद-कालीन शरण स्थानीय गढ़ियों को नष्ट किया।' ऋषि भारद्वाज, मण्डल ६, सूक्त २०, ऋचा १०।

(य) पुरुकुत्स पुत्र त्रसदस्यु से सम्बद्ध ऋचा ३, मण्डल ७, सूक्त १९, ऋषि वसिष्ठ।

(र) सरमा और पणियों का संवाद—ऋचाएँ १ से ११, सूक्त १०८, ऋषि पणिगण और सरमा।

उक्त तथ्य वैदिक इण्डेक्स[1], ऋग्वेद भाष्यम्[2] (अष्टमभागात्मकम्) तथा हिन्दी ऋग्वेद[3] नामक ग्रन्थों के अन्तर्गत संकलित तथ्यों के अनुकूल हैं।

उक्त ऐतिहासिक तथ्यों तथा 'दिवोदास' उपन्यास के तुलनात्मक विश्लेषण के उपरान्त निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—दिवोदास उपन्यास की मुख्य कथा के सूत्र—दिवोदास का पणियों और किरातों से संघर्ष तथा उनको पराजित करना—इतिहास में उपलब्ध तथ्य हैं। इन्हीं के आधार पर राहुल जी ने मुख्य कथा का

---

[1] वैदिक इण्डेक्स—भाग १, मूल लेखक—मेकडोनेल और कीथ, अनुवादक—रामकुमार राय
(क) वध्यश्व, दिवोदास व शम्बर के लिए देखिए, पृ० ४०६-४०७
(ख) पुरुकुत्स ,, ,, ,, ,, पृ० ६१७

[2] ऋग्वेद भाष्यम् (अष्टम भागात्मकम्), श्री मध्यानन्दसरस्वती स्वामिना निर्मितम्।
(क) दिवोदास-शम्बर संघर्ष के लिए देखिये, पृ० ४३५
(ख) वध्यश्व व दिवोदास ,, ,, ,, , पृ० ७०७
(ग) पुरुकुत्स द्वारा सात असुर-पुरियों का ध्वंस के लिए देखिये, पृ० २५२

[3] हिन्दी ऋग्वेद—भाषान्तरकार व सम्पादक—प० रामगोविन्द त्रिवेदी
(क) दिवोदास तथा शम्बर संघर्ष के लिए देखिये, पृ० ७२२
(ख) दिवोदास व वध्यश्व के लिए देखिये, पृ० ७५४
(ग) सरमा व पणिगण सम्बन्धी प्रसंग के लिए देखिये, पृ० १३९३ से १३९५
(घ) पुरुकुत्स और असुरों के संघर्ष के लिए देखिये, पृ० ६९६

निर्माण किया है। पुरुकुत्स की सात असुर-पुरियों से सम्बद्ध प्रासंगिक कथा तथा शम्बर की अबला सेना से सम्बद्ध प्रसग ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं। ऋचाओं के रूप में प्रकीर्ण सूत्रों को राहुल जी ने इस उपन्यास की मुख्य कथा, प्रासंगिक कथा और प्रसग का रूप दिया है।

दिवोदास उपन्यास के अधिकांश पात्र—दिवोदास, वध्यश्व, भारद्वाज ऋषि, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, कुत्स, भुज्यु, पुरुकुत्स्यानी, सरमा, शम्बर, शुषाण ऐतिहासिक पात्र हैं।

दिवोदास के अन्तर्गत तत्कालीन राजनीतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण इतिहास-सम्मत है।

राहुल जी के उपन्यासों का कथा-शिल्प

राहुल जी के उपन्यासों के कथासूत्रों तथा उनके विश्लेषण पर विचार करने के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:

(१) **समान कथासूत्र**—राहुल जी के उपन्यासों की कथाओं में नवीनता है किन्तु समान बीजों के आधार पर विभिन्न चरित्रों तथा विभिन्न परिस्थितियों में विकसित कथाओं को भी उपन्यासों में स्थान मिला है। विभिन्न कथाओं में निम्नांकित समान कथा-सूत्रों का प्रयोग बारम्बार किया गया है—

(क) **यात्रा-प्रसंग**—राहुल जी के प्रत्येक उपन्यास में नायकों अथवा अन्य पात्रों की यात्राओं के प्रसंग मिलते हैं। 'जीने के लिए' उपन्यास के नायक देवराज की यात्राओं में रुचि है। वह यूरोप, इंगलैंड तथा रूस की यात्रा करता है, इतना अवश्य है कि यात्रा, उसका मुख्य उद्देश्य नहीं। कर्नल ज्याफरे, उसका परिवार तथा देवराज काश्मीर-यात्रा करते हैं। 'सिंह सेनापति' में कपिल यात्रा प्रेमी है। उसने कई देशों की यात्रा कर रखी है। 'जय यौधेय' में नायक जय और उसके मित्र सिंह-वर्मा की यात्राओं का विस्तृत वर्णन है। 'मधुर स्वप्न' में शाह कवात् तथा उसके मज्दकी साथियों की छद्मवेष में यात्राओं का उल्लेख है। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास है ही नायक नरेन्द्रयश की यात्राओं का ब्योरा।

(ख) **वीरता तथा साहस के प्रसंग**—राहुल जी द्वारा कृत प्रत्येक उपन्यास में वीरता तथा साहस की घटनाओं का समावेश है। 'जीने के लिए' उपन्यास में देवराज और जेनी ब्राउन युद्ध-स्थलों में अपनी वीरता और साहस का परिचय देते हैं। स्व-राज्य सम्बन्धी आन्दोलनों तथा कृषक-जमींदारों के संघर्ष में देवराज अपूर्व साहस का परिचय देता है। 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों तथा 'जय यौधेय' में यौधेयों की वीरता की घटनाओं का विस्तृत उल्लेख है। 'मधुर स्वप्न' में शाह कवात् के साथी उसे पुन: सिंहासनारूढ़ कराने में अपने साहस का परिचय देते हैं। 'विस्मृत यात्री' में नायक नरेन्द्रयश की यात्रा सम्बन्धी साहसपूर्ण घटनाओं का तथा घुमन्तु जातियों के पारस्परिक संघर्ष का वर्णन है।

(ग) प्रेम-प्रसंग—राहुल जी के प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी की प्रेम-

कथा अवश्य है। 'जय यौधेय' उपन्यास में नायक जय वसुनन्दा से विधिवत् विवाह करने से पूर्व, अपनी यात्रा के समय शबर कन्या श्यामा से प्रणयलीला करता है, उससे विवाह करता है और फिर उसे वहीं छोड़ अपनी यात्रा आगे आरम्भ करता है।

'मधुर स्वप्न' में शाह कवात् सामन्त पुत्री नवान-दुख्त से प्रणय लीला करता है और सिंहासनारूढ़ होने पर उसे अपने पास बुलवा लेता है। 'विस्मृत-यात्री' उपन्यास में नायक नरेन्द्रयश और मद्रा के असफल प्रणयप्रसंग का वर्णन है। नरेन्द्रयश के सहयात्री सुमन और रेवतक अपनी अपनी प्रेमिकाओं के साथ प्रेम प्रसंग पल्लवित करने के उपरान्त उनसे विवाह करते हैं। 'जीने के लिये' और 'सिंह-सेनापति' उपन्यासों के नायक तथा प्रमुख नारीपात्र विवाह सूत्र में बंधने से पूर्व एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं और प्रेम प्रसंग पल्लवित करते हैं।

(२) सरल कथानक—राहुल जी के सभी उपन्यासों के कथानक सरल हैं, कई कथाओं से निर्मित पेचीदा नहीं। 'जीने के लिये' उपन्यास में केवल एक संक्षिप्त प्रासंगिक कथा है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' में भी एक-एक प्रासगिक कथा है। 'मधुर स्वप्न' में कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। 'विस्मृत यात्री' में शान्तिल के जीवन से सम्बन्धित केवल एक कथा ही संक्षिप्त प्रसंग है।

(३) विवरण मोह—राहुल जी के विवरण मोह के कारण, प्रासगिक कथाओं के अतिरिक्त उनके उपन्यासों में कुछ प्रसंग भी हैं। ये प्रसंग पानी में तेल की बूंद की भांति फैलते अवश्य प्रतीत होते हैं पर वे प्रासगिक कथा का रूप धारण नहीं कर सके हैं। सिंह सेनापति उपन्यास 'कृष्ण' माली का, 'जय यौधेय' में सिंह वर्मा और बासन्ती का, 'मधुर स्वप्न' में दुर्ग अधिकारी हजारपत और सम्बिक् की प्रणयलीला का, तथा इसी उपन्यास में शाह कवात् और घुमन्तु कन्या वर्दक का प्रसंग तथा 'विस्मृत यात्री' में रेवतक और सुमन की प्रणयलीलाओं के प्रसंग—राहुल जी के विवरण मोह के परिचायक हैं। ऐसे प्रसंगों के वर्णन के समय उनका ध्यान मुख्य कथा से हट गया है और साथ ही ये कथा के विकास में भी सहायक नहीं हैं।

(४) कथानक तथा पात्रों का सम्बन्ध—राहुल जी अपने उपन्यासों की पूर्वनियोजित कथा में अपने पात्रों को रखते हैं और उनका चरित्र-चित्रण करते हैं। उनके प्रायः सभी उपन्यासों की घटनायें पात्रों के चरित्र द्वारा प्रभावित हुई हैं। पात्र घटनाओं के बोझ से दब नहीं गये हैं। 'जीने के लिए' उपन्यास के मुख्य विषय हैं—देवराज का देश की स्वतंत्रता तथा कृषकों के हितों की रक्षा सम्बन्धी आन्दोलनों में भाग लेना। इन सभी घटनाओं का देवराज स्वयं संचालन करता है। इसी प्रकार 'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' की मुख्य घटनायें नायकों के चरित्र द्वारा प्रभावित हुई हैं। 'मधुर स्वप्न' का नायक शाह कवात् अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करता है। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास में घटनाओं की अपेक्षा यात्राओं का अधिक वर्णन है। नरेन्द्रयश स्वेच्छाचारी यात्री है।

(५) **घटनाओं के चरम सीमा पर पहुंचने के पश्चात कथा का विकास**—उपन्यासों में चरमसीमा के पश्चात् प्रायः कथा का विकास नहीं हुआ करता है, पर राहुल जी के उपन्यासो में ऐसा हुआ है। 'सिंह सेनापति' में लिच्छवियों और मगधराज बिम्बसार के मध्य सन्धि हो जाने के पश्चात् कथानक समाप्त होता प्रतीत होता है, पर ऐसा नहीं हुआ है। सन्धि के बाद के दो परिच्छेदों में सिंह को महात्मा बुद्ध का अनुयायी बनाया गया है तथा सिंह और अन्य पात्रों के मध्य रोहिणी तथा अन्य नारी पात्रों की वीरता की चर्चा की गई है। 'जय यौधेय' में जय की मृत्यु के साथ कथानक को समाप्त न कर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को अन्य राज्यों को परास्त करता हुआ दिखाया गया है। मधुर स्वप्न' में कथानक को शाह कवात् के पुनः सिंहासनारूढ़ होने के साथ समाप्त न कर उत्तराधिकारी चुनने के प्रश्न पर शाह कवात् और मज्दकियों के मध्य संघर्ष द्वारा आगे बढ़ाया गया है। 'जीने के लिए' तथा 'विस्मृत यात्री' उपन्यास अवश्य ही नायकों की मृत्यु के साथ समाप्त हो गये हैं।

(६) **कथा-संगठन में शिथिलता**—कथा-संगठन की दृष्टि से राहुल जी के उपन्यास शिथिल हैं। कथा के संगठन में शिथिलता का मुख्य कारण राहुल जी का विवरण मोह है। अपने विवरण मोह के कारण वे मुख्य कथा से हटकर अन्य प्रसंगों का विस्तृत वर्णन करने लगते हैं। इन प्रसंगों के कारण मुख्य कथा का तारतम्य टूट जाता है। 'जीने के लिए' उपन्यास में मोहनलाल की 'क्रांति' सम्बन्धी विषयों पर चर्चा, कर्नल ज्याफरे की हिमालय यात्रा का वर्णन, पात्रों की स्वतन्त्रता सम्बन्धी विषयों पर लम्बे वादविवाद आदि प्रसंग कथानक के संगठन में बाधक हुये हैं। 'सिंह सेनापति' में बौद्धधर्म तथा जैनधर्म सम्बन्धी विषयों पर चर्चा, कालिदास और जय के मध्य वार्तालाप तथा वनभोज सम्बन्धी प्रसंगों ने—कथानक के संगठन को शिथिल बनाया है। 'जय यौधेय' में नायक जय और सिंहवर्मा के यात्रा सम्बन्धी, तथा इन दोनों के अपनी-अपनी प्रेमिकाओं के साथ प्रणयलीला सम्बन्धी प्रसंगों के कारण कथानक के संगठन को ठेस पहुँची है। 'मधुर स्वप्न' में मज्दकियों और शाह-कवात् की छद्मवेश की यात्राओं का अतिविस्तृत वर्णन, 'विस्मृत यात्री' में सुमन, शान्तिल और रेवतक से सम्बन्धित प्रसंगों के कारण इन दोनों उपन्यासों के कथा-संगठनों में शिथिलता आ गई है। इन सभी अतिविस्तृत प्रसंगों के कारण उपन्यासों की गतिशीलता मन्द पड़ गई है। साथ ही इन प्रसंगों के कारण उपन्यासों की कथा-वस्तु के रोचकता सम्बन्धी तत्व को ठेस पहुँची है।

राहुल जी के उपन्यासों में ऐतिहासिकता का तत्व

राहुल जी के छः उपन्यासों में से पांच—'दिवोदास', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर स्वप्न' तथा 'विस्मृत यात्री' ऐतिहासिक हैं। इन उपन्यासों का इतिहास की दृष्टि से विश्लेषण करने पर निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए सामग्री एकत्रित करने के लिए विद्वान प्राय: जिन ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग करते हैं उनमें मुख्य हैं—इतिहास-ग्रन्थ, स्थानीय इतिहास, अवशिष्ट वातावरण (परम्पराएँ, किम्बदन्तियां तथा पुराने भवनों के खडहर तथा स्मारक चिह्न आदि) तथा लोक कथाएँ। राहुल जी ने लुप्तप्राय: ऐतिहासिक तथ्यों को अपने उपन्यासों द्वारा प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। उनके उपन्यास प्राचीन इतिहास से सम्बद्ध हैं, अतएव उपन्यासों के लिए उन्हें स्थानीय इतिहास, अवशिष्ट वातावरण अथवा लोक-कथाओं से विशेष सहायता नहीं मिल सकती थी। 'जय यौधेय' के लिए उन्होंने गुप्तकालीन शिलालेखों और सिक्कों से सहायता ली है।[1] शेष सभी उपन्यासों के निर्माण के लिए, अन्य किसी ऐतिहासिक स्रोत से तथ्य ग्रहण न करके उन्होंने केवल इतिहास-ग्रंथों में यत्रतत्र प्रकीर्ण तथ्यों को आधार बनाया है। 'दिवोदास' के लिए राहुल जी ने ऋग्वेदिक कथाओं को आधार बनाया है। 'सिंह सेनापति' के लिए उन्होंने बौद्ध-ग्रंथों से तथ्य प्राप्त किये हैं। 'जय यौधेय' के लिए तथ्य उन्होंने गुप्तकालीन शिलालेखों और सिक्कों के अतिरिक्त डाक्टर अल्तेकर, प्रोफेसर राखालदास बेनर्जी और डा० आर० एन० डाण्डेकर के इतिहास ग्रन्थों से प्राप्त किये हैं।[2] 'मधुर-स्वप्न' के लिए सामग्री का संचयन राहुल जी ने ईरान के इतिहास-ग्रन्थों से प्राप्त किया है।[3] सन् १९४४-४५ में सात महीने राहुल जी तेहरान (ईरान) में रहे। वहाँ उन्होंने इस उपन्यास को लिखने का निश्चय किया था। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास के लिए सामग्री, उन्होंने चीनी साहित्य से प्राप्त की थी।[4] इस प्रकार राहुल जी ने अपने ग्रन्थों के लिए अधिकांश तथ्य इतिहास-ग्रन्थों से प्राप्त किये हैं।

राहुल जी अतीत के समाज को 'ईमानदारी' के साथ वास्तविक रूप में रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और तत्कालीन देश-काल पात्र की असंगति को वे अक्षम्य दोष समझते हैं।[5] राहुल जी कोरी कल्पना के पक्ष में नहीं हैं। इतिहास में प्रकीर्ण कथा-सूत्रों को शृंखलाबद्ध करने के लिए उन्होंने कल्पना से काम लिया है। 'दिवोदास' के कथा-सूत्र कुछ ऋग्वेदिक ऋचाओं के रूप में उपलब्ध हैं। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' से सम्बद्ध सामग्री इतिहास ग्रन्थों में अत्यल्प रूप में मिलती है। 'मधुर स्वप्न' और 'विस्मृत यात्री' सम्बन्धी तथ्य विदेशी साहित्य में मिलते हैं। किसी भी उपन्यास की मुख्य कथा अथवा प्रासंगिक कथा, इतिहास ग्रन्थों में, पूर्णतया विकसित रूप में विद्यमान नहीं है। राहुल जी ने कल्पना का उपयोग कथा-सूत्रों को शृंखलाबद्ध करने के अतिरिक्त अपने जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने के लिए किया है।

---

[1] जय यौधेय, प्राक्कथन, पृ० २
[2] जय यौधेय, प्राक्कथन, पृ० २
[3] मधुर स्वप्न, प्राक्कथन।
[4] विस्मृत यात्री, दो शब्द।
[5] विस्मृत यात्री, दो शब्द, पृ० १।

इतिहास से उन्होंने उन पात्रों को चुना है जो उनके विचारों के अनुकूल हैं। कल्पना का अवलम्बन करके अपने विचार उन पात्रों द्वारा व्यक्त करवाये हैं। उन पात्रों ने अपने जीवन में ऐसे विचारों के लिए भले ही इतना मोह न दिखाया हो पर ऐसी कल्पना करके राहुल जी ने उन पात्रों के मुख से अपने विचार व्यक्त कराये हैं। इस प्रकार अपने उद्देश्य के प्रचार के लिये राहुल जी ने अपने उपन्यासों की कथा-वस्तु तथा पात्रों को कल्पना का रंग दिया है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के चित्रण में राहुल जी ने कल्पना का उपयोग किया है। उस समय की अणु रूप में उपलब्ध सामग्री को वे कल्पना के आधार पर ही विशद रूप दे सकते थे। कल्पना का विशेष परिचय राहुल जी की कथाओं के समान सूत्रों से प्राप्त होता है। उनके प्रत्येक उपन्यास में किसी प्रेम प्रसंग की चर्चा अवश्य है। इस विषय में पहले उल्लेख किया जा चुका है। राहुल जी ने अपने उपन्यासों में कल्पना के आधार पर पात्रों की वीरता और साहस की घटनाओं का समावेश किया है।

राहुल जी वर्तमान को महत्व देते हैं, अतीत को नहीं पर इसे वर्तमान के लिए प्रेरणा का स्रोत अवश्य मानते हैं। साम्यवाद जैसे सिद्धान्तों को लोग प्रायः विदेशी कह कर उनसे घृणा करते हैं। ऐसे लोगों के लिए राहुल जी ने अतीत के उदाहरण प्रस्तुत किये। भारतीयों को उनकी प्राचीन संस्कृति से परिचित कराने के लिए उन्होंने प्राचीन इतिहास का आश्रय लिया। राहुल जी अतीत की रूढ़िवादिता के विरुद्ध हैं, अनुकरणीय आदर्शों के नहीं। उन्होंने प्राचीन आदर्शों का सामंजस्य स्थापित करने के लिए, ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। ऐतिहासिक तथ्यों को उन्होंने इतिहासानुकूल कल्पना के आधार पर अपने जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए प्रस्तुत किया है।

(ख) राहुल जी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण

उपन्यास का मुख्य विषय है—मानव और उसका चरित्र। इसीलिए चरित्र-चित्रण को उपन्यास का आधारभूत तत्व माना जाता है। चरित्र-चित्रण से भाव है चरित्र का प्रकाशन और चरित्र से भाव है विकासोन्मुख अन्तःकरण। अन्तःकरण के तत्व अर्थात् बुद्धि, अहंकार और मन परम्परागत संस्कारों के अनुसार अथवा वातावरण के प्रभावानुसार कम या अधिक सात्विक, राजस और तामस होकर उसका विकास करते हैं और अन्तःकरण का विकास चरित्र का निर्माण करता है।

चरित्र-चित्रण न तो कथा के पात्रों की व्यक्तिगत तथा न्यारी विशेषताओं अथवा उनके स्वभाव को प्रकाश में लाकर उन्हें एक दूसरे से भिन्न दिखाने की एक विधि है और न ही यह कोई ऐसी विधि है जिसके द्वारा पात्र पुस्तक के समतल पन्नों से उभर आएँ और पाठकों के सामने कुछ समय के लिए व्यक्तित्व धारण कर लें।

चरित्र-चित्रण से भाव है वह प्रक्रिया जिसके द्वारा पात्र के अन्त:करण में उत्पन्न विचारों तथा परिस्थितियों के फलस्वरूप प्रकट होने वाले विकारों का न्यूनाधिक सात्विक, राजस और तामस होने का पूरा-पूरा चित्रण अथवा प्रकाशन किया जाता है। चरित्र के समूचे धारा प्रवाह को दिखाना ही चरित्र-चित्रण है।

चित्रण-प्रणालियाँ

उपन्यास में चरित्र चित्रण की मुख्य प्रणालियाँ निम्नांकित हैं :—

१. बहिरंग चरित्र-चित्रण के लिए निम्नलिखित प्रणालियों का उपयोग किया जा सकता है—

(क) **पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्र-चित्रण**— वस्तु जगत् की भाँति उपन्यास जगत् के प्रत्येक पात्र का कोई न कोई नाम अवश्य होता है और यह नाम सार्थक होता है। उपन्यासकार अपने पात्रों का सृष्टा और साथ ही नाम रखने वाला पुरोहित होता है। इसलिए वह अपने पात्रों का चरित्र चित्रण उनके नाम के अनुसार किया करता है।

(ख) **परिचयात्मक टीकाटिप्पणी**—इस प्रणाली द्वारा उपन्यासकार पात्रों की आकृति, प्रकृति, वेशभूषा आदि का ही वर्णन करके नहीं रह जाता अपितु उनके चारित्रिक गुणावगुणों के सम्बन्ध में भी एक टिप्पणी जोड़ देता है। पर इस प्रकार की प्रणाली में ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो उपन्यासकार उस पात्र की अंगुली पकड़कर रंगमंच पर ले आया है और उसका औपचारिक परिचय करवा रहा है।

(ग) **स्थित्यंकन तथा क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण**—स्थिति विशेष के अनुसार ही पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया हुआ करती है। इसलिए पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया के साथ उस समय की, पात्रों की स्थिति विशेष का चित्रण कर दिया जाता है।

(घ) **अनुभाव-चित्रण**—अनुभावों के उदय होने के पश्चात् शरीर में जो विकार दृष्टिगोचर होते हैं उन्हें अनुभाव कहा जाता है। प्रतिक्रियात्मक स्थिति में पड़ जाने पर और उससे पूर्व पात्र के मुख तथा अन्य अंग-प्रत्यंगों में जो परिवर्तन होते हैं, उनको दिखाने के लिए उपन्यासकार पात्रों के अनुभावों का चित्रण किया करते हैं। इन अनुभावों से पात्रों के तत्कालीन मानसिक संघर्ष का ज्ञान हो जाता है।

२. **अन्तरंग (सब्जेक्टिव) चित्रण की प्रणालियाँ**—किसी व्यक्ति की विशेष स्थिति में क्रिया-प्रतिक्रिया को जान लेने तथा उसके व्यवहार को जान लेने पर भी उसके आन्तरिक भावों को समझना कठिन है। व्यक्ति के चरित्र का अधिक महत्वपूर्ण रूप वह होता है जो अभिव्यक्त होने से बचता रहता है और उसके व्यक्त व्यवहार को प्रेरित करता रहता है। चरित्र के इस अन्तरंग रूप की हिमनग के पानी में डूबे हुए भाग से तुलना की जाती है। इसको जानना बड़ा कठिन है।

किसी काम को करने या न करने की अनिश्चितता की दशा में व्यक्ति के चेतन और अचेतन मन में अन्तर्द्वंद्व चलता रहता है। पात्रों के चेतन मन के संघर्ष

को तो उपन्यासकार उनके अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण द्वारा व्यक्त कर सकता है। अचेतन मन के संघर्ष को जानने के लिए उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। वह प्राय: इन विधियों को अपनाया करता है—

(क) **मनोविश्लेषण प्रणाली**—दु:खद स्मृतियों तथा संघर्षों को जो उसकी अधिकांश कठिनाइयों का कारण बनते हैं, पात्र को अचेतन से निकालकर चेतन में ले आना और उनके निराकरण में उसकी सहायता करना मनो विश्लेषण का चरमोद्देश्य है। अचेतन के तल तक पहुँचने के लिए कई प्रकार की प्रणालियों का उपयोग किया जाता है जिनमें मुख्य हैं—मुक्त आसंग (फ्री एसोसिएशन), बाधकता विश्लेषण (ऐनेलिसिस आव रेजिस्टेन्स) और स्वप्न-विश्लेषण

(ख) **सम्मोह विश्लेषण (हिप्ना-ऐनेलिसिस)**—इस प्रणाली द्वारा सम्मोहक पात्र को सम्मोह-निद्रा की अवस्था मे ले जाता है और फिर धीरे-धीरे उससे प्रश्न करता हुआ उसके गत जीवन की घटनाओं और तज्जनित अनुभूतियों के बारे मे जानकारी प्राप्त कर लेता है जो उसकी मानसिक समस्याओं का मूल कारण रही हों।

(ग) **पूर्व वृत्तात्मक-प्रणाली (केस हिस्टरी मैथड)**—इस प्रणाली द्वारा पात्र की वर्तमान मानसिक अवस्था और उसके कारणों को समझने के लिए उसके पूर्ववृत्त की विगत अनुभूतियों को एकत्रित किया जाता है।

३. **नाटकीय (ड्रामैटिक) चित्रण**—अन्तरंग चित्रण में उपन्यासकार, स्वयं पात्रों के अन्तरंग का चित्रण करता है, पर नाटकीय चित्रण में पात्रों का चरित्र चित्रण उनके क्रियाकलाप द्वारा होता है। इस प्रकार के चित्रण के लिए निम्नांकित प्रणालियों का उपयोग किया जाता है:

(क) **घटनाओं द्वारा चरित्र-चित्रण**—उपन्यास में घटनाओं और चरित्र का अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध होता है। कभी चरित्र घटनाओं को उभारता है और कभी घटनाएँ उसके चरित्र को निखारती हैं। उपन्यास में घटनाएँ केवल कथानक को गति ही नहीं देतीं, अपितु वे पात्रों के चरित्र का उद्घाटन भी करती हैं। कई बार जिस मनोस्थिति का ज्ञान मनोविश्लेषण द्वारा स्पष्ट नहीं होता, उसका छोटी-छोटी घटनाओं से स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

(ख) **कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण**—पात्रों के कथोपकथन से यदि उनमें कृत्रिमता न हो तो उनकी चारित्रिक विशेषताएँ मुखरित हो उठती हैं।

(ग) **डायरी द्वारा चरित्र-चित्रण**—उपन्यासकार पात्र के चरित्र विकास की टूटी कड़ियों को जोड़ने के लिए पात्रों की डायरी का उपयोग कर सकता है। डायरी द्वारा उपन्यासकार पात्रों की ऐसी मानसिक समस्याओं का आभास करा देता है जो किसी और साधन द्वारा नहीं जानी जा सकतीं।

(घ) **पत्रात्मक शैली**—पात्रों के चरित्र के किसी विशेष पक्ष को उद्घाटित करने के लिए पत्रात्मक शैली का सहारा लिया जाता है। पात्रों के विषय चरित्र-

विकास की अनेक टूटी कड़ियों को जोड़ देते हैं। पत्रात्मक शैली पात्रों के चरित्रोद्-घाटन के साथ चरित्र विकास में भी सहायक होती है।[1]

राहुल जी के औपन्यासिक पात्रों का वर्गीकरण

राहुल जी के उपन्यासों के पात्रों को निम्नांकित वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(क) **पुरुषपात्र**—राहुल जी के उपन्यासों में पुरुष-पात्रों की संख्या अधिक है। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है :—

१ नायक-पात्र, २ आक्रमणकारी शासक पात्र, ३. मित्र पात्र।

(ख) **नारीपात्र**—राहुल जी के उपन्यासों में नारी-पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। उनके गुणों में भी विशेष असमानता नहीं है। इसलिए उनका एक सामान्य वर्ग बनाया गया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण

राहुल जी के उपन्यासों के नायक पात्रों के गुणों में समानता है। उनके नायक प्राय: क्रान्तिकारी और स्वाभिमानी हैं। स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं। दूरदर्शी तथ परिश्रमी हैं। समाज के लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर हैं। यहाँ प्रत्येक नायक के चरित्र-चित्रण का विश्लेपण प्रस्तुत किया जा रहा है।

देवराज

देवराज (जीने के लिये) स्वभाव से संघर्षशील, स्वाभिमानी और निर्भय है। उसकी संघर्षशील वृत्ति का परिचय उसके बाल्यकाल से मिलता है। पिता के मर जाने पर उसे आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वह सेना में भर्ती होकर, प्रथम विश्वयुद्ध में, अँग्रेजों की ओर से जर्मनों के विरुद्ध युद्ध करता है। स्वदेश लौटने पर, देश की स्वतन्त्रता के चल रहे आन्दोलनों में भाग लेता है। जमींदारों के विरुद्ध किसानों के संघर्ष में वह किसानों की ओर से भाग लेता है। इसी प्रसंग में जमींदारों द्वारा उसकी हत्या कर दी जाती है।

देवराज स्वस्थ और सच्चरित्र युवक है। वह अठारह वर्ष की आयु में चौबीस वर्ष का जवान प्रतीत होता है। लम्बा, गोरा शरीर, चौड़ी छाती, मोटी गर्दन और मांसल भुजाएँ। उसे शिकार खेलने और कुश्ती लड़ने का शौक है। वह नाच-गा कर शुष्क वातावरण को सरस बनाने की क्षमता रखता है। सभी से उसका व्यवहार स्नेह-पूर्ण है। संकट आने पर वह भावुकता से नहीं अपितु अपनी बुद्धि और धैर्य से काम लेता है। वह परिश्रमी है। आलस्य उसे छू तक नहीं गया है।

देवराज स्वाभिमानी है। उसे खुशामद करना स्वीकार नहीं है। स्वार्थपूर्ति के लिये भी वह दीनताप्रदर्शन नहीं कर सकता। वह सेना में अंग्रेज अफसरों के सामने अन्य भारतीयों की तरह आवश्यकता से अधिक नम्रता प्रदर्शित नहीं करता

---

[1] डा० रणवीर रांग्रा की पुस्तक 'हिन्दी उपन्याम में चरित्र-चित्रण का विकास' पृ० ६५ से ८६ के आधार पर।

है। देवराज के स्वाभिमान को लक्ष्य कर कर्नल ज्याफरे कहता है—"हिन्दुस्तानी लोगों की चापलूसी और खुशामद सुनते सुनते हम पर उसका बहुत बुरा असर पड़ता है। ………तुम्हारे ऐसे भारतीय यदि हों, तो कम से कम इस गिरावट से तो हम लोग बच सकते हैं।"[१]

निर्भयता देवराज के चरित्र का विशिष्ट गुण है, वह मृत्यु से लोहा लेने को सदैव तैयार है। युद्ध में अपने साथियों को उत्साहित करता हुआ कहता है—"मौत हमारे लिये कोई चीज नहीं। राजपूत सिर से कफन बांधकर लड़ाई के मैदान में उतरने के आदी हैं। हमको बार-बार ऐसी गौरवपूर्ण मौत मरने का मौका नहीं मिलेगा।"[२] शत्रुओं से घिर जाने पर वह उनका बड़ी वीरता से सामना करता है। घायल हो जाने पर उस समय तक लड़ता रहता है जब तक कि वह अचेत नहीं हो जाता। उसकी वीरता की ख्याति दूर दूर तक फैलती है। बाईस वर्ष की अवस्था में सेना का सर्वोच्च पदक 'विक्टोरिया रैड क्रास' प्राप्त करने वाला वह सर्वप्रथम भारतीय सैनिक है। देश की स्वतन्त्रता के लिये तथा किसानों के अधिकारों के लिये, वह अनेक कठिनाइयों को निर्भयतापूर्वक सहन करता है।

देवराज देश की स्वतन्त्रता का प्रबल पक्षपाती है। इस सम्बन्ध में कहता है—"मैं देश की स्वतन्त्रता का उग्र पक्षपाती हूँ। मेरे कण-कण में परतन्त्रता के प्रति अपार घृणा है। इस परतन्त्रता से क्षण-क्षण मुझे अपना दम घुटता सा मालूम पड़ता है।"[३] वह अपने को देश पर न्यौछावर करने के लिये तत्पर है—"देश की दासता और अपमान ने मेरे लिये अपने जीवन को कौड़ी मूल्य का कर दिया है, वह भार है।………और जिस देश ने इस शरीर को जन्म दिया उसकी करोड़-करोड़ सन्तानों के लिये अर्पण करने से बढ़कर इस जीवन का दूसरा उपयोग क्या हो सकता है?………"[४]

देवराज रूढ़िवादिता के विरुद्ध है। प्रारम्भ से वह खान-पान तथा जीवन-यापन से सम्बन्धित रूढ़ नियमों के पालन के प्रति उदासीन है। वह और यूरोपियन स्त्री 'जैनी' पति-पत्नी के रूप में रहते हैं पर विधिवत् विवाह नहीं करते। वैवाहिक रूढ़ि पर प्रहार करते हुए वह कहता है—"हम सच्चे अर्थों में विवाहित हैं। हां, समाज की रूढ़ि को मानने के लिए तैयार नहीं हैं।"[५]

देवराज, उपन्यास का नायक है। वह व्यक्तित्व-प्रधान पात्र है। उसका जीवन चरित्र स्थिर है। संघर्षशीलता, स्वाभिमानिता और निर्भयता आदि जिन गुणों के साथ वह उपन्यास में पदार्पण करता है, वे गुण उपन्यास के अन्त तक उसमें बने रहते

---

१ जीने के लिए, पृ० ८१
२ वही, पृ० ११९-१२०
३ वही, पृ० १४६-१४७
४ वही, पृ० १४७
५ वही पृ० २०६

हैं। उसका चरित्र-चित्रण बहिर्मुखी अधिक है। लेखक ने उसके अन्तर का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया है। चरित्र-चित्रण के लिए वर्णनात्मक तथा नाटकीय प्रणाली को अपनाया गया है। वर्णनात्मक में चरित्र सम्बन्धी परिचयात्मक टीका टिप्पणी को तथा नाटकीय में घटनाओं और कथोपकथन की प्रणाली को माध्यम बनाया है। बत्तीसवें, चौतीसवें, सैंतीसवें तथा उन्तालीसवें परिच्छेद में पत्रात्मक शैली का भी सहारा लिया गया है।[१]

स्वभाव की संघर्षशीलता, स्वाभिमानिता, निर्भयता, आदि चारित्रिक गुण जो इस उपन्यास के लेखक में हैं, वे इस उपन्यास के नायक में विद्यमान हैं। अतः लेखक और नायक के चारित्रिक गुणों में विशेष तादात्म्य दृष्टव्य है। गुणों मात्र का कथन होने के कारण नायक का चरित्र-चित्रण एकांगी बन गया है। मानव-सुलभ कमियों की चर्चा नहीं हो पाई है।

सिंह

सिंह (सिंह सेनापति) उपन्यास का नायक है। वह अठारह वर्ष की आयु में उपन्यास में पदार्पण करता है। शरीर से स्वस्थ, बलिष्ठ और आकर्षक है। उसके केश पिंगल और नेत्र नीलवर्ण हैं। पढ़ने में शीघ्रग्राही तथा चतुर है। वह दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा युद्ध-कौशल में निपुण है। शिकार खेलने में रुचि रखता है।

सिंह की इच्छा-शक्ति दृढ़ है। उसका यह गुण कर्तव्य परायणता तथा संघर्षशीलता के रूप में प्रकट हुआ है। तक्षशिला तथा वैशाली की स्वतंत्रता की रक्षा करना वह कर्त्तव्य समझता है। इसके लिए वह अपनी जान जोखिम में डालता है। मातृभूमि वैशाली की उन्नति के लिए वह सदैव प्रयत्नशील है। वह कर्मयोगी है। ठोस कार्य करने में विश्वास रखता है। उसके अनुसार कार्य की सफलता ही उस का पारितोषिक है।[२] वह बिना अहंकार के कार्य करता है।

सिंह साहसी है। साहस की एक घटना का उल्लेख करते हुए वह कहता है "अकेले मैंने आठ डाकुओं के रक्त से खड्ग को स्नान कराया।"[३] सिंह का साहस विवेकपूर्ण है। मानवता के प्रति प्रेम तथा दयामय स्वभाव, उसकी साहसवृत्ति के मूल प्रेरक हैं। वह दासप्रथा के विरुद्ध है। उसे सेवकों तथा श्रमिकों के हित का सदैव ध्यान है। शत्रु बन्दियों तथा घायल-शत्रुओं के प्रति वह दयालु है। गौतम बुद्ध इस प्रसंग में कहते हैं—"शत्रु के घायलों के लिए तुमने जो उदारता-दया दिखलाई वह बहुत प्रशंसनीय काम था। अपनी दया के क्षेत्र को बढ़ाना चाहिये, और जब उस दया के क्षेत्र में शत्रु भी शामिल कर लिया जाय, तो मैं इसे मानव में देवभाव आया कहता हूँ।"[४]

---

[१] जीने के लिए बत्तीसवाँ अध्याय, पृष्ठ २४३-२४५; चौतीसवाँ अध्याय, पृ० २५४-२५६; सैंतीसवाँ अध्याय, पृ० २९३-२९४; उन्तालीसवाँ अध्याय, पृ० ३११-३१५

[२] सिंह सेनापति, पृ० २३९

[३] वही

[४] वही, पृ० २७

सिंह पराक्रमी है। तक्षशिला और वैशाली के गणराज्यों की रक्षाहेतु लड़ाई में वह असाधारण वीरता का परिचय देता है। तक्षशिला के गांधार, उसके इस गुण पर मुग्ध हैं। इस प्रसंग में वहाँ का गणपति कहता है—"आपको आयुष्मान् सिंह का पराक्रम अविदित नहीं है। तक्षशिला के शत्रु पार्श्वों को परास्त करना इन्हीं का काम है। इन्हीं के कौशल से शत्रुवाहिनीपति जीवित बन्दी बनाया गया। आज सिंह का यशोगान, उसकी वीरगाथा सारे पूर्व-पश्चिम गांधार में गाई जाती है। ऐसे हितकारी अपने वीर सेनानी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य है।"[1] यह सम्मान वह अपनी वीरता और रक्तदान से अर्जित करता है। इसी प्रसंग में सिंह का मित्र कपिल कहता है—"सिंह जैसा सेनासंचालक पाकर कोई भी देश अभिमान कर सकता है।"[2] पराक्रम के फलस्वरूप इतनी छोटी आयु में सिंह वैशाली का सेनापति बनता है।

सिंह गंभीर विचारक है। वह किसी मत के अन्धानुकरण में विश्वास नहीं रखता। कोरी प्रेरणा के स्थान पर तर्क-वितर्क को महत्व देता है। जातिपाँति के सम्बन्ध में रूढ़िवादिता का विरोधी है। इस प्रसंग में वह कहता है—"यद्यपि दूसरों के कहने के कारण हम भी अपने को क्षत्रिय कहते हैं, किन्तु शस्त्रधारी शासक के अर्थ में, न कि ब्राह्मण से नीचे के एक वर्ण के अर्थ में। हम वस्तुतः ब्राह्मण ऋषियों की बनाई वर्ण व्यवस्था में अब तक शामिल ही नहीं हुए हैं।"[3]

सिंह का चरित्र स्थिर है। दृढ़ इच्छा-शक्ति, साहस, पराक्रम आदि जिन गुणों के साथ वह उपन्यास में पदार्पण करता है, वे उसमें उपन्यास के अन्त तक बने रहते हैं। उपन्यास की आत्मकथात्मक शैली के कारण चरित्रचित्रण के लिए अधिकांशतः नाटकीय प्रणाली को अपनाया गया है। नाटकीय प्रणाली के अन्तर्गत कथोपकथन और घटनाओं को माध्यम बनाया गया है। चरित्रचित्रण बहिर्मुखी है। नायक के अन्तर का विश्लेषण नहीं हुआ है। चरित्र-चित्रण एकांगी है। उपन्यासकार का ध्यान नायक के केवल गुणों की ओर गया है, मानवसुलभ अवगुणों की ओर नहीं।

जय

जय (जय यौधेय) क्रान्तिकारी है, वर्तमान का अनुचर मात्र नहीं। वह परिस्थितियों का विवेकशील मूल्यांकन करता है। यह जिस प्रथा अथवा कार्यविधि को मानवता के विकास में बाधक समझता है, उसे स्वीकार नहीं करता। वह समाज का पुनर्निर्माण चाहता है। मनुष्य की रूढ़िवादिता को लक्ष्य कर कहता है—"हर पीढ़ी में हजारों समर्थ पुरुष कबूतर की नीति का पालन करते आये हैं। यदि उन्होंने उसकी जगह परिस्थितियों को बदलने की कोशिश की होती तो दुनिया जरूर बेहतर बनी

---

[1] सिंह सेनापति, पृ० ८०
[2] वही, पृ० १३०
[3] वही, पृ० १९८

होती।"[1] उसे काल्पनिक आदर्शों में विश्वास नहीं। वह धार्मिक विश्वासों, आत्मवाद तथा परलोकवाद का कड़ा आलोचक है। वह भौतिकवादी है। जो दीखता और व्यवहार में आता है उसी को विचार का आधार बनाना उचित समझता है। मनुष्य का यही जन्म उसकी दृष्टि में महत्वपूर्ण है। उसकी उपेक्षा कर अन्य लोक की कल्पना उसे असह्य है।

जय साम्राज्यवाद को मानवता का शत्रु समझता है। उसके मतानुसार संसार की सभी समस्याओं का समाधान साम्यवाद में है। संसार को समस्त भागों से समृद्ध करने के लिए सभी को प्रयत्न करना चाहिए, आर्थिक विषमता नष्ट होनी चाहिए। सबके अधिकार समान होने चाहिए। जय 'बहुजन हिताय' कार्य करने के पक्ष में है। वह अन्याय का विरोधी है।

जय शरीर से स्वस्थ, बलिष्ठ और आकर्षक है। साधारण भिक्षु वेश में भी सुन्दर प्रतीत होता है। बाल्यकाल से सावधान तथा मेधावी है। उसका कण्ठ मधुर है। उसकी गान, नृत्य और वीणा-वादन में रुचि है। बाल्यकाल से उसे इतिहास सुनना रुचिकर है। इस रुचि के कारण वह ग्राह्य अग्राह्य का ज्ञान प्राप्त करता है और वर्तमान का मूल्यांकन करता है। वह स्वच्छन्द यात्रा का प्रेमी है, विशेषकर हिमालय की यात्रा का।

जय कुशाग्रबुद्धि और सफल राजनीतिज्ञ है। चन्द्रगुप्त के मनसूबों को भाँप कर उसके सिंहासनारूढ़ होने पर जय भिक्षु का जीवन छोड़ सक्रिय राजनीति में भाग लेता है। उसमें चन्द्रगुप्त की कुटिल नीति का सामना करने का साहस है। चन्द्रगुप्त दिखावे में जय के प्रति स्नेह दिखाता है पर गुप्त रूप से उसे नीचा दिखाने के लिए यत्नशील रहता है। जय चन्द्रगुप्त की सभी चालों को विफल कर देता है, उसके सभी प्रलोभनों को ठुकरा देता है।

जय वीर है। अपनी वीरता से यौधेय नरनारियों में वीरता का संचार करता है। वह यौधेय गण का महासेनापति है। वह निःस्वार्थ सेवक है। त्याग की भावना से उसका मन ओतप्रोत है। वह मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है।

जय उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र स्थिर है। वह क्रान्तिकारी, साम्यवादी, निःस्वार्थ सेवक तथा वीर है। वह आत्मसंयमी है। उसके कार्य उसके गुणों के अनुरूप हैं। ये गुण उसके जीवन में आदि से अन्त तक बने रहते हैं। लेखक ने नायक के केवल गुणों का चित्रण किया है। इसलिए चरित्र-चित्रण एकांगी बन गया है। चरित्र-चित्रण के लिए लेखक ने नाटकीय प्रणाली के अन्तर्गत घटनाओं तथा कथोपकथन को माध्यम बनाया है। नायक का केवल बाह्य चित्रण हुआ है। उसके अन्तर का चित्रण नहीं हो पाया है। ऐसे स्थलों पर जहाँ नायक का मनोविश्लेषण

---

[1] जय यौधेय, पृ० २३५

संभव था लेखक ने उस ओर ध्यान नहीं दिया है। हिमालय की यात्रा में उत्सव संकेत के समय जय की सेवा में, देश प्रथा के अनुसार एक षोडशी को भेंट किया जाता है। उस समय जय के मन में कई प्रकार के विचार उठते हैं। लेखक उसके अन्तर का चित्रण सूक्ष्मता से कर सकता था, पर उसने वहाँ भी केवल बाह्य चित्रण की ओर ध्यान रखा है। उदाहरण निमित्त कुछ शब्द उद्धृत किये जाते हैं— "कुछ देर बाद पैरों की आहट सुनाई दी और षोडशी मेरे कोष्टक में दाखिल हुई। मेरे लिए अब कुछ तय करना था—मेरे सामने कठिनाइयों के पहाड़ खड़े थे, अपने भावों को समझाने के लिए कोई ढंग मालूम नहीं होता था······न जाने कितनी देर इसी उधेड़बुन में रहा फिर निद्रा ने मुझे आ घेरा।"[1]

शाह कवात्

शाह कवात् (मधुर स्वप्न) सासानी वंश का उन्नीसवाँ सम्राट् है। वह सन् ४८८ ई० में ईरान के सिंहासन पर बैठा। उपन्यास में वह चौबीस वर्ष की आयु में पदार्पण करता है। उसके सिर के बाल घुंघराले, भूरे और लम्बे हैं। दाढ़ी अरुणवर्ण एवं चमकदार है। वह नृत्य-गान तथा मदिरापान का प्रेमी है।

शाह कवात्, उपन्यास के आरम्भ में, करुणा की भावना से ओत-प्रोत है। उस समय के अन्य सम्राटों की निष्ठुर मनोवृत्ति को देखते हुये, शाह कवात् की करुणा को 'अपवाद' कहा जा सकता है। उसका मन दुःखित लोगों का दुःख सुन कर दुःखित हो जाता है। वह कहता है—"यह नहीं हो सकता कि लोग इस तरह क्रूरता के साथ मृत्यु के मुख में जा रहे हों और मैं हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहूँ।"[2] वह परम्परा का उल्लंघन कर वेश बदल कर, भुखमरी से पीड़ित लोगों की दशा का निरीक्षण करने जाता है। उनके लिए अन्नागार खुलवा देता है।

शाह कवात् के स्वभाव का अन्य बड़ा गुण है उसकी त्याग की भावना। महान् उद्देश्य के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने को सदैव तत्पर है। दरबारी तथा अमीर लोग उसकी गरीबों के प्रति उदारता की नीति का विरोध करते हैं पर वह अपने संकल्प पर दृढ है, कहता है—"मैं अपने सकल्प पर दृढ़ रहूँगा, जनहित के लिए जो भी सहना पड़ेगा, उसके लिए मैं तैयार रहूँगा।"[3] उसे पदच्युत होना पड़ता है, कारावास का बन्दी बनना पड़ता है, पर वह सेवा की भावना पर दृढ़ रहता है।

शाह कवात् स्वभाव से अस्थिर है। अस्थिरता का मुख्य कारण है उसकी अति भावुकता। वह अपनी सहोदरा एवं पत्नी सम्बिक को प्राणों से प्यारी समझता है, पर स्वदेश से निर्वासित होने पर सामन्त पुत्री नवानदुख्त के प्रेमपाश में फँस जाता है। पुन: सिंहासनारूढ़ होने पर नवानदुख्त के साथ रहने लगता है और अपनी पत्नी सम्बिक को ठुकरा देता है। शाह कवात् की अस्थिरता का अन्य कारण है

---

[1] जय यौधेय, पृ० ८७
[2] मधुर स्वप्न, पृ० १२
[3] वही, पृ० ३१

उसकी व्यावहारिक अनुभवशून्यता। अन्दर्जगर के प्रभाव में आने से पूर्व, शाह कवात् अमीरों का पक्ष लेता है। इस कारण गरीब जनता उससे अप्रसन्न है। पीछे गरीबों का पक्ष लेकर वह अमीरों को अपना शत्रु बना लेता है। वह प्रत्येक कार्य में उतावलेपन से काम लेता है। बनते काम में विघ्न डाल लेता है। उसके उतावलेपन के कारण, सैनिक सहायता के प्रश्न पर उसका बहनोई शाह तोरमान उससे चिढ़ तक जाता है। उसकी स्वार्थ भावना भी उसे स्थिर चित्त नहीं होने देती। स्वार्थ के सम्मुख वह बड़े से बड़े सिद्धान्तों को ठुकरा देता है। उत्तराधिकारी के प्रश्न पर अपने बड़े पुत्र काबूस के अधिकार की चिन्ता न कर अपनी प्रेमिका नवानदुख्त से उत्पन्न पुत्र खुसरो को उत्तराधिकारी बनाता है। स्वार्थ के मार्ग में बाधक मज्दकियों को, जिनकी सहायता से वह पुनः सिंहासन पर बैठता है, निष्ठुरता से मरवा देता है। उसको कारावास से मुक्त करवाने वाली पत्नी सम्बिक् की ओर से वह मुँह फेर लेता है। साम्यवाद की भावना के लिए वह पदच्युत होता है और आगे चलकर, मानसिक अस्थिरता के कारण, साम्यवाद के प्रभाव को जनता से समूल नष्ट करना चाहता है।

शाह कवात् उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र अस्थिर और विकासशील है। आरम्भ में वह करुणा और त्याग की भावना रखता है पर आगे चलकर वह अस्थिर, स्वार्थी तथा निष्ठुर होने का परिचय देता है। उपन्यास के आत्मकथात्मक शैली में होने के कारण नायक के अन्तर का विश्लेषण संभव था पर लेखक ने अपना ध्यान नायक के बाह्य चरित्र-चित्रण तक सीमित रखा है। आरम्भ में नायक लेखक के उद्देश्यों को लेकर चलता है, किन्तु उन उद्देश्यों पर पूरा न उतरने के कारण लेखक की सहानुभूति खो बैठता है।

नरेन्द्रयश

नरेन्द्रयश (विस्मृत यात्री) स्वभावतः यात्रा प्रेमी है। यात्रा उसके जीवन का लक्ष्य बन गई है। बौद्धमत का अनुयायी होने के कारण उसकी बौद्ध-तीर्थ-स्थानों की यात्रा में विशेष रुचि है। भारत के बौद्ध-तीर्थों की यात्रा कर वह सिंहल जाता है। सिंघल से लौटकर वह महाचीन की यात्रा करता है। असाधारण से असाधारण यात्राओं के लिए वह सदैव तत्पर है।

नरेन्द्रयश शरीर से स्वस्थ, बलिष्ठ और आकर्षक है। उसका कण्ठ मधुर है। उसकी गाने-नाचने में रुचि है। वह परिश्रमी है। आलस्य उसे छू तक नहीं गया है। दूसरों की सहायता के लिये वह तत्पर रहता है। उससे सभी स्नेह रखते हैं।

नरेन्द्रयश स्वभाव से क्रान्तिकारी है। वह परिस्थितियों पर गम्भीर चिन्तन करता है। अविवेकपूर्ण परम्पराओं तथा रूढ़ियों का कड़ा आलोचक है। वह साम्यवादी है। अमीरों तथा गरीबों के बीच की विषमता उसे असह्य है। उसका मन इस बात से विकल रहता है कि गरीबों के श्रम का उपभोग अमीर लोग करते हैं। वह चाहता है कि आर्थिक और सामाजिक विषमता दूर हो। इसके अधिकार समान हों। यह तभी होगा जब परिस्थितियाँ बदलेंगी। वह कहता है—"एक सम्राट मरेगा

दूसरा उसकी जगह आ जायेगा, एक सामन्त या सार्थवाह खतम हो जायेगा, तो उसकी जगह सूनी नहीं रहेगी। जब तक ऐसी परिस्थिति न पैदा कर दी जाये, जिससे ऐसा होना सम्भव ही न हो, तब तक वैयक्तिक ईर्ष्या या हिंसा से भी काम नहीं चल सकता। इसके लिये बहुजन को उद्‌बुद्ध करना होगा।"[1] वह जाति-पाँति तथा जन्त्र-मन्त्र के विरुद्ध है।

वह सहृदय है। दूसरों के दुःख उसे असह्य हैं। वह कहता है—"एक बात तो बिल्कुल निश्चित थी, कि मैं दूसरों के दुःख और पीड़ा को देख नहीं सकता था, उस वक्त अपनी बेबसी देखकर मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता था।"[2] उसमें निःस्वार्थ सेवाभाव है। मातृभूमि से ही नहीं उसे मानव-मात्र से प्रेम है। उसका समय सार्वजनिक हित के कार्यों मे व्यतीत होता है। वह रोगियों, भूखों और अनाथों की तन-मन से सेवा करता है। उसने बहुत से कुएँ खुदवाये, चिकित्सालय और विहार बनवाये। वह मृत्युपर्यन्त सेवा कार्य करता रहा।

नरेन्द्रयश उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र स्थिर है। निःस्वार्थ सेवा, त्याग, मानवमात्र के प्रति प्रेम आदि भावनाएँ उसके जीवन में आदि से अन्त तक बनी रहती हैं। लेखक ने अपना ध्यान नायक के केवल बाह्य चित्रण की ओर रखा है, इसलिए उसके अन्तर का विश्लेषण नहीं हो पाया है। नायक के चरित्र का चित्रण एकांगी है। लेखक ने उसके गुणों की ओर ध्यान दिया है, उसके मानवसुलभ अवगुणों की ओर नहीं।

दिवोदास

उपन्यास का नायक दिवोदास है। शरीर से स्वस्थ, बलिष्ठ और आकर्षक है। स्वस्थ होने के कारण पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में वह चौबीस-पच्चीस वर्ष का प्रतीत होता है। दूरदर्शी, बुद्धिमान तथा युद्ध-कौशल में निपुण है, अश्वारोहण में विशेष रुचि रखता है।

दिवोदास निर्भीक और साहसी है। शैशवावस्था से वह भूत-पिशाचों का भय नहीं मानता है। बारह वर्ष की आयु में विख्यात अश्वारोहियों के साथ 'घुड़-दौड़' में भाग लेकर अपने साहस का परिचय देता है। इस दौड़ में वह प्रथम रहता है। दुर्दान्त शत्रुओं का प्रतिरोध साहस और निर्भीकता से करता है।

दिवोदास धैर्यवान है। अपने पिता से उसे अतीव स्नेह है। पिता की मृत्यु पर उसे अत्यन्त दुःख होता है पर धैर्य से काम लेता है। सिंहासनारूढ़ होने पर उसे राजाओं के ईर्ष्या-द्वेष और शत्रुओं के वैमनस्य का कटु अनुभव होता है। पर वह धैर्य नहीं छोड़ता। कठिन परिस्थितियों में वह अपनी बुद्धि और पौरुष का परिचय देता है।

---

[1] विस्मृत यात्री, पृ० ३७५
[2] वहीं, पृ० ३८५

दिवोदास पराक्रमी और संघर्षशील है। अपने इन गुणों का परिचय वह अपने शत्रुओं, पणियों और किरातों का दमन करने में देता है। पणियों का विशाल राज्य पश्चिमी सिन्ध प्रदेश की मरुभूमि में फैला हुआ है। उनके दुर्ग अभेद्य हैं। किरातों के दुर्ग उत्तरी पर्वतीय भागों में बने हुये हैं, जहाँ पहुँचना दुष्कर है। पराक्रमी दिवोदास पहले पणियों का अन्त करता है और तत्पश्चात किरातों का। अपने शत्रुओं से निरन्तर चालीस वर्ष संघर्ष करता रहता है और अन्ततः विजयी होता है।

दिवोदास अपने दायित्वों के प्रति पूर्णतया जागरूक है पिता के दिवंगत होने पर बीस वर्ष की आयु में वह सिंहासनारूढ़ होता है। अपने शासन को सुव्यवस्थित करता है। वह अपने को स्वामी नहीं अपितु लोक रंजनकारक सेवक कहता है।[१] उसे अपने से अधिक अपनी प्रजा के सुख की चिन्ता है। जब तक प्रजा सुखी न हो वह स्वयं सुख का अनुभव कैसे कर सकता है। इसी उद्देश्य के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। वह अतिथिसेवक है। अपने राज्य में यात्रियों के लिए वह अतिथि-भवन बनवाता है जिनमें अतिथियों और यात्रियों की सुख-सुविधा के निमित्त सुप्रबन्ध किया जाता है। अपने इस गुण के कारण वह अपने राज्य में महान् अतिथि-सेवक के नाम से प्रसिद्ध होता है।

दिवोदास सरल जीवन का पक्षपाती है। उसे वैभवशाली और आडम्बरपूर्ण जीवन से घृणा है। बन्धु प्रेमी है। सभी के साथ उसका व्यवहार मित्रतापूर्ण है। विनम्रता में वह अपने पिता वध्यश्व से बढ़ गया है। उसके प्रति ईर्ष्या द्वेष रखने वाले मित्र राजाओं तथा बन्धु-बान्धवों के साथ भी विनम्रता का व्यवहार करता है। अपने इस गुण से वह अन्यमनस्क रहने वाले बान्धवों के मनो-मालिन्य को धो डालता है और उन्हें वश में कर लेता है। अपने बड़ों का सत्कार करने वाला है। अपने गुरु भारद्वाज के प्रत्येक वचन को शिरोधार्य समझता है।

आक्रमणकारी शासक पात्र

राहुल जी साम्यवादी हैं। साम्यवाद तथा साम्राज्यवाद का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अपने उपन्यासों में नायकों को साम्यवादी विचारधारा तथा आक्रमणकारी शासक पात्रों को साम्राज्यवादी[२] विचारधारा का प्रतीक बनाया है।

---

[१] दिवोदास, पृ० १२६

[२] (क) साम्राज्यवाद (इम्पीरियलिज्म) सैनिक विजय, राजनीतिक छलबल अथवा आर्थिक आधिपत्य द्वारा साम्राज्य स्थापित करने की प्रवृत्ति या नीति। वृहत् हिन्दी कोष वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड, पृ० १७१८

(ख) साम्यवाद की भाँति साम्राज्यवाद की अनेक परिभाषाएँ की गई हैं। इस की पुरानी परिभाषाओं में उसके राजनीतिक पक्ष पर बल दिया गया है। बाद की परिभाषाओं में इसके आर्थिक और सामाजिक पक्ष पर बल दिया गया है। संक्षेपतः साम्राज्यवाद में आता है एक जाति, संस्कृति अथवा देश का अन्य जाति, संस्कृति थवाअ देश पर आर्थिक व राजनीतिक उद्देश्यों की दृष्टि से प्रभुत्व—दी एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकना, खण्ड १४, संस्करण १९६१।

राहुल जी के उपन्यासों के आक्रमणकारी शासक पात्र कल्पित नहीं हैं। इतिहास में वे महापुरुषों के रूप में विख्यात हैं। वहाँ वे पराक्रमी, साहसी, स्वाभिमानी तथा महान् विजेता हैं, पर अपने उपन्यासों में राहुल जी ने उन्हें आक्रमणकारी नृशंस शासकों के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्हें सम्राटों की साम्राज्यवादी लिप्सा असह्य है। उनकी दृष्टि में उक्त साम्राट स्वार्थी, निर्मम, कामुक तथा अविवेकशील हैं। मानवता और गणराज्य व्यवस्था के चिर शत्रु हैं। साम्यवाद की साम्राज्यवाद पर उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने नायकों को सत् के रूप में तथा आक्रमणकारी शासक पात्रों को असत् के रूप में चित्रित किया है।

मगधराज बिम्बसार 'सिंह सेनापति' उपन्यास में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है। पराक्रमी और साहसी है। अविवेकशील होने के कारण दूसरों के संकेत पर कार्य करता है। अपने पुत्र अजातशत्रु के कहने में आकर लिच्छवियों से टक्कर लेता है और परास्त होता है।

बिम्बसार निरंकुश तथा निष्ठुर शासक है। उसके राज्य में श्रमिकों तथा दासों की दुर्दशा है। वह स्वार्थी है। स्वार्थ के लिए अन्याय करने में संकोच नहीं करता है। उसमें व्यावहारिक कुशलता का अभाव है। वह यश का भूखा है। अपने को बौद्धमत का अनुयायी घोषित कर और महात्मा बुद्ध को अपना राजोद्यान देकर प्रजा के मन को जीतना चाहता है किन्तु असफल रहता है क्योंकि जनता उसकी वास्तविकताओं से परिचित है।

अजातशत्रु (सिंह सेनापति) मगधराज बिम्बसार का पुत्र है। पराक्रमी और साहसी है पर अदूरदर्शी तथा अनुभवशून्य है। वह हठी है। लिच्छवियों से हारने पर भी वह उनसे सन्धि करने के पक्ष में नहीं है। वह सम्राट बनने के स्वप्न देख रहा है

समुद्रगुप्त (जय यौधेय) गुप्त वंश का सम्राट् है। वह कामुक तथा रसिक है, संगीत, सुरा तथा सुन्दरी में आसक्त है। साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का प्रतीक है। वह समीपवर्ती राज्यों को समाप्त कर यौधेयों पर चढ़ाई करता है, पर सफलता की आशा न देख उनसे सन्धि कर लेता है।

वीर और साहसी होने के साथ समुद्रगुप्त उदार है। जब उसे ज्ञात होता है कि उसके सैनिकों ने युद्ध में यौधेय बच्चों और बूढ़ों पर हाथ उठाया तथा फसलों को जलाया तब उसे दुःख होता है। इस अत्याचार के लिए वह यौधेयों से क्षमा माँगता है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (जय यौधेय) सम्राट् समुद्रगुप्त का पुत्र है। वह अपने बड़े भाई रामगुप्त का बध करके, विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर गुप्त वंश का सम्राट् बनता है। साम्राज्यवादी प्रवृत्ति चन्द्रगुप्त में अपनी चरमसीमा पर पहुँची हुई है। यौधेयों को परास्त करने पर वह लाट, अवन्ती तथा सौराष्ट्र पर अपना

अधिकार करता है। आक्रमणों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण शासन को सुव्यवस्थित करने की ओर उसका ध्यान नहीं है।

चन्द्रगुप्त स्वार्थी और निष्ठुर है। स्वार्थ के लिए वह बड़े से बड़ा अन्याय कर सकता है। सिंहासनारूढ़ होने के लिए अपने बड़े भाई का बध करता है और उसकी पत्नी को अपनी गृहिणी बनाता है। वह यश का भूखा है। जनता में अपने यश प्रसार के लिए वह अपनी कल्पित कथायें फैलाता है। अपने को असाधारण व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए मन्दिरों में अपनी मूर्तियां स्थापित करवाता है।

चन्द्रगुप्त वीर, साहसी और दूरदर्शी है। सुरा-सुन्दरी के प्रति आसक्ति रखने पर भी वह भविष्य के प्रति जागरूक है। वह सफल राजनीतिज्ञ है। जय उसके सम्बन्ध में कहता है—"चन्द्रगुप्त को राज्य सँभाले अभी चार वर्ष हुए थे, उसने यह साबित कर दिया कि उसमें जहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य का युद्ध-कौशल है वहाँ कूटनीति में वह कौटिल्य का कान काटता है। बिहार हो या देवालय, पाठशाला हो या वेश्यालय, कोई ऐसी जगह नहीं थी जहाँ चन्द्रगुप्त के चर मौजूद न हों।"[1] वह अपने सैनिक बल को तभी प्रयुक्त करता था जब कोई दूसरा उपाय नही रह जाता था। अपनी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप वह विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

शम्बर सप्तसिन्धु (पंजाब) के उत्तरी पर्वतीय भागों में स्थित एक सौ किरात-पुरियों का प्रधान राजा है। वह आर्यों का प्रतिद्वन्द्वी है। वीर और पराक्रमी है। इस दुर्दान्त शत्रु को नष्ट करने के लिए राजा दिवोदास को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। शम्बर के सहस्रों वीर सैनिक और सेनापति युद्ध में मारे जाते हैं, पर उसका वज्र-हृदय निःशंक भयरहित है। वह मृत्यु का स्वागत करने को तत्पर है पर पराजय का जीवन उसे असह्य है। मृत्यु को सन्निकट देखने पर भी वह दिवोदास से क्षमा माँगने को उद्यत नहीं है। उसे अन्त तक अपने बाहुबल पर विश्वास है पर दिवोदास के घातक प्रहार के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। अन्त में दिवोदास भी शम्बर के पराक्रम की प्रशंसा करता है।[2]

मित्र-पात्र

राहुल-कृत उपन्यासों में कुछ ऐसे पात्र हैं जो नायक पद प्राप्त नही कर सके हैं पर अपने गुणों के कारण वे नायकों से विशेष सादृश्य रखते हैं। वे नायकों के सुख-दुःख के सहचर हैं। उन्हें नायकों के मित्र-पात्र नाम से अभिहित करना उपयुक्त होगा।

मित्र-पात्रों के गुण परस्पर समान हैं। मित्र-पात्र, सभी क्रान्तिकारी हैं। वे सामाजिक रूढ़िवादिता के कट्टर विरोधी हैं। स्वतन्त्रता तथा गणतन्त्र के प्रेमी हैं। उनकी विद्या तथा यात्रा में रुचि है। वे परिश्रमी तथा आलस्यरहित हैं।

---

[1] जय यौधेय, पृ० २३८
[2] दिवोदास, पृ० १४६

मित्र पात्रों का नायकों से घनिष्ठ प्रेम है। वे अपने सुख-दुःख की अपेक्षा नायकों के सुख-दुःख की अधिक चिन्ता रखते हैं। युद्ध में या किसी अन्य कठिनाई के समय, अपनी जान जोखिम में डालकर वे नायकों की सहायता करते हैं। घटनाओं में नायकों के सहचर होने के कारण वे कथा के विकास में सहायक हैं। कथा में महत्व की दृष्टि से उनकी स्थिति प्रायः नायक से गौण रहती है।

मोहनलाल (जीने के लिए) नायक देवराज का हितैषी मित्र है। मोहनलाल की प्रेरणा से देवराज शिक्षा प्राप्त करता है, सेना में भर्ती होता है। उसी के सत्संग से देवराज में देश-भक्ति की भावना जागृत होती है।

मोहनलाल क्रान्तिकारी है, सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध है। वह साम्यवादी है। आर्थिक विषमता का कट्टर विरोधी है। क्रान्ति द्वारा जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता दिलाने के पक्ष में है। वह क्रान्ति को धर्म से निर्लेप रखना चाहता है। मानवता के विकास में, वह जाति-पाँति को सबसे बड़ा बाधक मानता है।

मोहनलाल सहृदय है। परोपकार में प्रसन्नता का अनुभव करता है। देवराज की दीनावस्था पर तरस खा कर उसकी आर्थिक सहायता करता है। वह निःस्वार्थ सेवा की भावना से ओत-प्रोत है। न्यायप्रिय तथा स्वाभिमानी है।

कपिल (सिंह सेनापति) नायक सिंह का मित्र है। वह यात्रा-प्रेमी है। उसने कई देशों की यात्रा की है। वह वीर और साहसी है। तक्षशिला और वैशाली के युद्धों में अपनी जान जोखिम में डालकर अपने मित्र सिंह की प्राण-रक्षा करता है। त्याग की भावना से ओत-प्रोत है। अपने कर्तव्य के प्रति वह सदैव जागरूक है। आडम्बर के विरुद्ध है।

अन्दर्जगर मज्दक (मधुर स्वप्न) मज्दकियों का गुरु है। उसकी प्रेरणा से ईरान का सम्राट शाह कवात् साम्यवादी बनता है। डा० सुषमा धवन के अनुसार[1] अन्दर्जगर मज्दक 'मधुर स्वप्न' का नायक है। पर यह धारणा सही नहीं जान पड़ती। उपन्यास का नायक शाह कवात् है अन्दर्जगर नहीं। अन्दर्जगर में नायकों वाले गुण हैं। वह चिन्तन-शील है। दूरदर्शी है। परिस्थितियों को अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित करता है। आन्दोलन का संचालन करता है। यह पर्याप्त नहीं। मुख्य कथा शाह कवात् के जीवन से सम्बद्ध है। कथा का उतार-चढ़ाव शाह कवात् पर आश्रित है। अन्दर्जगर नायक नहीं, मुख्य मित्र-पात्र है।

अन्दर्जगर आकार में सुन्दर, आचार में शुद्ध तथा वाणी में अद्वितीय मधुर है। वह स्वभाव से दयालु है। मानवता का दुःख उसे असह्य है। ऐश्वर्य सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने पर भी वह साधारण जीवन व्यतीत कर रहा है और दीनों तथा असहायों के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है।

---

[1] डा० सुषमा धवन—हिन्दी-उपन्यास, पृ० ३७८

अन्दर्जगर क्रान्तिकारी है। सामाजिक रूढ़िवादिता तथा आर्थिक विषमता के विरुद्ध है। उसे यह असह्य है कि अमीर ठाट-बाट से रहें और गरीब भूखे मरें। उसका विचार है कि आर्थिक समानता के बिना मनुष्य-मनुष्य में परस्पर भ्रातृभाव स्थापित नहीं हो सकता। वह एक ऐसी समाज बनाने के पक्ष में है जहाँ सभी के अधिकार समान हो। सभी वस्तुओं पर लोगों का सामूहिक अधिकार हो। व्यक्तिवाद का चिह्नमात्र भी उन अभीष्ट नहीं है।

अन्दर्जगर उदार है। अपने शत्रुओं को क्षमा करने वाला है। भूले भटकों को फिर से मार्ग पर लाने के लिए वह, उन्हें दण्ड देने के पक्ष में नहीं है। वह कहता है—"वैर को वैर से नहीं जीता जा सकता, अवैर से ही वैर को जीता जा सकता है, मनुष्य बदलता है, और जड़मूल से बदलता है, उसे अच्छी दिशा में बदलने का अवसर मिलना चाहिये।"[1]

सियाबरुश (मधुर स्वप्न) अन्दर्जगर मज्दक का प्रिय शिष्य है। वह साम्य-वादी है। निजी जीवन के वैभव को छोड़कर यह साम्यवाद के प्रचार में लगा हुआ है। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए वह क्रान्ति के पक्ष में है। धार्मिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध है।

सियाबरुश साहसी और निर्भीक है। देश प्रथा के विपरीत पत्नी के शव को भूमि में दबाने के अपराध में उसे फाँसी का दण्ड दिया जाता है। वह दण्ड को सहर्ष स्वीकार करता है किन्तु क्षमा-याचना नहीं करता। उसकी निर्भीकता की सभी प्रशंसा करते हैं। शाह कवात् को कारावास से मुक्त कराने में वह अनुपम साहस का परिचय देता है।

सियाबरुश न्याय-प्रिय है। उत्तराधिकारी चुने जाने पर वह शाह कवात् के अनुचित निर्णय का विरोध करने में संकोच नहीं करता है। उसे न्याय पथ पर चलना प्रिय है, किसी के रुष्ट होने का भय नहीं। उसे अपने जीवन की चिन्ता नहीं। महान आदर्शों की स्थापना की चिन्ता है। वह कहता है मुझे अपने लिए कोई अफसोस नहीं है, मरना जीवन का मूल्य है। अफसोस है तो यही, कि स्वर्ग को भूमि पर लाने का हम स्वप्न ही नहीं देख रहे थे, बल्कि उसका अंकुर भी हमने उगा दिया था, वह अब पद-दलित होने को है।[2] भावना से वह ओत-प्रोत है। अपने कर्त्तव्य के प्रति वह जागरूक है। आडम्बर के विरुद्ध है।

बुद्धिल (विस्मृत यात्री) नायक नरेन्द्रयश का मित्र है। कपिशा की यात्रा के समय नरेन्द्रयश की बुद्धिल से भेंट होती है। धीरे-धीरे दोनों घनिष्ठ मित्र बन जाते हैं। बुद्धिल यात्रा-प्रेमी है। नरेन्द्रयश के साथ वह तक्षशिला, काश्मीर, प्रयाग, साकेत, नालन्दा आदि स्थानों की यात्रा करता है। नरेन्द्रयश के साथ वह सिंहल द्वीप की

---

[1] मधुर स्वप्न, पृ० २६४

[2] मधुर स्वप्न, पृ० २९४

यात्रा करता है। वहीं वह व्याघ्रों द्वारा मारा जाता है। उसकी मृत्यु से नरेन्द्रयश को घोर दुःख होता है।

बुद्धिल विद्या-प्रेमी है। उसका ज्ञान व्यापक है। वह धार्मिक कुरीतियों तथा सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध है। निराशावाद उसे छू तक नहीं गया है। वह कहता है—'सत्ययुग पीछे नहीं बीता, वह आगे आने वाला है।'[1]

बुद्धिल को प्रदर्शन रुचिकर नहीं—न अपनी बुद्धि का और न विद्या का। शास्त्रार्थ में उसे कोई पराजित नहीं कर सकता है। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के प्रति भी नम्र है। मूर्तिकला, चित्रकला तथा काव्य कला का उसे विशेष ज्ञान है।

भारद्वाज ऋषि (दिवोदास) अंगिरा-गोत्री और वृहस्पति-पुत्र हैं। वे ब्रह्मद्रष्टा हैं। पुरोहित मात्र नहीं अपितु युद्ध की कला में निपुण हैं। अतिथि-सेवी हैं। दीनों का दुःख उन्हें असह्य है। यात्रियों के सुख का उन्हें सदैव ध्यान रहता है।

भारद्वाज ऋषि आर्यों की महत्वाकांक्षा के प्रतीक हैं। भारद्वाज ऋषि को रात-दिन यही धुन है कि कैसे सप्तसिन्धु के आर्यों में एकता स्थापित हो, कैसे उनका बल बढ़े और कैसे अपराजित शत्रुओं को नतमस्तक किया जाय। ऐसे भावों को वे अपने शिष्यों में भरते हैं। उन्हें राजा दिवोदास के गुणों पर पूर्ण विश्वास है। वे अपने हाथों दिवोदास का राज्याभिषेक करते हैं और उसको राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में परामर्श देते हैं। भारद्वाज ऋषि अपने प्रेम के मूल मंत्र से विच्छिन्न आर्यों में एकता स्थापित करते हैं और दिवोदास की असुरों के विरुद्ध संघर्ष में सैन्यबल सुदृढ़ करने में सहायता करते हैं।

नारी-पात्र

राहुल जी के उपन्यासों में नारी-पात्र संख्या में प्रचुर और प्रभाव में प्रबल नहीं हैं परन्तु फिर भी उनकी सहयोग भावना के कारण रचनाओं में उनका महत्व-पूर्ण स्थान है। उन्हें पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलते हुये दिखाया गया है। उनके चरित्र में वीरता तथा कोमलता का अच्छा सामंजस्य है। शत्रुओं के लिए वे जितनी कठोर हैं, असहायों के लिए वे उतनी ही दयालु हैं। दूसरों का दुःख उन्हें असह्य है। वे स्वाभिमानिनी हैं। लज्जा उनका भूषण है। कर्तव्य-परायणता उनका लक्ष्य है। वे वीरांगनाएँ हैं, सफल सद्गृहिणी हैं।

राहुल जी के नारी-पात्रों का चरित्र नायकों के उच्च आदर्श के अनुरूप है। घटनाओं के विकास में उनका पर्याप्त हाथ है। पर इतना होते हुये भी उनको नायिका का पद नहीं दिया जा सकता। नायिका का उपन्यास के कथानक के विकास-क्रम में सर्वप्रमुख स्थान होता है और उपन्यास के फलागम की स्थिति उसे ही प्राप्त होती है।[2] राहुल जी के नारी-पात्रों को फलागम की स्थिति प्राप्त नहीं हुई है।

---

[1] विस्मृत यात्री, पृ० १०२

[2] डा० सुरेश सिनहा—हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ० ६०

जेनी ब्राउन (जीने के लिए) प्रमुख नारी-पात्र है। वह कोमल, सहृदय और त्याग की मूर्ति है। अपनी मातृभूमि के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर है। उसका पिता आक्सफोर्ड कालिज में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर है। वह स्वयं मैडिकल कालिज की छात्रा है, पर अपनी त्याग-भावना के कारण प्रथम विश्व युद्ध में रोगियों और घायलो की सेवा करती है। वह देवराज को, उसके घायल होने पर, अपना रक्त देती है।

वह क्रान्तिकारिणी है। साम्यवादी विचारधारा की समर्थक है। आर्थिक विषमता की कड़ी आलोचक है। जनता की जागृति में विश्वास रखती है। क्रान्ति के मार्ग में धर्म के साधन और ईश्वर के अवलम्बन को ढोंग समझती है। समाज की निस्सार रूढ़ियों के विरुद्ध है।

वह कर्तव्यपरायणा है। देवराज से विवाह होने पर वह अपने कर्तव्य को यथापूर्ण निभाती रहती है और देवराज के देश-सेवा सम्बन्धी कार्यों में बाधक नहीं बनती है। प्रेम के लिए वह त्याग को आवश्यक समझती है। प्रेम को वह स्फूर्ति और उत्साह का स्रोत समझती है।

रोहिणी (सिंह सेनापति) आचार्य बहुलाश्व की पुत्री और 'सिंह' की पत्नी है। वह त्याग और निस्वार्थ सेवाभाव की प्रतीक है। सिंह के बीमार पड़ने पर रोहिणी सिंह की रात-दिन सेवा करती है। अपनी जान जोखिम में डालकर तक्षशिला और वैशाली के युद्धों में सिंह की प्राणरक्षा करती है। उसके साहस और पराक्रम को देखकर पुरुष भी आश्चर्य करते हैं।

रोहिणी सहृदया है। दासों और असहायों के प्रति उसका व्यवहार दयापूर्ण है। उसके स्नेहपूर्ण व्यवहार पर सभी मुग्ध हैं।

वसुनन्दा (जय यौधेय) उपन्यास की प्रमुख नारी-पात्र है। वह जय की पत्नी है। वसुनन्दा वीर, साहसी और स्वाभिमानिनी है। यौधेयों पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की चढ़ाई के समय वह अपने युद्ध-कौशल एवं साहस का परिचय देती है। वह कर्तव्यपरायणा सद्गृहिणी है।

सम्बिक् (मधुर स्वप्न) ईरान के सम्राट शाह कवात् की सहोदरा तथा पत्नी है। क्षीण कटि, उच्च वक्ष, शख सदृश ग्रीवा, तनुअंग, हिमश्वेत शरीर, आरक्त कपोल, बादाम समान लोचन, कोमल सुवर्ण रेखा सम भ्रूलता, श्वेत तथा समान दन्त—आदि शारीरिक गुणों के कारण वह सौन्दर्य की प्रतीक है उसका कण्ठ मधुर है। सभी के प्रति उसका व्यवहार सहृदयतापूर्ण है।

साम्बिक कर्तव्यपरायणा पतिव्रता नारी है। यह अपने पति के सुख-दुख की सहधर्मिणी है। पति को पुन: सिंहासनारूढ़ करवाने के लिए वह नाना प्रकार के कष्ट सहती है। अपने पति को कारावास से मुक्त कराने के लिए स्वयं को संकट में डालती है।

सम्बिक् सहिष्णुता की प्रतीक है। शाह कवात्, नवानुदुख्त के प्रेम में फँस

कर सम्बिक् के प्रेम को ठुकरा देता है। उसके पुत्र कावूस को उत्तराधिकारी बनने के अधिकार से वंचित कर देता है और सम्बिक् के बलिदानों को भुला देता है। सम्बिक् इन सभी दुखों को चुप-चाप सहन करती रहती है। उसके लिए उसका पति अब भी पूज्य है।

पौरवी (दिवोदास) राजा दिवोदास की माता है। अपने पति राजा वध्यश्व के दिवगंत होने पर दिवोदास को धैर्य देती है और उसको उसके कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने के लिए प्रेरित करती है। उसे सादा जीवन प्रिय है। वह परिश्रमी है और आलस्य से अतिदूर है। घर के सभी काम स्वयं करती है। किसी घरेलू कार्य को त्याज्य नहीं समझती है। वह अपने पुत्र दिवोदास की उसके राज्य व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में अपनी मंत्रणा द्वारा सहायता करती है।

राहुल जी के उपन्यासों की पात्र-चित्रण कला

राहुल जी के उपन्यासों के पात्रों के चरित्र तथा उनके चरित्र-चित्रण का विश्लेषण करने के उपरान्त निम्नलिखित मौलिक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

पात्रों का स्रोत—'जीने के लिए' उपन्यास के सभी पात्र कल्पित हैं। 'सिंह सेनापति' के मगधराज बिम्बसार तथा अजातशत्रु, 'जय यौधेय' के समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा कालिदास 'मधुर स्वप्न' के शाह कवात, उसका भाई जामास्प, खुसरो, हेपताल शाह तोरमान और 'विस्मृत यात्री' के चीन सम्राट इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। शेष सभी पात्र कल्पित हैं। 'दिवोदास' के दिवोदास, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, ऋषि भारद्वाज, शम्बर ऐतिहासिक हैं। निष्कर्ष यह कि राहुल जी के उपन्यासों के ऐतिहासिक सम्राटों तथा कुछ अन्य उक्त पात्रों को छोड़ प्रायः सभी पात्र कल्पित हैं पर राहुल जी ने अपनी अद्भुत कल्पनाशक्ति तथा असीम अनुभव के आधार पर सभी कल्पित पात्रों को सजीव बना दिया है।

सीमित चयन परिधि--प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के लिए जीवन का विशाल चित्रपट चुना और समाज के समग्र जीवन को अपने उपन्यासों की सीमा में बांधने का प्रयास किया। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के पात्रों की चयनपरिधि व्यापक है। राहुल जी के उपन्यासों के पात्रों की चयन-परिधि सीमित है। उनके अधिकांश पात्र राजनीति तथा इतिहास तक सीमित हैं। वे शासक वर्ग तथा समाज के मध्यम-वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। 'जीने के लिए' उपन्यास में श्रमिक वर्ग तथा कृषक वर्ग से कुछ पात्र गौण रूप में आये हैं।

पात्रों के गुणों में समानता—अधिकांश पात्र राहुल जी के जीवन-दर्शन के प्रतिनिधि हैं। उनके नायक प्रायः क्रान्तिकारी, साम्यवादी, स्वाभिमानी तथा स्वतन्त्रता प्रेमी हैं। वे सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के विरुद्ध हैं। निःस्वार्थ सेवा तथा त्याग के प्रतीक हैं। सभी दूरदर्शी, कर्त्तव्यपरायण परिश्रमी तथा आलस्यरहित हैं। नायकों के सहायक पात्रों तथा मित्र-पात्रों में भी उक्त गुण न्यूनाधिक रूप में मिलते हैं। सभी साम्राज्यवादी पात्र लोभी, स्वार्थी, नृशंस तथा कामुक हैं। वे मानवता तथा

गणतन्त्र के शत्रु हैं। इस प्रकार राहुल जी के सभी पात्र एक साँचे में ढले हुए प्रतीत होते हैं। उनके गुणों में विविधता का अभाव है।

पात्र-संख्या—"उपन्यास में पात्रों की संख्या कितनी होनी चाहिये, यह कथानक की सीमा के साथ ही उपन्यासकार के व्यक्तित्व और उसकी कला पर निर्भर होता है।.........कुछ उपन्यासकार बहिर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं, कुछ अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के। पात्रों की संख्या पर उपन्यासकार की इन विशेषताओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाला उपन्यासकार स्वभावतः कथानक की सीमा अत्यन्त विस्तृत रखना चाहेगा, और उसे प्रायः सभी प्रकार के पात्रों का चित्रण उपस्थित करना होगा।"[1] उक्त विशेषताएँ राहुल जी के उपन्यासों की पात्र संख्या के सम्बन्ध में सही बैठती हैं। उनके उपन्यासों में पात्रों की चयनपरिधि सीमित अवश्य है पर पात्रों की संख्या पर्याप्त है। उनके प्रत्येक उपन्यास में मुख्य पात्रों की संख्या प्रायः आठ से कम नहीं। गौण पात्रों की संख्या भी पर्याप्त है। नारी पात्रों की संख्या पुरुष-पात्रों की अपेक्षा बहुत कम है। उसका मुख्य कारण यह है कि राहुल जी के उपन्यास संघर्ष प्रधान हैं। संघर्ष के लिये उन्होंने पुरुषों को अधिक उपयुक्त समझा है। नारी-पात्रों में राहुल जी ने अपना ध्यान केवल मुख्य नारी-पात्रों की ओर रखा है। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास में कोई मुख्य नारी-पात्र नहीं है।

पात्रों के चरित्र में स्थिरता—राहुल जी के पात्रों के चरित्र प्रायः स्थिर रहते हैं। इसका कारण यह है कि राहुल जी अपने पात्रों का 'अच्छे', 'बुरे' दो वर्गों मे विभाजन कर लेते हैं। अन्त तक वे उसी रूप में उनका चित्रण करते रहते हैं। पात्र, उपन्यास के आरम्भ में, जिन गुणों के साथ प्रवेश करते हैं, वे उनमें अन्त तक बने रहते हैं। देवराज, सिंह, जय और नरेन्द्रयश—नायकों के गुण स्थिर हैं। सभी मित्र-पात्रों तथा नारी पात्रों के गुण स्थिर हैं। शाह कवात् का चरित्र अवश्य विकासशील है। पुनः सिंहासनारूढ़ होने पर वह लेखक के उद्देश्यों के विरुद्ध चलने लगता है। आक्रमणकारी शासक पात्रों का चरित्र स्थिर है।

पक्षपातपूर्ण चरित्र-चित्रण—राहुल जी के पात्रों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) नायक तथा उनके मित्र-पात्र, और (२) साम्राज्यवादी पात्र। उपन्यासों के नायक तथा उनके मित्र-पात्र क्रान्तिकारी, साम्यवादी तथा स्वतन्त्रता प्रेमी हैं। इन सभी पात्रों का लेखक से तादात्म्य है। इसलिए उसने इनके गुणों की सहानुभूतिपूर्वक विस्तृत व्याख्या की है। सम्राट् पात्र राहुल जी की प्रकृति के विरुद्ध है। इसलिए उन्होंने अपनी दृष्टि सम्राट् पात्रों के केवल अवगुणों की ओर रखी है। कालिदास सम्राट् चन्द्रगुप्त के पक्ष में है, इसलिए लेखक को उससे सहानुभूति नहीं है।

पात्रों से पाठकों के तादात्म्य का अभाव—चरित्र-चित्रण के लिए आजकल

---

[1] डा० सुरेश सिनहा—हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ० ५२

मनोविश्लेषणात्मक पद्धति को विशेष महत्व दिया जाता है। पात्रों के चरित्र में संघर्ष और विषमता दिखाई जाती है, पर राहुल जी के पात्रों में गुण ही गुण हैं या केवल अवगुण ही। वे वास्तविक जगत् के मानव से भिन्न प्रतीत होते हैं। इसलिए राहुल जी के पात्रों से पाठकों का तादात्म्य नहीं हो सका है। उन्हें आदर्श रूप में उपस्थित किया गया है। वे वर्तमान के न होकर अतीत के पात्र लगते हैं।

बाह्य चरित्र-चित्रण—राहुल जी के उपन्यासों में पात्रों के बाह्य चरित्र का चित्रण किया गया है। पात्रों की वेशभूषा, उनकी आकृति एवं क्रियाकलापों के चित्रण की ओर ही उनकी दृष्टि रही है। पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व उठता अवश्य है, पर उन्होंने उनके अन्तर के चित्रण की ओर ध्यान नहीं दिया है। तीन उपन्यासों के आत्मकथा-त्मक शैली में लिखे होने के कारण पात्रों के अन्तर का विश्लेषण सम्भव था पर राहुल जी ने इसकी चिन्ता नहीं की है। उनकी दृष्टि पात्रों के बाह्य चरित्र-चित्रण तक सीमित रही है।

कथानक तथा पात्रों का परस्पर सम्बन्ध—राहुल जी के उपन्यासों की कथा पूर्वनियोजित होती है। पूर्वनियोजित कथा में पात्रों को रखकर वे उनका विस्तार से चरित्र-चित्रण करते हैं। उपन्यासों के नायक तथा अधिकांश पात्र कथा की घटनाओं को अपने चरित्र द्वारा प्रभावित करते हैं। 'कथा-वस्तु सम्बन्धी निष्कर्ष' शीर्षक के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में चर्चा की जा चुकी है।

चित्रण शैली—'जीने के लिए', 'मधुर-स्वप्न' तथा 'दिवोदास' उपन्यास विवरणा-त्मक शैली में और 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' और 'विस्मृत यात्री' उपन्यास आत्म-कथात्मक शैली में लिखे हुये हैं। विवरणात्मक शैली में लिखे गये उपन्यासों में, पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए राहुल जी ने विश्लेषणात्मक तथा नाटकीय विधियों को अपनाया है। आत्मकथात्मक शैली वाले उपन्यासों में कथोपकथन तथा घटनाओं द्वारा चरित्र-चित्रण किया है। 'जीने के लिए'[1] उपन्यास में पत्रात्मक शैली का भी उपयोग किया गया है।

(ग) राहुल जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि

वातावरण पात्रों का संसार है, जिनमें रखकर वे अपने व्यक्तित्व को उद्-घाटित करते हैं। उपन्यास में कथोपकथन तथा क्रिया-कलाप को छोड़कर शेष समस्त सामग्री वातावरण से सम्बन्ध रखती है।[2] वातावरण के मुख्य दो पक्ष हैं—सामा-जिक तथा प्राकृतिक। मनुष्यों के परस्पर सम्पर्क के फलस्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें सामाजिक वातावरण कहा जाता है। इसके अन्तगत पात्रों के आचार-विचार, रीति नीति, खान-पान तथा रहन-सहन के ढंग सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण से अभिप्राय है मनुष्येतर जगत्। प्राकृतिक वस्तुओं के सजाने, सँवारने में मनुष्य का हाथ नहीं लगता वरन् वे अपनी नैसर्गिक छटा से हमें

---

१ 'जीने के लिए' उपन्यास के ३२वें, ३४वें, ३७वें तथा ३९वें परिच्छेदों में।

२ डा० शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० २३५

आकर्षित करती हैं। ईश्वर अथवा मनुष्येतर किसी महान् शक्ति की कारीगरी को प्रकृति और मनुष्य की कारीगरी को कला कहा जाता है। प्रकृति में पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, पृथ्वी, वनस्पति आदि की गणना की जाती है।[१] उक्त तत्वों के आधार पर राहुल जी के उपन्यासों की वातावरण-सृष्टि का विश्लेषण प्रस्तुत है—

घटनास्थल—राहुल जी कृत उपन्यास, विभिन्न घटनास्थलों से सम्बद्ध हैं। 'दिवोदास', 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'विस्मृत यात्री' तथा 'जीने के लिए' इन पाँच उपन्यासों की रंगभूमि भारत और छठे उपन्यास 'मधुर स्वप्न' की ईरान देश है। 'दिवोदास' का मुख्य घटनास्थल 'सप्तसिन्धु' (पंजाब), 'सिंह सेनापति' के मुख्य घटना स्थल तक्षशिला और वैशाली, 'जय यौधेय' का मुख्य घटनास्थल यौधेय प्रदेश, 'विस्मृत यात्री' का उद्यान प्रदेश तथा 'जीने के लिए' का छपरा जिला (बिहार) है। मधुर स्वप्न' का मुख्य घटनास्थल ईरान देश की राजधानी तस्पोन् है। दिवोदास को छोड़ कर शेष सभी उपन्यासों में नायकों अथवा अन्य पात्रों की यात्राओं का न्यूनाधिक उल्लेख है इसलिए इन उपन्यासों का मुख्य घटनास्थलों से सम्बन्ध होने के अतिरिक्त कई अन्य स्थानों से सम्बन्ध है जिनमें से मुख्य हैं भारत के बौद्ध तीर्थस्थान, सिंहल द्वीप तथा महाचीन।

सप्तसिन्धु (पंजाब) आर्य जनों की भूमि है। यह सरस्वती नदी (कुरुक्षेत्र के समीप) और सिन्धु उपत्यका तक फैली हुई है। सरस्वती शुतुद्रि (सतलुज), विपाश् (व्यास), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चनाव) वितस्ता (जेहलम) और सिन्धु (सिन्धु) इस भूमि का सिंचन करती हैं। यमुना आर्य प्रदेश के सीमान्त की नदी है। आर्यों का पुरुजन सप्तसिन्धु के पूर्वी अंचल पर परुष्णी (रावी) से सरस्वती तक फैला हुआ है। तृत्सुओं के राजा दिवोदास का राज्य व्यास और परुष्णी (रावी) के बीच की भूमि में स्थित है। पणियों का प्रदेश सप्तसिन्धु का दक्षिण-पश्चिमी अंचल है। उत्तर के (हिमवन्त-वर्तमान कांगडा वाला पहाड़) पर्वत पर किरातों (असुरों) का राज्य है।

तक्षशिला सिन्धु नदी और वितस्ता (वर्तमान जेहलम) के मध्य स्थित है। यह गांधार प्रदेश की राजधानी है। गांधार प्रदेश के पूर्व मे माद्र देश है जिसकी राजधानी सागल (स्यालकोट) है। सिन्धु नदी गांधार प्रदेश की पश्चिमी सीमा है। वैशाली, तक्षशिला से सुदूर पूर्व में वज्जी नामक गणतंत्रीय संघ की राजधानी और लिच्छवि प्रदेश की महानगरी है। इसके उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण और पूर्व में मगधराज बिम्बसार का राज्य है। राजगृह मगधराज की राजधानी है।

यौधेय प्रदेश यमुना के वामवर्ती तट पर स्थित है। यमुना के दक्षिणवर्ती तट पर सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्य है। यौधय प्रदेश के उत्तर-पश्चिम में देवपुत्र

---

१ वही, पृ० २३५

शाही कुषाण का राज्य है, पुरुषपुर इस प्रदेश की राजधानी है। दक्षिण-पश्चिम (मालवा-गुजरात) में शकमहाक्षत्रप का राज्य है। अग्रोदका इन्द्रप्रस्थ, यौधेय प्रदेश के तथा मथुरा, पाटलिपुत्र और उज्जैन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के प्रसिद्ध नगर हैं।

उद्यान प्रदेश के उत्तर-पूर्व में काश्मीर, दक्षिण में गांधार और कपिशा तथा पश्चिम में कम्बोज प्रदेश हैं। एक नदी के नाम पर पहले इस प्रदेश का नाम सुवास्तु था।

छपरा, बिहार प्रान्त (भारत) का एक जिला है। जीने के लिए उपन्यास का नायक देवराज विदेश में छः वर्ष रहता है किन्तु उसके जीवन की अधिकांश मुख्य घटनाएँ छपरा जिला में घटती हैं।

ईरान देश की राजधानी तस्पोन तिक्रा (तिग्रा) नदी के दोनों तटों पर स्थित है। यह सात उपनगरों का एक महानगर है। 'मधुर स्वप्न' उपन्यास की मुख्य घटनाओं का सम्बन्ध इस महानगर से है।

उपन्यासों का कालक्रम तथा राजनीतिक अवस्था

इतिहास के विभिन्न कालों से सम्बद्ध होने के कारण राहुल जी-कृत उपन्यासों से विभिन्न कालों की राजनीतिक स्थिति का बोध होता है। 'दिवोदास' का सम्बन्ध १२२० ई० पूर्व से लगभग १२७७ ई० पूर्व के सप्तसिन्धु निवासी आर्यों के जीवन से है।[१] 'सिंह सेनापति'[२] का सम्बन्ध ई० पू० ५००, तथा 'जय यौधेय[३] का सम्बन्ध सन् ३५०-४०० ई० के भारत की राजनीतिक घटनाओं से है। 'विस्मृत यात्री'[४] सन् ५१८ से ५८९ ई० के बीच के उद्यान प्रदेश, भारत तथा महाचीन के जीवन से सम्बद्ध है। 'जीने के लिए'[५] उपन्यास से बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सन् १९३९ ई० तक के भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का परिचय प्राप्त होता है 'मधुरस्वप्न'[६] से सन् ४९२ से ५२९ ई० तक की, ईरान प्रदेश की, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का ज्ञान होता है।

सप्त सिन्धु (१२२० ई० पू०) में आर्यों के पांच नहीं, पचासों जन हैं। इनमें से मूल पाँच जन हैं—पुरु, यदु, द्रुह्यु, तुर्वश और अनु। पुरु जन की कुशिक, भरत, तृत्सु आदि कई शाखाएँ हो चुकी हैं। इनमें ऐक्य का अभाव है। राज्यविस्तार के लिए आर्य, पणियों और किरातों (अनार्यों) से संघर्ष कर रहे हैं।

'सिंह सेनापति' तथा 'जय यौधेय' में साम्राज्यवादी तथा गणतंत्रात्मक शासन-

---

१ दिवोदास, पृ० १, १३९
२ सिंह सेनापति, भूमिका।
३ जय यौधेय, प्राक्कथन।
४ विस्मृत यात्री, देखिये पृ० १, ३९०
५ जीने के लिए, पृ० ४९, ३३४
६ मधुर स्वप्न, प्राक्कथन।

पद्धतियों का संघर्ष दिखाया गया है। राजाओं की अपेक्षा गण-शासित प्रदेशों की राजनीतिक अवस्था अधिक सुव्यवस्थित है। गांधार और लिच्छवि प्रदेश गण-शासित प्रदेश हैं। इन दोनों प्रदेशों का शासन, जनता की निर्वाचित सदस्यों की गण-संस्था द्वारा होता है। निर्वाचित सदस्य गण-प्रदेश की मर्यादाओं का पालन करने की शपथ देते हैं। गणसंस्था के अध्यक्ष को गणपति कहा जाता है। निर्णय बहुमत से किये जाते हैं। ज्ञप्ति (प्रस्ताव सूचना) को सदस्यों के सम्मुख तीन बार पढ़ा जाता है। ज्ञप्ति के स्वीकृत होने पर सदस्य तुमुल हर्ष ध्वनि करते हैं।[१] गणशासित प्रदेशों के लोग राजाओं की साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध हैं।

उद्यान प्रदेश का राजा काश्मीर के राजा मिहिरकुल के अधीन है। सन् ५४७ ई० में राजा मिहिरकुल के निधन पर उद्यान स्वतन्त्र हो जाता है।[२] महाचीन उत्तर तथा दक्षिण दो राज्यों में बँटा हुआ है। इन राज्यों में राज्य परिवर्तन थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् होते रहे हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत में, रौलट ऐक्ट, जलियाँवाला बाग का हत्याकांड तथा फौजी कानून के विरुद्ध रोष फैला हुआ है। अंग्रेजी शासन स्वतन्त्रता आन्दोलन का कठोरता से दमन कर रहा है। जमींदारों ने कृषकों की भूमि पर अधिकार कर रखा है। किसान जमींदारों के दुर्व्यवहार के विरुद्ध आन्दोलन में रत हैं। सरकार ज़मींदारों के पक्ष में है।[३]

ईरान देश की प्रथानुसार सासानी वंश में उत्पन्न व्यक्ति ही वहाँ का शासक बन सकता है।[४] इस वंश के शासक स्वेच्छाचारी हैं। पद भिन्न-भिन्न सामन्तीय वंशों के लिए नियत हैं।[५]

सामाजिक अवस्था

मानव-समाज के जीवन पर आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा खान-पान व रहन-सहन सम्बन्धी अनेक तत्वों का प्रभाव पड़ता है। राहुल जी के उपन्यासों की सामाजिक स्थिति का इन तत्वों के आधार पर विवेचन किया जायगा। 'दिवोदास' (ई० पू० १२२० से लगभग १२७७ ई० पू०), सिंह सेनापति' (ई० पू० ५००), 'जय यौधेय' (सन् ३५०-४०० ई०) तथा 'विस्मृत यात्री' (सन् ५१८ ई० ५८९ ई०) से प्राचीन भारत और 'जीने के लिए' से सन् १९३९ ई० तक के आधुनिक भारत की सामाजिक अवस्था का ज्ञान होता है। 'मधुर स्वप्न' (सन् ४९२-५२९ ई०) से ईरान प्रदेश की प्राचीन सभ्यता का परिचय प्राप्त होता है।

---

[१] सिंह सेनापति, पृ० ७७ से ८४

[२] विस्मृत यात्री, पृ० २०२

[३] जीने के लिए, पृ० २३१-३३५

[४] मधुर स्वप्न, पृ० ५८

[५] वही, पृ० २५८

(अ) **खान-पान तथा रहन-सहन**—प्राचीन भारत के लोगों का रहन-सहन आडम्बर रहित सुरुचिपूर्ण है। उनके मकान प्रायः दो तल्ले हैं। घर के आँगन में फलों के पौधे लगाने का रिवाज है। दरवाजों की लकड़ी पर बेल-बूटे का काम किया जाता है।[१] खान-पान पौष्टिक है। दूध, घी, सुरा तथा कई प्रकार के मांस खान-पान के विशेष अंग हैं।[२]

आधुनिक भारत में धनिक वर्ग के लोग नगरों में पक्के तथा सुनिर्मित मकानों में ठाट-बाट से रह रहे हैं।[३] ग्रामों में रहने वाले किसानों और श्रमिकों का रहन-सहन उनकी गरीबी का सूचक है। उनके मकान कच्चे और तंग हैं। मकानों की छतें घास-फूस की बनी हुई हैं। चारपाई के अभाव में गरीब लोग जमीन पर लेटते हैं।[४] उनका खान-पान दाल-रोटी तक सीमित है। खान-पान पौष्टिक न होने के कारण लोगों का स्वास्थ्य खराब है।[५]

प्राचीन ईरान के अमीर लोग भव्य प्रासादों में रह रहे हैं पर गरीब अँधेरी और तंग कोठरियों में रह रहे हैं। अमीरों और गरीबों के रहन-सहन में स्वर्ग और नरक के जीवन का अन्तर है।[६] 'दिहबगान' को छोड़ शेष समस्त ईरान में मांस और सुरा को भोजन का विशेष अंग माना जाता है। दिहबगान में मधु, मक्खन, चावल, गेहूँ तथा सुस्वादु मेवे भोजन के विशेष-अंग हैं।[७]

(ब) **आर्थिक अवस्था**—आर्थिक दृष्टि से प्राचीन भारत के लोगों का जीवन समृद्ध है। ऋग्वेदिक आर्यों का मुख्य व्यवसाय पशु-पालन और उसके बाद के लोगों का प्रमुख-व्यवसाय खेती-बाड़ी है। गेहूँ, गंधशाली तथा फलों की उपज अधिक होती है। व्यापार उन्नति पर है। कम्बल, कपास, वस्त्र, काष्ठ तथा धातु की बनी हुई वस्तुएँ दूसरे देशों को भेजी जाती हैं।[८] आजीविका ढूँढ़ने में लोग एक दूसरे की सहायता करते हैं। निर्धन विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है।[९] धर्मार्थ कार्यों के लिए लोग उत्साहपूर्वक दान देते हैं। महाचीन में कुछ लोगो की आर्थिक स्थिति ठीक है. किन्तु अधिकांश आर्थिक-सकट का अनुभव कर रहे हैं।[१०]

---

१ सिंह सेनापति, पृ० २४
२ सिंह सेनापति, पृ० २१०; दिवोदास, पृ० ३०, ४५, ५४
३ जीने के लिए, पृ० ३९-४०
४ वही, पृ० २०
५ वही पृ० २०-२३
६ मधुर स्वप्न, पृ० १४-१५
७ वही, पृ० ११९
८ दिवोदास, पृ० १; जय यौधेय, पृ० ३२५
९ सिंह सेनापति, पृ० १४
१० विस्मृत यात्री, पृ० ३९३

आधुनिक भारत के ग्रामों में आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक है। कुछ बड़े जमींदारों को छोड़ कर शेष सभी लोग आर्थिक संकट का अनुभव कर रहे हैं। मँहगाई बढ़ती जा रही है।[१] आर्थिक संकट दूर करने के लिये लोग ऋण लेते हैं। ऋण की दर बड़ी कड़ी है। आजीविका की खोज में लोगों को इधर उधर घमना पड़ता है। मजदूरी बहुत थोड़ी है । रिश्वत जोरों पर है।[२]

प्राचीन ईरान में आर्थिक विषमता है। अमीर, बहुत अमीर हैं और गरीब, बहुत गरीब। ईरान के 'दिहबगान' प्रदेश में आर्थिक विषमता का अभाव है। वहाँ सभी वस्तुओं पर सामूहिक अधिकार है।[3]

(स) धार्मिक अवस्था—'धर्म क्या है ?'—इस विषय पर भारत में सदैव मतभेद रहा है, और इस प्रश्न को लेकर अनेक मत-मतान्तरों का आविर्भाव होता रहता है। विश्व को संचालित करने वाली एक लोकोत्तर शक्ति की कल्पना, उसमें आस्था, उसकी प्राप्ति के लिए उपाय—प्राचीन धर्म के मुख्य विषय रहे हैं। आधुनिक काल में प्रत्येक वस्तु को वैज्ञानिक कसौटी पर परखा जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार धर्म की प्राचीन परिभाषाएँ भावुकतापूर्ण अधिक और तर्कसंगत कम जान पड़ती हैं। नवीन दृष्टिकोण के अनुसार धर्म को किसी जाति अथवा वर्ग के लिए उचित ठहराया हुआ कर्त्तव्य माना जाता है।[४]

भारत धर्मप्रधान देश है। बौद्धमत भारत का एक मुख्य धर्म रहा है। जिस समय, महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ, उस समय देश में अनेक वाद प्रचलित थे। परलोक है या नहीं, मरण के अनन्तर जीवन का अस्तित्व होता है या नहीं, कर्म है या नहीं—इस प्रकार के प्रश्नों में लोगों का कुतूहल था। बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात महात्मा बुद्ध ने धर्म के विषयों मे, लोगों का मार्ग प्रदर्शन किया। उन्होंने बतलाया कि संसार दुःखों का घर है। दुःखों का कारण हमारी वासनाएँ हैं। वासनाओं के निरोध से दुःख मिट सकते हैं। दुःखों से बचने के लिए हमें 'मध्यमार्ग' पर चलना चाहिये। मध्य मार्ग इन आठ तत्वों[५] पर आधारित है—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव तथा सम्यक् समाधि। अष्टमार्ग के अनुसरण से मनुष्य निर्वाण प्राप्त कर सकता है। निर्वाण दुःख का अन्त है, मृत्यु पर विजय है।

बौद्धमत में निर्माण और आत्मा के प्रश्न एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं। बौद्धमत में निर्वाण को चरम लक्ष्य मानते हुए भी ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है। इस जगत् की उत्पत्ति ईश्वर, महादेव, वासुदेव,

---

१ जीने के लिए, पृ० ५

२ वही, पृ० ३२१

3 मधुर स्वप्न, पृ० ११६

४ साहित्य कोश, डा० धीरेन्द्र वर्मा

५ बौद्धधर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, द्वितीय अध्याय, पृ० २२

पुरुष, प्रधानादि किसी एक कारण से नहीं हुई है।[१] ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है जिसने कि इस जगत् की रचना की हो। लोक-वैचित्र्य कर्मज है। यह तत्वों के कर्म से उत्पन्न होता है। प्रत्येक जीव अपने मनःकर्म, चेतना और काय-वाक् का परिणाम है। कर्म और उसके फल का निषेध करना मिथ्या-दृष्टि है। बौद्धमत में पुनर्जन्म और कर्म-फल के 'वाद' को स्वीकृत किया गया है। इस मत में कुशल-अकुशल स्वभाव और बुद्धिपूर्वक किए हुये कर्म की गुरुता पर जोर दिया गया है तथा मौन, वृत, स्नानादि को निरर्थक समझा गया है।[२]

'दिवोदास' व 'जीने के लिए' उपन्यासों को छोड़ कर राहुल सांकृत्यायन जी के शेष सभी उपन्यासों में बौद्ध मत की चर्चा हुई है। प्राचीनभारत में वैशाली, तक्षशिला, पाटलिपुत्र, उद्यान प्रदेश, सिंहल तथा महाचीन[३] में बौद्धमत उन्नति पर है। वैशाली में बौद्धमत और जैनमत[४] की प्रतिद्विन्द्वता चल रही है। बौद्धमत की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। लोगों में बौद्ध-तीर्थों की यात्रा के लिए विशेष उत्साह है। बौद्ध भिक्षुओं के लिये विहार बने हुये हैं। बौद्धमत के प्रचार के लिए भिक्षु देश-विदेशों की यात्रा करते हैं।[५]

राष्ट्रीय भावों के विकास के कारण आधुनिक भारत में लोग धार्मिक विषयों में सहिष्णुता से काम लेने लगे हैं। धर्म की अपेक्षा लोगों का ध्यान, राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं की ओर अधिक हो चला है। धर्म का सामाजिक जीवन में महत्व कम है—ऐसा विचार लोगों में बढ़ता जा रहा है। धार्मिक विषयों में, नगर के लोग विवेक से काम लेने लगे हैं, पर अशिक्षा के कारण ग्रामीण लोग अभी तक

---

[१] बौद्धधर्म दर्शन,—आचार्य नरेन्द्रदेव पृ० २२३, २४३

[२] वही, पृ० २५०, २८४

[३] जय यौधेय, पृ० २३७

[४] जैनमत—बौद्धमत की भाँति जैनमत में ईश्वर की सत्ता स्वीकृत नहीं है। उस मत के अनुसार जगत ईश्वर निर्मित नहीं, यह अनादि काल से स्थित है। शरीर को आत्मा (जीव) का घर माना गया है। बौद्धमत की भाँति जैनमत कर्मप्रधान मत है। जीव और शरीर की शुद्धि के लिए इस मत में तपस्या और व्रतों को महत्वपूर्ण माना जाता है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार फल पाता है। कर्मों के क्षय पर मनुष्य जन्म, पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जैनमत में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया जाता है। इस मत के अनुसार जीव हत्या अमानुषिक कर्म है। छोटे से छोटे प्राणी में वही जीव है जो हम में है। जीव हिंसा न हो इसलिए अँधेरे में भोजन करना निषिद्ध है। दुःखी और पीडित के कष्ट को दूर करना चाहिये। 'जैन-इज्म्-इन नट्श्यल्'—मुनि कीर्ति विजय, पृ० २४, ३३, ५५।

[५] विस्मृत यात्री, पृ० ३८९-३९७

अंधविश्वासी हैं। स्वार्थी लोग, धर्मरक्षा की आड़ में लोगों में साम्प्रदायिक विद्वेष की आग भड़का रहे हैं।[१]

प्राचीन ईरान का मुख्य धर्म मज्दयस्नी है। इस धर्म का सबसे बड़ा तीर्थ 'इस्तख' नगर है। इस्तख मज्दयस्नी धर्म की भगवती 'अनाहिता' का धाम है। अनाहिता दिगम्बरा है। ईरान की अधिकांश जनता मज्दयस्नी धर्म की अनुयायी है। सासानी वंश के शासकों का भी यही धर्म है।[२] अन्दर्जगर मज्दक के अनुयायी अनाहिता के विरोधी हैं। मज्दकियों की देवी 'मज्दा' है। उनका धर्म मानवतावादी है।[३]

(द) **सांस्कृतिक अवस्था**—संस्कृति, समाज की सभ्यता को अनुप्राणित करने वाला मूल तत्व है। संस्कृति के अभाव में सभ्यता, बिना मूल के पौधे के समान नष्ट हो जाता है। सभ्यता समाज का बाह्य रूप है और संस्कृति उसका आन्तरिक स्वरूप है। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक, राजनीतिक साधनों से है, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं सुगम बनती है। सभ्यता के साधनों का प्रभाव जीवन के ब्राह्यरूप तक सीमित रहता है, पर संस्कृति के साधनों का सम्बन्ध जीवन के आन्तरिक स्वरूप से होता है। संस्कृति चिन्तन को प्रभावित करती है। किसी देश की संस्कृति परम्परागत और स्वाभाविक होती है। इसका सम्बन्ध पूर्वकालिक विचारों, आदर्शों और मर्यादाओं से होता है। संस्कृति अतीत को अमरत्व प्रदान करती है और वर्तमान को सजीव रखती हुई भविष्य का मार्ग-प्रदर्शन करती है। किसी देश की सभ्यता के उपकरणों में विविधता होते हुये भी उसको अनुप्राणित करने वाली संस्कृति के उपकरणों में समानता होती है। भारत के विभिन्न प्रदेशों की सभ्यता भिन्न है पर उन सबको अनुप्राणित करने वाली संस्कृति एक है। अहिंसा तथा मातृत्व भारतीय संस्कृति के मुख्य अंग हैं।

राहुल जी के उपन्यासों से ज्ञात होता है कि अतिथि-सेवा प्राचीन भारतीय संस्कृति का मुख्य अग है। अतिथियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।[४] उनके सत्कार में कई प्रकार के समारोह किये जाते हैं। स्त्रियों में पर्दे का रिवाज नहीं है। स्त्री-पुरुषों का जीवन स्वच्छन्द है। उनमे चुम्बनो के आदान-प्रदान के लिए किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।[५] प्राचीन भारत में लोगों की नृत्य-गान में विशेष रुचि है। नृत्य को व्यायाम का राजा समझा जाता है।[६] नाटक खेले जाते

---

१ जीने के लिए, पृ० ३२५-३३१

२ मधुर स्वप्न, पृ० ६४-७३

३ वही, पृ० १२७-१२८

४ दिवोदास, पृ० ३६, ५३, ११०

५ सिंह सेनापति, पृ० १४६

६ सिंह सेनापति, पृ० ३१, ३२; विस्मृत यात्री, पृ० २५१

हैं। स्त्रियाँ नाटकों में भाग लेती हैं।[१] लोगों की चित्रकला तथा मूर्ति-कला में विशेष रुचि है।

प्राचीन भारत में लोग त्यौहार (उत्सव) बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। 'वन-भोज' महोत्सव वैशाली में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। यह उत्सव जाड़ों मे वर्ष में एक बार मनाया जाता है। उत्सव के दिन लोगों को जंगल में आयुधों के बल पर, वन्य पशुओं के शिकार द्वारा भोजन प्राप्त करना होता है। भोजनोपरान्त रात, जंगल में आमोद-प्रमोद द्वारा व्यतीत की जाती है।[२] 'बुनाई' समाप्त हो जाने पर तक्षशिला और वैशाली में उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस दिन कई प्रकार के मांस पकाये जाते हैं। घी के मीठे-फीके अपूप तैयार किये जाते हैं, खीर बनाई जाती है। सहभोज होता है। सारी रात नृत्यगान में बीतती है।[३] प्राचीन भारत में हिमालय के पर्वतीय प्रदेश (गंगा की उपत्यका का प्रदेश) में उत्सव संकेत मनाया जाता है। उत्सव सकेत के दिनों में अतिथि की सेवा में घर की कुमारी को अर्पण किया जाता है। षोडशी कुमारी के न होने पर घर की किसी भी तरुणी को प्रदान करना अतिथि सेवा धर्म का अभिन्न अंग समझा जाता है।[४]

भारत की आधुनिक संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। नगरों में सामाजिक रूढ़ियों से लोगों का लगाव कम होता है। ग्रामों में सामाजिक रूढ़ियाँ पूर्ववत् विद्यमान हैं। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का रिवाज है। ग्रामीण लोगों के विवाह बड़ी कठिनता से होते हैं। विवाह के लिये वरपक्ष को प्रायः रुपये या बदले में लड़की देनी पड़ती है।[५] लोग भूत-पिशाच, जन्त्र-मन्त्र में विश्वास रखते हैं। कामनाओं की पूर्ति के लिए मिन्नतें मनाते हैं।[६]

प्राचीन ईरान की संस्कृति की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। ईरान देश में सहोदरा भगिनी तथा बहन की पुत्री से विवाह किया जा सकता है। एक से अधिक पत्नियाँ रखी जा सकती हैं।[७] मुर्दे को न जलाया जाता है और न भूमि में गाड़ा जाता है। उसे 'दरुमा' के कूप में रखने का रिवाज है। जहाँ से उसे गिद्ध और कौए खाकर ठिकाने लगाते हैं। प्राचीन ईरान में अतिथि को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। मदिरा को अतिथिसत्कार के लिए आवश्यक समझा जाता है। अमीर लोगों का समय रंगरलियों में व्यतीत होता है और गरीब लोग भूख से मरते हैं।[८]

---

१ जय यौधेय, पृ० ४७, विस्मृत यात्री, पृ० २५१
२ सिंह सेनापति, पृ० १९६-२१२
३ वही, पृ० ३२, ३३
४ जय यौधेय, पृ० ८५
५ जीने के लिए, पृ० ८
६ वही पृ० ८-९
७ मधुर स्वप्न, पृ० २२, २५०
८ मधुर स्वप्न, पृ० ४, ७

प्रकृति-चित्रण

मानवीय अनुभूतियों को मार्मिक बनाने के लिए तथा कथाक्षेत्र को पाठकों की कल्पना में सजीव करने के लिए उपन्यासों में प्रकृति-चित्रण किया जाता है। राहुल जी के उपन्यासों में कथाक्षेत्र को पाठकों की दृष्टि में सजीव बनाने के लिए प्रकृति-चित्रण किया गया है।

राहुल जी ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है पर उनके उपन्यासों में ऋतुओं के चित्रों की प्रचुरता है। वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं—ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर तथा वसन्त।[१] राहुल जी ने प्रायः सभी ऋतुओं के चित्र खींचे हैं। वसन्त के ग्रीष्म में परिणत होने का चित्रण उन्होने इस प्रकार किया है—"शरद के पाँच मासों के बाद वसन्त भी अब ग्रीष्म में परिणत हो रहा था। अंगूर की लताओं में उनके पत्ते के समान ही हरे-हरे दानों के गुच्छे लटके हुये थे। सेव के फलों पर हल्की लाली का कहीं-कहीं अभी आरम्भ ही हुआ था...।"[२] वसन्तागमन के उक्त चित्र में राहुल जी का ध्यान फलों के कतिपय वृक्षों तक सीमित रहा है। वसन्तागमन के अन्य चिह्नों की ओर संकेत न होने के कारण चित्र प्रभावशाली नहीं बन सका है।

राहुल जी के उपन्यासों में वर्षा ऋतु के चित्रण बहुत कम हैं। एक स्थान पर इस ऋतु का सांकेतिक चित्रण उन्होंने इस प्रकार किया है—"वर्षा के प्रथम मास का एक महत्व यह भी है कि साल में सिर्फ इसी समय एक बार संघ अपेक्षार्थियों को भिक्षु बनाता है। इस समय सुभूमि और सुवास्तु तट की छटा निराली होती थी। जाड़ो से जहाँ देवदार जैसे सदा हरित रहने वाले वृक्षों को छोड़कर केवल सफेद बर्फ ही चारों ओर देखने में आती, वहाँ अब सुवास्तु के पत्थर पर टकराकर चलती धारा के क्षीर-समान जल को छोड़कर सभी जगह हरियाली का राज्य होता।"[३] वर्षा के उक्त चित्र में राहुल जी का ध्यान बरसते मेघों या चमकती बिजली की ओर नहीं गया है। यहां, उन्होंने प्रकृति का बाह्य और 'चलता हुआ' चित्र खींचा है।

राहुल जी ने शीत की तीन ऋतुओ—शरत्, हेमन्त और शिशिर का पृथक् चित्रण नहीं किया है। उन्होंने छः मास की इन तीन ऋतुओं को शीत की एक लम्बी ऋतु मान लिया है। हेमन्त ऋतु के चित्र पृथक् रूप से उन्होने अवश्य खींचे हैं। एक चित्र प्रस्तुत है—"हेमन्त ऋतु अपने यौवन पर थी। नहरों का पानी क्षीण हो गया था और कभी-कभी कई दिनों भूमि पर श्वेत हिम की चादर बिछी रहती थी।"[४]

यह चित्र अति संक्षिप्त है। यहाँ हेमन्त ऋतु के वातावरण को प्रभावशाली

---

[१] बृहत हिन्दी कोश, सम्पा० कालिका प्रसाद तथा अन्य, पृ० २१६

[२] मधुर स्वप्न पृ० २८३

[३] विस्मृत यात्री पृ० ५६-६०

[४] मधुर स्वप्न, पृ० २४२

और आकर्षक ढंग में प्रस्तुत करने की अपेक्षा राहुल जी ने अपना ध्यान कथा को आगे बढ़ाने की ओर अधिक रखा है। लम्बी सर्दी के पश्चात् वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना उन्होंने इस प्रकार दी है—"छै मास की गम्भीर निद्रा के बाद इंगलैण्ड की प्रकृति जागने लगी थी। जलकर झुलस गये वृक्षों में पत्ते कलियो के रूप में आने लगे थे। ठिठुरकर सिमटे परों वाली गौरैया अब ज्यादा चंचल हो चहचहाने लगी थी। तीन महीने से पडी 'टैम्स' की सफेद चादर ने अब नीला रूप धारण कर लिया था।...मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी तक वसन्त के आगमन से आनन्दित हो रहे थे।"[1] इस संदर्भ में वसन्त ऋतु के आगमन के चित्रण की अपेक्षा शीत ऋतु के प्रभाव का चित्रण अधिक है। वसन्त ऋतु की चित्र खींचने की अपेक्षा उसके आगमन की घोषणा शब्दों द्वारा की गई है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि राहुल जी ने प्रकृति-चित्रण बहुत 'चलता हुआ' किया है। प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने की अपेक्षा वे उसकी ओर संकेत मात्र कर कथा को आगे बढ़ाने के लिए अधिक चिन्तित रहते हैं। राहुल जी के उपन्यासों में हेमन्त ऋतु का चित्रण सबसे अधिक हुआ है। ग्रीष्म तथा वर्षा का चित्रण बहुत कम हुआ है। यात्रा-क्रम में प्राकृतिक दृश्य स्वतः दृष्टिगोचर होते हैं इसलिए सबसे अधिक प्रकृति-चित्र 'विस्मृत यात्री' में मिलते हैं। जहाँ राहुल जी का ध्यान राजनीतिक वातावरण की ओर अधिक रहा है, ('जीने के लिए' तथा 'सिंह सेनापति') वहाँ प्रकृति-चित्रण बहुत कम हो पाया है।

स्वयं राहुल जी तथा उनके उपन्यासों के नायक पर्वतीय यात्राओं के प्रेमी हैं। इसलिए उनके उपन्यासों में पर्वतों पर उगने वाली वनस्पति के चित्र मिलते हैं। वनस्पति में सबसे अधिक चित्र 'गगन चुम्बी' देवदार वृक्षों के मिलते हैं।[2] राहुल जी ने अपने उपन्यासों में फलदार वृक्षों तथा उन पर लगे हुए फलों का आकर्षक चित्रण किया है।[3]

प्रकृति-वर्णन को दो भागों में बांटा जा सकता है—रसात्मक तथा इतिवृत्तात्मक। प्रकृति के रसात्मक वर्णन में प्रकृति के उपकरणों का मार्मिक चित्रण किया जाता है। इन चित्रों को पढ़कर पाठक प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव करते हैं और आनन्द का अनुभव करते हैं। इतिवृत्तात्मक चित्रण में प्रकृति के उपकरणों की गणनामात्र होती है। राहुल जी के उपन्यासों के अधिकांश प्रकृति चित्र इतिवृत्तात्मक हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—"अंधेरी रात थी। पृथ्वी पर और आकाश में घनी काली चादर फैली थी, पता नहीं लगता था कहाँ समतल भूमि है और कहाँ उपत्यका है और कहाँ अधित्यका। आकाश में बादल छाया होने से तारों की टिमटिमाहट कहीं

[1] जीने के लिए, पृ० १६६
[2] विस्मृत यात्री, पृ० ६; जय यौधेय, पृ० ९३
[3] जय यौधेय, पृ० ३४

देखने में नहीं आती थी। रात आधी से अधिक बीत गई है, ऐसा समझने का कारण प्रकृति की कठोर निस्तब्धता और भीषण नीरवता थी।"[1] रात्रि के उक्त वर्णन में प्रकृति की निस्तब्धता और नीरवता का चित्र खींचा गया है। इस दृश्य में निस्तब्धता और नीरवता को बढ़ाने वाले प्रकृति के उपकरणों का इतिवृत्तात्मक ब्योरा मात्र प्रस्तुत किया गया है। राहुल जी के चाँदनी रात के वर्णन भी रसात्मक नहीं बन पाये हैं।[2]

राहुल जी का अधिकांश जीवन यात्राओं में बीता है। अतः उनके उपन्यासों में देश-विदेश की प्रकृति के तुलनात्मक चित्र पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।[3] राहुल जी ने प्रकृति के स्थिर और गतिशील—दोनों प्रकार के चित्र खींचे हैं। स्थिर एवं शान्त प्रकृति का चित्रण, एक स्थान पर, उन्होंने इस प्रकार किया है—"मध्याह्न बहुत पहले बीत चुका था, अनुचर लौटने की जल्दी कर रहे थे, लेकिन सरोवर और उसके आस-पास के सौन्दर्य, पक्षियों के कलरव तथा ऐसे दृश्यों सम्बन्धी कथाओं को देखने सुनने से हमारा मन नहीं भर रहा था। सूर्य पश्चिम की ओर झुक गये थे। मालूम होता था इस भूमि में उनकी भी गति धीमी हो जाती है। सूर्य की लाली बढ़ती जा रही थी, उसके साथ साथ अनुचरों की चिन्ता भी बढ़ रही थी। परन्तु उस शान्त प्रकृति में हमें वह बेकार मालूम होती थी।"[4] सरोवर तथा उसके आस-पास के शान्त वातावरण का चित्र आकर्षक बन गया है पर इसमें रसात्मकता की मात्रा कम है। राहुल जी के उपन्यासों में गतिशील प्रकृति के कुछ चित्र मिलते हैं। हिमालय की नदियों की चपलता का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—"हिमालय की नदियाँ बड़ी चपल और प्रगल्भ होती हैं, वहाँ की नारियों से बिल्कुल उल्टी। पानी बहुत कम जगह पानी की तरह दिखाई पड़ता है। चट्टानों से टकराकर जहाँ एक ओर वह घोर घर्घर नाद करता था, दूसरी ओर उबलते फेनिल दुग्ध सा दिखाई पड़ता था।"[5] इस संदर्भ में पर्वतीय नदियों और नारियों का तथा जल और फेनिल दुग्ध का तुलनात्मक चित्र आकर्षक बन गया है।

राहुल जी ने अपने उपन्यासों में प्रकृति के सरस और शुष्क—दोनों पक्षों के चित्र खींचे हैं, पर सरस पक्ष की ओर उनकी दृष्टि अधिक गई है। उन्होंने हरित वनस्पति, फलदार वृक्षों, बहती हुई नदियों तथा वसन्तागमन के आकर्षक चित्र खींचे हैं।[1] महाचीन के निकटवर्ती मरुस्थल में प्रकृति के सरस पक्ष के अभाव में उन्होंने

---

१ मधुर स्वप्न, पृ० १०२
२ सिंह सेनापति, पृ० २१४
३ विस्मृत यात्री, पृ० ३०१
४ विस्मृत यात्री, पृ० ३०३
५ जय यौधेय, पृ० ९१-९२
१ मधुर स्वप्न, २८३; दिवोदास, पृ० ३५

प्रकृति के शुष्क पक्ष का चित्रण किया है ।[1] प्रकृति के शुष्क पक्ष का चित्रण 'विस्मृत यात्री' में अधिक है ।

निष्कर्ष

राहुल जी के उपन्यासों का सम्बन्ध अनेक देशों और ऐतिहासिक युगों से है । उनके उपन्यासों से प्राचीन तथा आधुनिक भारत, प्राचीन ईरान, सिंहल तथा महा चीन की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है । प्राचीन भारत के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा आमोद-प्रमोद का विस्तृत परिचय प्राप्त होता है । उपन्यासों में राजनीतिक परिस्थितियों की प्रधानता के कारण राहुल जी का ध्यान समाज के मध्यम वर्ग तथा शासक वर्ग तक सीमित रहा है । उनके उपन्यासों में समाज के निम्न वर्ग की चर्चा बहुत कम हुई है । राहुल जी ने समाज के किसी वर्ग विशेष का मार्मिक चित्र उपस्थित नहीं किया है । समाज के सामान्य जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

राहुल जी के उपन्यासों में कथावस्तु और वातावरण में एकरूपता स्थापित नहीं हो सकी है । कथावस्तु और वातावरण दोनों एक दूसरे के साथ रम नहीं सके हैं । दोनों का विकास पृथक् रूप से हुआ है । वातावरण का विस्तृत वर्णन अनेक स्थानों पर कथा के विकास में बाधक सिद्ध हुआ है ।

राहुल जी के उपन्यासों में प्राकृतिक वातावरण के चित्रण को पर्याप्त स्थान मिला है । राहुल जी ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है । ऋतुओं में सबसे अधिक हेमन्त ऋतु का तथा वनस्पति में 'देवदारु' वृक्ष का चित्रण किया गया है । प्रकृति-चित्रण सब से अधिक 'विस्मृत यात्री' में और सब से कम 'सिंह सेनापति' में हुआ है । राहुल जी ने स्थिर और गतिशील—दोनों प्रकार की प्रकृति के चित्र खींचे हैं । स्थिर प्रकृति के चित्र संख्या में अधिक हैं ।

राहुल जी का प्रकृति के सरस पक्ष से अधिक प्रेम है । उनके उपन्यासों में सरस प्रकृति के चित्र प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । 'विस्मृत यात्री' में राहुल जी ने 'मरुस्थल' की शुष्क प्रकृति के चित्र खींचे हैं । प्रकृति का चित्रण करते समय, राहुल जी का ध्यान प्रकृति के उपकरणों के रसात्मक चित्रण की अपेक्षा उनके परिगणन की ओर अधिक रहा है, इसीलिये प्रकृति चित्र रसात्मक होने की अपेक्षा इतिवृत्तात्मक बन गये हैं । राहुल जी का ध्यान कथा के विकास की ओर अधिक रहता है । वे प्रकृति का सांकेतिक चित्रण करना पर्याप्त समझते हैं ।

(घ) राहुल जी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन

उपन्यास, कथा मात्र नहीं, अपितु जीवन की व्याख्या है । उपन्यासकार, कथा के माध्यम द्वारा मानव-जीवन के स्वरूप एवं समस्याओं का उद्घाटन तथा विवेचन

---

[1] विस्मृत यात्री, पृ० ३३८

करता है। इस प्रक्रिया के मूल में उपन्यासकार का जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण सन्निहित होता है। उसके अनुरूप वह जीवन की व्याख्या करता है। वह दृष्टिकोण उपन्यासकार का 'जीवन-दर्शन' है।

उपन्यास में जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए प्राय: दो प्रकार की विधियों का आश्रय लिया जाता है—नाटकीय तथा प्रत्यक्ष। नाटकीय विधि के अन्तर्गत उपन्यासकार नाटककार की भांति जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। उसके कुछ विचार तो पात्रों द्वारा व्यक्त किये जाते हैं और कुछ घटनाओं के संघटन तथा कथा के परिणाम में व्यंजित रहते हैं। प्रत्यक्ष विधि में, उपन्यासकार, कथा के मध्य उपस्थित होकर स्वयं जीवन की व्याख्या करता चलता है।

उपन्यासकार, उपदेशक नहीं, वह कलाकार है। उपदेशक, उद्देश्य का स्पष्ट प्रचार करता है, परन्तु कलाकार उसे अपनी रचना में, ध्वनित करता है। कला की श्रेष्ठता इसमें है कि उसका उद्देश्य कलाकृति में वृक्ष में हरियाली की भाँति सर्वत्र व्याप्त रहे। जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्यक्ष विधि का उपयोग किसी सीमा तक ही ग्राह्य है। यह नाटकीय विधि द्वारा अधिक व्यंजित होना चाहिये जिससे उपन्यास के स्वाभाविक विकास और रोचकता में बाधा न पड़े।

यथार्थ और आदर्श

जीवन का एक स्वरूप उपन्यासकार की आँखों के सामने प्रत्यक्ष रहता है और दूसरा उसकी कल्पना में। प्रस्तुत जीवन को मनोवांछित स्तर तक लाने के प्रयत्न में, वह जीवन के वास्तविक और काल्पनिक दोनों स्वरूपों को संजोता है। जीवन के ज्यों के त्यों अर्थात् बिना कल्पना का रंग चढ़ाये यथातथ्य चित्रण को 'यथार्थवाद' कहा जाता है और कल्पना के आधार पर उसके सुधारे हुये रूप को 'आदर्शवाद' कहा जाता है। भाव यह कि जीवन में, 'जो है' वह यथार्थ है और 'जो होना चाहिये' वह आदर्श है।

यथार्थ का चित्रण करते समय जीवन के वास्तविक गुण और दोष दोनों का उचित अनुपात में चित्रण होना चाहिये। मानव की दुर्बलताओं मात्र का चित्रण पाठक के मन पर हानिकारक प्रभाव डालता है। जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए कुछ सुझाव भी चाहिये, इसके लिए आदर्श का चित्रण आवश्यक है। पाठक, कल्पना का आश्रय लेकर जीवन से पलायनवादी न बन जाएँ इसलिए कोरा आदर्शवाद भी ठीक नहीं है। अत: उपन्यासकार की आधारभूमि यथार्थ की होनी चाहिये और उसमें आदर्श की प्रेरणा होनी चाहिये। उपन्यासकार को चाहिये कि वह यथार्थस्थिति के भीतर छिपे हुये आदर्श का उद्घाटन करे। आदर्श की कल्पना सम्भावना की सीमा के भीतर होनी चाहिये। जीवन में 'जो कुछ है' उसका सजीव दिग्दर्शन कराते हुये उसे 'जैसा होना चाहिये' की ओर उन्मुख कर देना उपन्यासकार का कर्तव्य है, उसकी यह प्रक्रिया 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' है।[१]

---

१ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २७०

राहुल जी के उपन्यासों में व्यक्त जीवन-दर्शन

व्यस्त जीवन, राहुल जी को प्रिय है। वे जीवन के प्रत्येक क्षण को महत्वपूर्ण समझते हैं और उसका सदुपयोग करना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से राहुल जी ने जीवन सम्बन्धी विविध पक्षों का गम्भीर चिन्तन किया है। इस चिन्तन की झलक, उनके उपन्यासों में मिलती है। राहुल जी ने, अपने उपन्यासों में मानव-जीवन के स्वरूप और उसके उद्देश्यों की विशद व्याख्या की है। वे मानव-जीवन को व्यक्ति तथा समाज—दोनों के विकास के लिए महत्वपूर्ण समझते हैं। मानव-जीवन में यात्राओं तथा प्रेम-व्यवहार के महत्व को स्वीकार करते हैं। वे मानव के लिए साम्यवादी समाज की स्थापना में विश्वास रखते हैं। समाज को मृत रूढ़ियों से मुक्त देखने की उनकी अदम्य कामना है। राहुल जी मनुष्य के कर्तव्य-पालन को मानव-जीवन का सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। इन विषयों पर राहुल जी द्वारा व्यक्त विचारों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

मानव-जीवन और राहुल जी

मानव जीवन से अभिप्राय है मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक की अवधि। विवेक और सभ्यता की गोद में निरन्तर विकसित होने के कारण मानव-जीवन अन्य प्राणियों के जीवन की अपेक्षा अधिक सारगर्भित और महत्वपूर्ण है। मानव-जीवन के मुख्य रूप दो हैं—व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन। व्यक्तिगत जीवन में मानव निजी आवश्यकताओ की पूर्ति करता हुआ निज की सुरक्षा और विकास के लिए प्रयत्न करता है। सामाजिक जीवन में वह समाज के विकास में अपना योगदान करता है। राहुल जी की, जीवन मे आस्था है। विकास के लिए मानव के सतत प्रयत्न में उनका दृढ़ विश्वास है। उनका विचार है कि प्रयत्न के विफल होने पर मनुष्य को निराश नहीं होना चाहिये। निराशा जीवन का चिह्न नहीं है। असफलताएँ व्यक्ति को बताती हैं कि अमुक कार्य के लिए उसे अभी और प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सफलता अवश्य मिलेगी, प्रयत्न रुकने नही चाहिये।[1]

राहुल जी जीवन को संसार की अन्य वस्तुओं के समान परिवर्तनशील मानते हैं। गतिशून्य और प्रशान्त जीवन को वे व्यर्थ समझते हैं। वे मानते हैं कि जीवन-सरिता का प्रवाह है जो सदैव नवीन बना रहता है। परिवर्तन मनुष्य को प्रायः प्रिय नहीं होते क्योंकि उनमें उसे नवीन, अनजानी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। परिवर्तन से मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये। मनुष्य तथा समाज के विकास के लिए परिवर्तन की सहज आवश्यकता है।[2]

जीवन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये, 'जीने के लिए' उपन्यास में राहुल जी लिखते हैं कि मनुष्य को उच्चादर्शों के लिए जीना चाहिये। उच्चादर्श वे हैं जिनसे

---

[1] जय योधेय, पृ० १०६; दिवोदास, पृ० ६२

[2] सिंह सेनापति, पृ० २२०

अधिकाधिक मनुष्यों का हित हो। उच्चादर्शों के लिए मनुष्य को बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिये। स्वदेश के लिए जीवन-त्याग से बढ़ कर जीवन का कोई और मूल्य नहीं। संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है इसलिए मनुष्य को मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिये। इस सम्बन्ध में देवराज ('जीने के लिए') कहता है—"जीवन को गंवाना ही है तो किसी अच्छे काम के लिए—और जिस देश ने इस शरीर को जन्म दिया उसकी करोड़-करोड़ सन्तानों के लिए अर्पण करने से बढ़कर इस जीवन का दूसरा उपयोग क्या हो सकता है ?"[1]

राहुल जी कहते हैं कि आजकल संसार में अधिकांश लोग स्वार्थी हैं। उन्हें केवल अपना सुख और विकास ही प्रिय है। अपने लाभ के लिए वे समाज का बड़े से बड़ा अनर्थ करने को तत्पर रहते हैं। दूसरों का उत्कर्ष उन्हें असह्य है, वे केवल अपने हितों की चिन्ता रखते हैं। राहुल जी का विचार है कि स्वार्थी लोगों से समाज को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता है। संसार को सुखमय बनाने के लिए मनुष्य को स्वार्थ का त्याग करना होगा। स्वार्थ से बचने का सरलतम उपाय यह है कि मनुष्य परहित के लिए जीना सीखे। दूसरों के हित में अपना हित समझे। ऐसा करने से समाज का जीवन सुखमय बनेगा और मनुष्य स्वयं भी चित्त में शान्ति का अनुभव करेगा।[2]

मानव-जीवन और यात्रा

मानव-जीवन, एक लम्बी 'यात्रा' है। जीवन-यात्रा के अन्तर्गत मानव अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। अनुभव-प्राप्ति के अनेक साधनों में से यात्रा अर्थात् देश-विदेश का भ्रमण भी महत्वपूर्ण है। राहुल जी के अनुसार देश-विदेश के भ्रमण से मनुष्य असीम अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों से मनुष्य की ज्ञान-परिधि विस्तृत होती है। ये अनुभव मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में सहायक सिद्ध होते हैं।

राहुल जी का मत है कि यात्रा मनुष्य को उदास नहीं होने देती है। समाज में मनुष्य को नाना प्रकार की विषमताओं का मुँह देखना पड़ता है। इनसे उसका मन खिन्न रहता है। प्रकृति सभी पर्यटन-प्रेमियों को समानरूप से प्रसन्नता का वितरण करती है। यात्री, प्रकृति के साहचर्य में सांसारिक दुःख-चिन्ताओं को भूल जाता है और आन्तरिक सन्तोष का अनुभव करता है। राहुल जी कहते हैं कि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को देश-विदेश की यात्राओं के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिये।

राहुल जी स्वयं यात्रा-प्रेमी हैं। उनके उपन्यासों के नायक और मुख्यपात्र यात्रा-प्रेमी हैं। इसीलिये उनके उपन्यासों में देश-विदेश की यात्राओं का सजीव वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है।

---

१ जीने के लिए, पृ० १४७

२ विस्मृत यात्री, पृ० ३०

मानव-जीवन और प्रेम

राहुल जी अनीश्वरवादी हैं। उनका ईश्वर के अस्तित्व तथा आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं है। इन विषयो से सम्बन्वित राहुल जी के विचारों पर विस्तृत चर्चा इसी अध्याय में कुछ आगे की जाएगी। पर सामान्यत: स्वीकृत मतानुसार विभिन्न स्वरूपों में विचरण करने वाली सभी आत्माएँ एक महान् सत्ता परमात्मा के अंश हैं। स्वार्थ-भावना और अज्ञान के कारण ये आत्माएँ परस्पर अपने को भिन्न समझती है। इस विभिन्नता को दूर कर, आत्माओं को एकता में बांधने वाला एक अदृश्यसूत्र सभी आत्माओं में विद्यमान है। वह सूत्र है प्रेम का।[१] प्रेम का मानव-जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेम की परिभाषा देते हुये पं० रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि 'विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ, वह सात्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते है।"[२] किसी वस्तु के प्रति विशेष आकर्षण होने और उससे भी अच्छी वस्तु सामने आने पर भी पहली वस्तु के प्रति उसी प्रकार का आकर्षण बना रहना प्रेम है। लोभ किसी वस्तु के प्रति होता है परन्तु प्रेम किसी प्राणी या मनुष्य के प्रति।

राहुल जी ने प्रेम को जीवन का स्वाभाविक 'रस' माना है। प्रेम, जीवन में आनन्द का संचार करता है। प्रेम जीवन से निराश व्यक्ति में स्फूर्ति भरता है। प्रेम प्रेमियों को कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने के लिये उत्साहित करता है। 'जीने के लिए' उपन्यास में, देवराज और जेनी ब्राउन, पति-पत्नी, अपने आदर्श-प्रेम द्वारा इस धारणा का समर्थन करते हैं। प्राय: देखने में आता है कि विवाह हो जाने पर पति-पत्नी, अन्य लोगों को भुलाकर, अपने सुखमय-जीवन का अधिक ध्यान रखते हैं किन्तु देवराज और जैनी का विवाह एक दूसरे को कर्तव्यपथ से विचलित नहीं करता है। एक साथ न रह कर वे अपने-अपने देश में अपने-अपने कर्तव्य को निभाते रहते हैं। देवराज भारत मे स्वतन्त्रता-आन्दोलनों में भाग लेता है और जैनी यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय सेना में भर्ती होकर अपने कर्तव्य का पालन करती है। ये दोनों दाम्पत्य जीवन के प्रेम और सुख की अपेक्षा देश के प्रति अपने कर्तव्यों को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं।[३] राहुल जी उस प्रेम को, जो मनुष्य को उसके कर्तव्य और आदर्श से विचलित करे, त्याज्य समझते हैं।[४]

प्रेम का स्वरूप निर्धारित करते हुये राहुल जी 'जय यौधेय' में लिखते हैं कि प्रेम आत्मा का उत्थान करता है। प्रेम मनुष्य की स्वार्थपरता को समाप्त करता है। यह संकीर्ण अपनत्व की सीमा को तोड़ने की शक्ति देता है। जातिप्रेम, विश्व-प्रेम इसी

---

१ उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० २७०-२७१
२ पं० रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि प्रथम भाग—'लोभ और प्रीति', से उद्धृत।
३ जीने के लिये, पृ० १९८-१९९
४ सिंह सेनापति, पृ० ८५

उत्कृष्ट प्रेम के रूप हैं। ऐसी स्थिति में पहुँच कर मानव सारे संसार की रक्षा चाहता है, वह समस्त भेद-भाव को भूल जाता है।[१]

मानव और धर्म

समाज के सुव्यवस्थित संचालन के लिए नियमों का विकास होता है। ये नियम परम्परानुसार रूढ़ियों का रूप धारण कर लेते हैं। परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर भी लोग, परम्परा के प्रेमवश, रूढ़िवादी धर्म का अन्धानुकरण करते रहते हैं। राहुल जी ऐसे धर्म के कटु-आलोचक हैं। उनका मत है कि संसार की अन्य सभी चीजों के समान धर्म भी परिवर्तनशील है। समाज की परिस्थितियों के बदलने पर, तदनुसार धर्म का रूप भी बदलना चाहिये। राहुल जी, परलोकवाद, पुनर्जन्म, ईश्वरोपासना आदि विषयों से सम्बन्धित धार्मिक विश्वासों में आस्था नहीं रखते हैं। वे ऐसे धर्म को मानवता के उत्थान में, बाधक और सभ्यता के विकास के लिए घातक समझते हैं। उनका मत है कि परलोक वाद और पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार लोगों को वर्तमान जीवन के प्रति उदासीन एवं अकर्मण्य बना देते हैं। लोग ऐहिक जीवन को सुधारने की अपेक्षा, दूसरे जन्म के सुखों का स्वप्न देखते रहते हैं। राहुल जी ने धर्म को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा है। वे धर्म को 'कर्तव्य' के अर्थ में लेते हैं और मानव मात्र के हित को मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य अर्थात् धर्म समझते हैं।

संसार के अधिकांश धर्म, ईश्वर की सत्ता अथवा किसी पारलौकिक शक्ति को स्वीकार करते हैं। इन धर्मों के अनुसार इस संसार का संचालन करने वाली कोई एक अलौकिक शक्ति है। राहुल जी ऐसे विचारों को भ्रामक समझते हैं। वे धर्म के लिए, ईश्वर की कल्पना की आवश्यकता नहीं समझते हैं। उनका कहना है कि बौद्धमत और जैनमत ईश्वर की सत्ता नहीं मानते हैं पर फिर भी वे धर्म हैं।[२] कोई कार्य केवल एक कारण से नहीं होता, अपितु कारण-समुदाय से होता है। ऐसी अवस्था में. अकेला ईश्वर संसार को बनानेवाला नहीं हो सकता।[३] फिर संसार में परिवर्तन कैसे और किन कारणों से होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये राहुल जी कहते हैं कि परिवर्तन विश्व का स्वाभाविक गुण है। इसके लिए किसी कर्त्ता या ईश्वर की आवश्यकता नहीं। ईश्वरवाद की निन्दा करते हुये राहुल जी 'जय यौधेय' में लिखते हैं कि ईश्वर की कल्पना राजाओं और महाराजाओं ने स्वार्थ के लिए की है। वे ईश्वर की निरंकुशता की आड़ में अपनी निरंकुशता को छिपाए रखना चाहते हैं।[४]

राहुल जी हिन्दू धर्म के 'परलोकवाद' के कटु-आलोचक हैं। हिन्दुओं के परलोकवाद के अनुसार आत्मा अमर है। यह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतार कर, नए वस्त्र धारण करता है उसी

---

१ जय यौधेय, पृ० ११६
२ राहुल सांकृत्यायन—वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ४७
३ वहा, पृ० ८२
४ जय यौधेय, पृ०

प्रकार आत्मा एक शरीर का अन्त होने पर दूसरा शरीर धारण करती है। अगले जन्म में, मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार, मनुष्य, पशु, पक्षी अथवा किसी अन्य योनि में शरीर प्राप्त करता है। पुनर्जन्म के बाद, जीव जिस नये शरीर को प्राप्त करता है वह उसका परलोक होता है। राहुल जी परलोकवाद सम्बन्धी इन मान्यताओं में आस्था नहीं रखते हैं। वे आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म तथा परलोकवाद के सिद्धान्तों को भ्रामक समझते हैं। 'जय यौधेय' उपन्यास में परलोकवाद की निन्दा करते हुये वे लिखते हैं कि परलोकवाद धोखे की टट्टी है। निरंकुश शासकों तथा स्वार्थी लोगों ने दूसरों को अन्धकार में रखने के लिए परलोकवाद की कल्पना की है मरने के बाद भी जीवित रहने की कल्पना ने, परलोकवाद को जन्म दिया है। 'जय यौधेय' का नायक जय परलोक की आलोचना इन शब्दों में करता है। "परलोकवाद के लिए एक क्षण भी देना मैं उसे जीवन का अपव्यय समझता हूँ और जो कोई ऐसा अपव्यय करता है, उसे मैं बेसमझ, धूर्त या पागल समझता हूँ।[1] राहुल जी का मत है कि पुत्र पिता का परलोक है और पुत्र ही पिता का पुनर्जन्म है। पिता मरने से पहले अपने शरीर और मानसिक संस्कार का एक अंश माता के शरीर में स्थापित करता है। माता उसमें अपना अंश मिलाती है और नौ मास गर्भ में रख कर उसे शिशु के रूप में अगले लोक, अगली पीढ़ी के लिए देती है। यही पिता का परलोक है और पुनर्जन्म है। राहुल जी का विचार है कि ऐसे परलोक के मानने में किसी को धोखा देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे परलोक के मानने से हम इस लोक की ओर से आँखें न मूँद कर इसी संसार को अच्छा बनाने के लिए प्रयत्न करेंगे।[2]

परलोकवाद के स्थान पर राहुल जी ने लोकवाद की स्थापना की है। उनका मत है कि परलोक की कल्पना पर जीवित रहने की अपेक्षा इसी लोक को सुखमय बनाना चाहिये। वर्तमान जीवन का वैयक्तिक तथा सामाजिक विकास में अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिये। परलोक को सुखी बनाने के लिए इस जीवन में उपवास और तपस्या के कष्टों को झेलना, बुद्धिमत्ता नहीं है। वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने के लिए संसार की सभी चीजों का उपभोग करना चाहिये। उनके उपन्यासों से 'खाओ, पियो, मौज करो' के भोगवादी सिद्धान्त की पुष्टि होती है।[3]

राहुल जी चाहते हैं कि मनुष्य संसार के सभी उपभोगों का आस्वादन करे क्योंकि सभी चीजें मनुष्य के उपभोग के लिए बनी हैं। मांस-भक्षण को वे निन्द्य नहीं समझते हैं। इसका सतर्क समर्थन करते हुये वे एक स्थान पर लिखते हैं—"अपने राम ने तो जिस दिन मनुस्मृति में पढ़ा कि शूकर-मांस के पिंड से पितर वर्षों तृप्त रहते हैं, उसी दिन निश्चय कर डाला कि पितृ-ऋण से उऋण होना होगा और 'जो इच्छा करिहौ मनमाहीं, हरिप्रताप कुछ दुर्लभ नाहीं।' घरेल-बनैल दोनों से

---

[1] जय यौधेय, पृ० ११०
[2] वही, पृ० १११
[3] डा० गोपीनाथ तिवारी—ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १५१

अनेक बार तर्पण हो चुका है।"[1] राहुल जी के उपन्यासों के प्राय सभी पात्र मांस-भक्षण में रुचि रखते हैं। उपन्यासों में कई प्रकार के मांसयुक्त भोजनों की स्थान-स्थान पर चर्चा हुई है। कोई ऐसा उत्सव और त्यौहार नहीं, जिसमें अनेक प्रकार के मांस न पकाए गए हों। अतिथि-सत्कार के लिए मांस को आवश्यक समझा जाता है। राहुल जी के पात्र गोमांस और शूकर-मांस को बड़े चाव से ग्रहण करते है। भेड़-बकरियों के सद्योजात बच्चों के मांस को अतिस्वादिष्ट समझा गया है। मांस के पकाने के लिए समुचित प्रवन्ध न होने पर वे समूचे पशु को आग पर भूनते हैं और बड़े स्वाद से खाते हैं। मांस-भक्षण के वर्णनों को पढ़ते हुए पाठकों के मन में ग्लानि उत्पन्न हो जाती है पर राहुल जी को ऐसी चर्चा करते हुये, कोई संकोच नहीं होता है वरन् एक प्रकार का उल्लास अनुभव करते हैं।[2]

प्राचीन भारत के खान-पान की चर्चा करते हुए राहुल जी का ध्यान घी-दूध की ओर जाने की अपेक्षा 'मदिरा' की ओर अधिक गया है। अग्रोदका का कोई घर ऐसा नहीं, जहाँ मदिरा-पान न होता हो। लोग 'सूखी द्राक्षा' और 'कापिशेयी सुरा' का संग्रह करते हैं। आचार्य स्वयं मदिरापान करते हैं।[3] दोपहर के समय खेतों को मांस के साथ सुरा भेजी जाती है। अतिथि-सत्कार के लिए मदिरा को आवश्यक समझा जाता है। उत्सवों और समारोहों के समय मदिरा-पान अधिक मात्रा में किया जाता है। स्त्रियाँ मदिरा-पान में पुरुषों से होड़ करती हैं।[4]

मांस मदिरा का खान-पान तामसी कोटि का है। इनके प्रयोग से शरीर एवं इन्द्रियों को उत्तेजना मिलती है। मनुष्य की भोग-विलास में रुचि बढ़ती है। उसकी काम-वासना जागृत होती है। राहुल जी के अधिकांश पात्रों का खान-पान तामसी है। उनमें काम वासना की प्रबलता है। ये यौन सम्बन्धों में स्वच्छन्द हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों में ऐसे प्रसंगों का वर्णन निःसंकोच किया है। कारण यह है कि राहुल जी स्वच्छन्द भोग के पक्ष में हैं। वे मनुष्य को उसकी भोगवादी प्रवृत्ति के लिए पशु की अपेक्षा अधिक विकसित नहीं समझते हैं। वे एक पत्नी अथवा एक-पति विवाह-प्रथा को मनुष्यों में सामाजिक विषमता बढ़ाने का मूल कारण समझते हैं। अपने स्वच्छन्द भोगवादी सिद्धान्त की पुष्टि में, राहुल जी ने इतिहास से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। चौथी शताब्दी ईसवी में हिमालय की उपत्यका के ग्रामों में वसन्तोत्सव के समय घर की षोडसी को निःसंकोच अतिथि-सेवा में समर्पित करते दिखाया गया है।[5] राहुल जी के पात्र चुम्बनों का आदान-प्रदान निःसकोच करते हैं। बिना

---

[1] वैज्ञानिक भौतिकवाद, पृ० ४०

[2] देखिये इन वर्णनों के लिए सिंह सेनापति, पृ० १६४, १५३-१५४, २०९-२१०, ३५

[3] सिंह सेनापति, पृ० २४

[4] सिंह सेनापति, पृ० २१०-२११

[5] जय यौधेय, पृ० ८५

किसी संकोच के अश्लील परिहास किए जाते हैं। साधारण जन ही नहीं प्रतिष्ठित व्यक्ति भी ऐसे कार्यों में संकोच का अनुभव नहीं करते हैं। 'सिंह सेनापति' उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है। खेतों में काम करने के पश्चात दोपहर के भोजन से पूर्व सभी विद्यार्थी युवक-युवतियाँ एक साथ तालाब में पूर्णतया नग्न होकर स्नान कर रहे हैं और आचार्य तालाब के किनारे खड़े निःसंकोच टीका-टिप्पणी कर रहे हैं—'रोहिणी! तेरे पार्श्व में मेद (चर्बी) जम रहा है। सुमेध! तेरी पेंडुलियाँ पेशी-शून्य मालूम होती हैं। अनुरुद्ध! नितम्ब पर इतने माँस का बोझ क्यों ढो रहे हो? सरस्वती तो भैंस बनती जा रही है। देखो उसका पेट, जान पड़ता है निरन्तर गर्भिणी है।"[१] राहुल जी ने 'मधुर स्वप्न' में दिगम्बरा देवी अनाहिता के मन्दिर की प्रशंसा की है। वहाँ परिचारिकाएँ नंगी रहती हैं।[२]

इस प्रकार राहुल जी के उपन्यासों में मांस-भक्षण, मदिरा-पान और नर-नारियों के विलासी जीवन का निःसंकोच चित्रण हुआ है। आलोचकों ने इस चित्रण को राहुल जी की भोगवादी प्रवृत्तियों का परिणाम बताया है। उनका मत है कि इस प्रकार राहुल जी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति की मनमानी व्याख्या की है। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का विचार है—"कुछ बातें निःसन्देह आपत्तिजनक हैं। उदाहरण के लिए जिस उदारता से राहुल जी के पात्र एक दूसरे पर चुम्बनों की बौछार करते हैं वह अनैतिक न भी मानी जाय परन्तु अभद्र अवश्य है। वास्तव में रस की उद्-भावना करने का यह सस्ता उपाय इतने असंयम के साथ व्यवहृत किया गया है कि उससे अरुचि होने लगती है।"[३] डा० गोपीनाथ तिवारी ने राहुल जी के उपन्यासों के भोगवादी वातावरण की कटु आलोचना की है। उनका विचार है कि चुम्बन-आलिंगन द्वारा पाठकों की सस्ती पाशविकता उभारकर राहुल जी ने अपने पाठकों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया है।[४] राहुल जी जब जीवित थे, उनका ध्यान लोगों ने उनके उपन्यासों की भोगवादी प्रवृत्ति की कटु आलोचना की ओर आकर्षित किया था। राहुल जी ने इन आलोचनाओं की कोई चिन्ता नहीं की। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—"मैं आज की संकीर्ण हिन्दू मनोवृत्ति की परवाह नहीं करता, मैं परवाह करता हूँ, सत्य की....।"[५] राहुल जी ने मानव जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताओं को सत्य माना है। वे खान-पान तथा यौन सम्बन्धों के विषय में अध्यात्मवाद अथवा परम्पराओं की संकीर्णता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। इन विषयों में वे मनुष्य को पूर्ण स्वच्छन्दता देने के पक्ष में हैं।

यह ठीक है कि प्रत्येक लेखक को अपने विचारों तथा सत्य की अभिव्यक्ति के

---

१ सिंह सेनापति, पृ० ३१
२ मधुर स्वप्न, पृ० ७१
३ डा० नगेन्द्र—विचार और अनुभूति से उद्धृत।
४ डा० गोपीनाथ तिवारी—ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृ० १५५
५ सिंह सेनापति, विषय-प्रवेश, पृ० १३

प्रकाशन के लिए स्वतन्त्रता होती है, पर कोरा यथार्थ ठीक नहीं। मानव पशु नहीं है। संस्कारी है। वह विवेकशील है। उसकी शारीरिक आवश्यकतायें पशुओं की आवश्यकताओं से मिलती हैं पर मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संयम से काम लेना पड़ता है। समाज में रहते हुये उसे प्रतिबन्धों को स्वीकार करना पड़ता है। देश की संस्कृति का ध्यान रखना पड़ता है। भारत में खान-पान सम्बन्धी तथा स्त्री-पुरुषों के स्वच्छन्द जीवन सम्बन्धी उतनी स्वतंत्रता नहीं देखने में आती जितनी कि पाश्चात्य देशों में। राहुल जी यौन सम्बन्ध तथा खान-पान में संस्कार के पक्ष में नहीं हैं। इस विषय में वे मनुष्य को पशुवत् मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में 'भोगवादी वातावरण' उपस्थित किया है। लेखक को अपने विचारों के प्रकाशन का ही नहीं समाज के हित का भी ध्यान रखना चाहिये। राहुल जी ने समाज के हित का ध्यान रखने की अपेक्षा अपने विचारों के प्रकाशन का ध्यान अधिक रखा है। मांस-भक्षण, मदिरा-पान, चुम्बनादि के सांकेतिक उल्लेख की अपेक्षा इन विषयों की यत्रतत्र विस्तृत चर्चा करके राहुल जी ने अपनी भोगवादी प्रवृत्ति का प्रमाण दिया है। और अपने को लोगों की आलोचना का विषय बना लिया है।

सामाजिक रूढ़ियाँ

सामान्य हितों की पूर्ति के लिए एक साथ रहने वाले मनुष्यों के समूह को समाज कहा जाता है। समाज के जीवन को सुचारु बनाने के लिए कुछ नियम बनाए जाते हैं। समय बीतने पर ये नियम रीति-रिवाज और परम्पराओं का रूप धारण कर लेते हैं। जीवन की परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर इन सामाजिक रीतियों को बदलने की आवश्यकता होती है पर परम्पराओं के मोह-वश लोग इनको छोड़ना नहीं चाहते। समाज को कुरीतियों के अन्धानुकरण से बचाने के लिए समाजसुधारक आन्दोलन अथवा क्रान्ति की आवश्यकता होती है। साहित्यकार अपनी कृतियों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर टीका-टिप्पणी किया करते हैं। राहुल जी को सामाजिक कुरीतियाँ असह्य हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में ऐसी कुरीतियों पर कठोर प्रहार किये हैं।

आजकल जाति-पाँति को भारतीय समाज की सबसे बड़ी कुरीति माना जाता है। हमारे पूर्वजों ने समाज के सुव्यवस्थित प्रबन्ध के लिए वर्णव्यवस्था को स्थापित किया था और कर्मों के अनुसार लोगों को चार श्रेणियों में बाँटा था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। कार्य-विभाजन की यह प्रणाली अपनी उपयोगिता खोकर शनैः शनैः झूठे भेदभाव की गर्त मे जा पड़ी है। लोगों को जन्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कहा जाने लगा है। लोगों ने अपने कर्मों को भुला दिया है। वे एक दूसरे को द्वेष और घृणा से देखने लगे हैं। परस्पर झगड़े होने लगे हैं। जातिगत संकीर्णता का यह अभिशाप अब भी भारत में दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। राहुल जी भारतीय जाति-पाँति की संकीर्णता के कटु आलोचक हैं।

वे इसे भारत की प्रगति के मार्ग में बाधक समझते हैं। उनका कहना है कि इसने हमारी शक्ति को विभाजित कर दिया है, हमारे समाज की जड़ें खोखली कर दी हैं। जाति-पाँति की व्यवस्था के कारण हमने अपने को सभ्य देशों की दृष्टि में नीचे गिरा लिया है। राहुल जी के अनुसार भारत को शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के लिए यहाँ से जाति-पाँति का भेद-भाव मिटाना अत्यावश्यक है। जब तक जाति-पाँति की व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, भारत के विकास के लिए किये गये सभी प्रयत्न अपर्ण रहेंगे।[1]

मनुष्य की आदिम वृत्ति अविवेक और भय की है। उसकी इस प्रवृत्ति से लाभ उठाकर स्वार्थी लोगों ने भूत-पिशाचों और पीर-पैगम्बरों की पूजा की कल्पना की है। परिणामस्वरूप समाज में जन्त्र-मन्त्र, जादू-टौने, मनोकामना की पूर्ति के लिए मन्नतें मानना, मनोकामना के पूर्ण होने पर पशुओं की बलि चढ़ाना—आदि कुरीतियाँ समाज में फैली हुई हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों में इन कुरीतियों की निन्दा की है।[2] उनका विचार है कि विज्ञान के युग में ऐसी कुरीतियों में आस्था रखने से बढ़कर और मूर्खता क्या हो सकती है। स्वार्थी लोगों ने ऐसी कुप्रथाओं को अपनी आजीविका का साधन बना रखा है। ये लोग अशिक्षित मनुष्य से चढ़ावे आदि के रूप में मुद्रा तथा खाद्य-सामग्री प्राप्त करते हैं। ये लोग गरीब लोगों पर भार बन कर रहते हैं। राहुल जी का विचार है कि अशिक्षित लोगों को शिक्षा और ज्ञान के प्रसार द्वारा इन कुरीतियों से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त कराना चाहिये। ये कुरीतियां समाज को 'घुन' बनकर खोखला कर रही हैं।

राहुल जी ने बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाह की कुप्रथाओं को भारतीय समाज के लिये कलंक बताया है। अबोध-बालिकाओं का विवाह रुपये के लालच में, बूढ़े और अयोग्य पुरुषों से कर दिया जाता है। दूसरी ओर बाल-विधवाओं को आजीवन तपस्या करने के लिये विवश किया जाता है। इन कुप्रथाओं को राहुल जी पुरुषों द्वारा स्त्री जाति पर किये जाने वाले अत्याचारों की चरम सीमा मानते हैं। उनका मत है कि विवाह सम्बन्धी विषयों में पुरुषों की नहीं स्त्रियों की इच्छा का भी ध्यान रखना चाहिये। स्त्रियों को पशु समझ कर, किसी के भी पल्ले नहीं बांध देना चाहिये।

राहुल जी का विचार है कि समाज के पुनर्निर्माण के लिए लोगों को रूढ़ियों के अन्धानुकरण से बचाना होगा। राहुल जी अतीत का मूल्य तभी तक समझते हैं, जब तक वह भविष्य के विकास में सहायक है। उन्नतिपथ पर बढ़ते हुए पग को पीछे खींचने वाली परम्पराओं को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उनके अनुसार सामाजिक कुरीतियों का अन्धानुकरण, विज्ञान के युग में हास्यास्पद है। समाज को कुरीतियों से बचाने के लिए शिक्षा तथा वैज्ञानिक साधनों की सहायता लेनी चाहिये।

---

[1] जय यौधेय, पृ० २०६

[2] जीने के लिये, पृ० ६, २६

साम्यवाद

'साम्यवाद' शब्द अंग्रेजी के 'कम्युनिज्म' का पर्याय वाचक है जो लेटिन के 'कम्युनिस' शब्द से व्युत्पन्न है। यह शब्द सन् १८३४-१८३९ ई० में पेरिस के गुप्त क्रान्तिकारी संघटनों द्वारा गढ़ा गया था। साम्यवादी विचारधारा का चरम विकास 'मार्क्सवाद' में देखने को मिलता है। मार्क्स का दर्शन 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से प्रसिद्ध है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार सृष्टि का मूल सत्य 'परिवर्तन' है जो सदैव दो विरोधी शक्तियों के संघर्ष से होता रहता है। द्वन्द्व सिद्धान्त हीगेल के 'द्वन्द्वात्मक प्रत्ययवाद' अर्थात् 'डायलेक्टिकल आइडियलिज्म' से लिया गया है। हीगेल प्रत्यय के इतिहास में ही संघर्ष का इतिहास देखता था, किन्तु मार्क्स के अनुसार प्रत्यय गौण है और पदार्थ प्रधान। हीगेल से द्वन्द्व सिद्धान्त और जर्मन दार्शनिक फायरबाख से भौतिकवाद लेकर मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का शिलान्यास किया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की कुछ मूलभूत मान्यतायें हैं। इसकी प्रथम मान्यता यह है कि प्रत्येक वस्तु के विरोध उसी वस्तु में सीमित रहते हैं किन्तु वे कुछ काल तक दबे रहते हैं। इस परिस्थिति को 'वाद' (थीसिस) कहते हैं। इसकी द्वितीय मान्यता यह है कि कालान्तर में वाद-परिस्थिति का विरोध वे ही तत्व करने लगते हैं जो उसमें सन्निहित थे। इस परिस्थिति को 'प्रतिवाद' (ऐंटी-थीसिस) कहते हैं। तृतीय मान्यता यह है कि जब वाद और प्रतिवाद का संघर्ष होता है, तो एक तीसरी परिस्थिति का सृजन होता है, जो उन दोनों परिस्थितियों से भिन्न होती है और जिसमें दोनों परिस्थितियों के कुछ अच्छे अंश उपस्थित रहते हैं। इस परिस्थिति को 'संवाद', समन्वितवाद अथवा प्रतिवाद का प्रतिवाद (सिन्थीसिस) कहते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की चतुर्थ मान्यता यह है कि वाद से सम्वाद तक का विकास मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तन की ओर होता है।[१] इस प्रकार द्वन्द्व सिद्धान्त को विकास की दृष्टि से चार सूत्रों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) विरोधी तत्वों की सम स्थिति
(२) विरोधी तत्वों का संघर्ष
(३) नई समन्वित परिस्थिति का जन्म
(४) वाद से 'प्रतिवाद के प्रतिवाद' (सम्वाद) तक परिवर्तन

साम्यवाद, समाज में शोषक और शोषित, अभिजात और सर्वहारा,[२] पूँजीपति और श्रमिक, इन परस्पर-संघर्ष-रत दो वर्गों की सत्ता मानता है। मार्क्स के अनुसार साम्यवाद की स्थापना शोषित वर्ग के हाथों शोषक वर्ग के ध्वंस पर

---

१ हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५६१
२ समाज का निम्नतम श्रमिक वर्ग

होगी। शोषित अर्थात् व्यावसायिक श्रमवर्ग ही इस क्रांति के उपयुक्त शक्ति, साहस और बुद्धि रखता है। क्रान्ति के सफल हो जाने पर साम्यवाद की सृष्टि होगी।[1]

राहुल जी साम्यवादी हैं। उन्हें श्रमिकों तथा शोषितों से पूर्ण सहानुभूति है और शोषक वर्ग से अपरिमित घृणा है। मजदूर रात-दिन परिश्रम करता है पर उसे जो मजदूरी प्राप्त होती है, वह उसके द्वारा किये गये श्रम के बराबर नहीं होती। जिस धन पर मजदूर का नैतिक अधिकार होता है, उस पर पूँजीपति स्वयं अधिकार कर लेता है। शोषक वर्ग दूसरों के धन को हड़प कर विलासिता का जीवन व्यतीत करता है और दूसरी ओर लहू-पसीना एक करने वाले मजदूर पेट-भर भोजन के लिए तरसते हैं।[2] राहुल जी का विचार है कि आर्थिक विषमता के लिए किसी एक व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जब तक परिस्थितियों को बदला नहीं जायगा, आर्थिक विषमता समाप्त नहीं होगी। इसके लिए लोगों को उद्बुद्ध करना होगा। देश भर के श्रमिकों और शोषितों को एक होना होगा। एक दिन शोषकों का अन्त अवश्य होगा और भूमि पर स्वर्ग अवश्य उतरेगा।[3]

राहुल जी का विचार है कि साम्यवाद की स्थापना के लिए वैयक्तिक ईर्ष्या अथवा हिंसा से काम नहीं चलेगा।[4] आवश्यकता इस बात की है कि समाज की सभी वस्तुओं पर व्यक्तियों के स्थान पर समूह का—अर्थात समाज का अधिकार माना जाए। राहुल जी के अनुसार समाज से वैयक्तिकता के भाव को समाप्त करने का सब से सरल उपाय यह है कि विवाह-प्रथा को समाप्त कर दिया जाय। स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करें। सन्तानोत्पत्ति होती रहे, पर कोई किसी का स्थायी-रूप से पति पत्नी न हो। राहुल जी ने अपने ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति 'मधुर स्वप्न' में मज्दकियो के विचारों द्वारा की है। किन्तु परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण ईरान में मज्दकियों का आन्दोलन विफल रहा। राहुल जी का सम्मिलित-पत्नी का सिद्धान्त, वास्तव में, न मार्क्स के साम्यवाद से मेल खाता है और न बौद्धमत से। यह राहुल जी की अपनी ही कल्पना है। 'वैयक्तिकता' की भावना का निषेध केवल विवाह-प्रथा के निषेध से सम्भव नहीं है, उसके लिए भोगवादी जीवन-दर्शन का निषेध करना होगा जो राहुल जी को कभी स्वीकार नहीं है।[5]

राहुल जी को जन-शक्ति पर विश्वास है। उन्हें निश्चय है कि साम्यवाद की

---

1 हिन्दी साहित्य कोश—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ८४४
2 विस्मृत यात्री, पृ० ३८५
3 वही, पृ० ३७६
4 वही, पृ० ३७५
5 डा० सुषमा धवन—हिन्दी उपन्यास, पृ० ३७४ से उद्धृत।

स्थापना के लिए किये गये प्रयत्न विफल नहीं होंगे। ऐसा समय अवश्य आयेगा, जब सभी लोग समता का अनुभव करते हुए सुखमय-जीवन व्यतीत करेंगे।[१]

गणतन्त्र

राहुल जी मानव की स्वतन्त्रता और समानता के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि मानव, स्वार्थ-वश दूसरे मानव के साथ क्रूरता का व्यवहार करता है। अपने सुख के लिए मानव, मानव को परतंत्र बनाता है। यही भावना साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का मूल कारण बनती है और निरंकुश शासकों को दूसरे देशों की स्वतन्त्रता को हड़पने के लिए प्रेरित करती है। राहुल जी, साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के विरोधी हैं। उनके अनुसार साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम सीमा है।[२] पूँजीवाद में धनिक वर्ग केवल श्रमिकों का शोषण करता है। उनकी मजदूरी को हड़पता है। साम्राज्यवाद में, निरंकुश शासक, अपने राज्य की जनता का शोषण करने के साथ, अपनी विस्तारवादी नीति के कारण दूसरे राज्यों को हथियाने की चिन्ता में रहता है।

साम्राज्यावादी प्रवृत्ति रखने वाले राजाओं की कटु-आलोचना करते हुए राहुल जी लिखते हैं कि ये लोग कामुक और दुराचारी होते हैं। भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण विवेक खो बैठते हैं।[3] उन्होंने राजाओं को घृणा से 'रजुल्ले' कहा है। उनका विचार है कि 'रजुल्लो' की चाकरी करने की अपेक्षा भूखे मर जाना या जहर खा लेना अच्छा है।[४]

शासन की साम्राज्यवादी प्रणाली की निन्दा कर, राहुल जी ने गणतंत्रीय प्रणाली की प्रशंसा की है। उन्होंने इसे सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली सिद्ध किया है। वे लिखते हैं कि गणतंत्र अपने प्रत्येक व्यक्ति में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की भावना पैदा करता है, जबकि राजतंत्र सबको भेड बनाता है। इसका कारण राहुल जी यह बताते हैं कि गणतत्र मे वैयक्तिक भावनाओं का सम्मान किया जाता है पर राजतंत्र में लोगो की भावनाओं का दमन कर दिया जाता है, उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक विकास का अवसर नहीं दिया जाता। उनके उत्साह को कुचल दिया जाता है।[५] गणतंत्र शासन प्रणाली में लोगो को मताधिकार प्राप्त होता है। वे अपनी इच्छा से गण के सदस्यों का चुनाव करते हैं। गणतंत्र में गण के सभी लोगों की इच्छाओं का ध्यान रखा जाता है पर राजतंत्र में, राजा अपनी इच्छा को दूसरों पर थोपता है। गणतंत्र प्रणाली की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए, राहुल जी ने प्राचीन भारत के इतिहास से उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्राचीन भारत मे लिच्छवियों और यौधेयों के गण-शासित प्रदेशों में तत्कालीन राजाओं के राज्यों की अपेक्षा, राजनीतिक अवस्था

---

१ मधुर स्वप्न, पृ० १८५
२ जीने के लिए पृ० १९८
३ जय यौधेय, पृ० २६५
४ सिंह सेनापति, पृ० १९
५ जय यौधेय, पृ० ६६

अधिक सुव्यवस्थित थी। मार्ग अधिक सुरक्षित थे। स्त्री-पुरुषों के अधिकार समान थे। मानव-मानव से प्रेम करता था। लोगों का जीवन सुखी था।

राहुल जी, मानव को पूर्णतया स्वतंत्र देखना चाहते हैं। वे परतन्त्रता के जीवन को मानवता के लिए, अभिशाप समझते हैं। उनके विचारानुसार केवल गणतन्त्र ऐसी प्रणाली है जिसमें मानव, स्वेच्छानुसार स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकता है और अपना विकास कर सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में सभ्यता के विकास में, जितनी सहायता गणतन्त्र-प्रणाली से मिल सकती है, उतनी और किसी शासन-प्रणाली से नहीं। राहुल जी आदर्श समाज के लिए गणतन्त्रीय शासन-प्रणाली का अनुमोदन करते हैं।

राहुल जी के उपन्यासों का उद्देश्य

राहुल जी के उपन्यासों मे, अभिव्यक्त जीवन-दर्शन के विश्लेषण के उपरान्त उनके विभिन्न उपन्यासों के उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा।

'जीने के लिए' उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर सन् १९३९ ई० तक के भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। इसमें देश की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध भारतीय जनता द्वारा किये गये आन्दोलनों का उल्लेख है। कृषक-वर्ग का अपने अधिकारों के लिए जमींदारों से संघर्ष दिखाया गया है। समाज को पतन की ओर ले जाने वाली कुरीतियों (जाति पाँति के भेद-उपभेद एवं धार्मिक अंधविश्वास व रूढ़िवाद) पर चोट की गई है। सामाजिक कुरीतियों से रहित समाज की स्थापना की ओर संकेत किया गया है। उपन्यास के नायक देवराज के व्यक्तित्व में राहुल जी के व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

'सिंह सेनापति' में ईसा पूर्व ५०० के भारत के लिच्छवि गणतंत्र के सामाजिक जीवन की घटनाओं तथा पात्रों के आधार पर राहुल जी ने अपने अभीष्ट विचारों को अभिव्यक्त किया है। राहुल जी का व्यक्तित्व जो महात्मा बुद्ध और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों से प्रभावान्वित है, उपन्यास के नायक 'सिंह' के चरित्र में प्रतिमूर्त हुआ है। महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण आध्यात्मिक है और इसके विपरीत कार्ल मार्क्स का भौतिक तथा वैज्ञानिक। इन दोनों दृष्टिकोणो के अन्तर का विस्मरण करते हुये राहुल जी ने इन दोनों का समन्वय किया है। राहुल जी वास्तव में अतीत को मार्क्सवादी दृष्टि से देखना चाहते हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य प्राचीन भारत के जीवन में उन तत्वों को खोज निकालना है, जिनके द्वारा मार्क्सवादी दृष्टिकोण का समर्थन सम्भव है।

'जय यौधेय' में चौथी शताब्दी ईसवी के भारत की यौधेय जाति के साम्यवादी जीवन का चित्रण किया गया है। यौधेयों की गणतन्त्रीय शासनप्रणाली के वर्णन द्वारा उस व्यवस्था के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। 'परलोकवाद' और राजतन्त्र-प्रणाली की कटु-आलोचना कर, वर्तमान जीवन में बहुजनहिताय कार्यों में रत रहने का संदेश दिया गया है।

मधुर स्वप्न में पाँचवीं छठी शताब्दी ईसवी के ईरान के मज्दकी आन्दोलन का चित्रण किया गया है। मज्दकियों के साम्यवादी विचार राहुल जी के अपने विचार हैं। मज्दकियों का मधुर स्वप्न' साम्यवादी समाज की स्थापना का मधुर स्वप्न है। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण इसका अन्त हो जाता है।

'विस्मृत यात्री' के नायक नरेन्द्रयश की मार्क्सवादी विचार धारा में, राहुल जी की निजी मार्क्सवादी विचारधारा ध्वनित होती है। नरेन्द्रयश अपनी देश-विदेश की यात्राओं तथा दीनों और शोषितों के निरन्तर सेवा-कार्य के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सामाजिक असंगतियाँ एवं आर्थिक विषमताएँ मानव-जीवन को दुःखमय बनाती हैं। इन असंगतियों और विषमताओं का अन्त साम्यवादी समाज की स्थापना पर सम्भव हो सकता है। इसके लिए जन-जागरण एवं समाज-संगठन की आवश्यकता है। लोक हित के लिए वैयक्तिक संघर्ष के स्थान पर वर्ग-संघर्ष का समर्थन किया गया है।

'दिवोदास' में बारहवीं तेरहवीं शताब्दी ईसा पूर्व के सप्तसिन्धु (पंजाब) की आर्यजाति के जीवन का चित्रण किया गया है। आर्यों की अनार्यों पर विजय दिखाई गई है। आर्य सभ्यता के प्रसार और उत्कर्ष पर बल दिया गया है। ऋग्वेदिक आर्यों की सभ्यता[१] का चित्रण इस उपन्यास का मुख्य लक्ष्य है।

राहुल जी के उपन्यासों में अभिव्यक्त जीवन-दर्शन तथा उनके उपन्यासों के उद्देश्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि राहुल जी ने अपनी उपन्यास कला का उपयोग निश्चित उद्देश्यों की अभिव्यक्ति के लिए किया है। देश-विदेश की

---

[१] ऋग्वेद से आर्य-जाति के जीवन का परिचय प्राप्त करके आश्चर्य होता है कि अगणित वर्ष पूर्व आर्यों की सभ्यता कितनी विकसित थी। उनकी संस्कृति कितनी उच्च थी। वे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विषयों में कितने उन्नत थे। आर्यों का उद्घोष था—जिसका मन उदार नहीं है, उसका भोजन करना व अन्न उत्पादन करना वृथा है। जो न तो देवता को देता है, न मित्र को देता है प्रत्युत स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप खाता है—'केवलाघो भवति केवलादी।' आर्य लोग स्वार्थपरायण जीवन को पापमय और घृणित मानते थे।

आर्य सत्य के लिए सर्वस्व 'स्वाहा' करने को तत्पर रहते थे। वे अपने सामने असत्यवादी को देखना तक न चाहते थे। इसीलिए उन्हें अनार्यों से घृणा थी। सत्यप्रियता के समान आर्यों के अन्य गुण थे—उदारता, शुभ-संकल्प, निर्भयता, स्वावलम्बन, विश्व-प्रेम आदि। आर्यों को भौतिक उन्नति भी प्रिय थी पर अपनी आध्यात्मिकता को ठेस पहुँचा कर नहीं। आर्य लोग दान और दक्षिणा देने में अनुपम थे। अतिथिसेवक थे। आर्य जाति में आदर्श महिलाओं की प्रचुरता थी पर कुछ राजस और तामस स्त्रियाँ भी थीं। राहुल जी के उपन्यास 'दिवोदास' और 'हिन्दी ऋग्वेद' रामगोविन्द त्रिवेदी की भूमिका के आधार पर।

विविध परिस्थितियों से जो विशद अनुभव राहुल जी ने प्राप्त किया उसको उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। राहुल जी आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं का उन्मूलन कर एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते हैं जहाँ सभी सुखी हों, सभी के अधिकार समान हों, सभी श्रम करें। जाति पाँति के भेद का जहाँ नाम भी न हो, लोग धार्मिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वास से मुक्त हों। ऐसे समाज की स्थापना के लिए लोगों की आर्थिक विषमता को दूर करना होगा, आर्थिक क्रान्ति करनी होगी। क्रान्ति की सफलता के लिए संसार भर के श्रमिकों व शोषितों को जागृत एवं संगठित करने की आवश्यकता है। आर्थिक क्रान्ति से कुछ लोगों को हानि अवश्य होगी पर बहुजन के सुख के लिए यह नगण्य है। राहुल जी अनीश्वरवादी हैं, इसलिए उनका मत है कि मानव का, अपने विकास के लिए ईश्वर पर नहीं अपितु अपनी भुजाओं पर विश्वास होना चाहिये।

राहुल जी ने अपने उपन्यासों में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए नाटकीय विधि को अपनाया है। उन्होंने जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को घटनाओं तथा पात्रों की बात-चीत में छितरा दिया है। राहुल जी ने जहाँ अपने जीवन-दर्शन को अधिक स्पष्ट करना चाहा है, वहाँ वे प्रत्यक्ष विधि का लोभ सम्वरण नहीं कर पाये हैं। ऐसे स्थलों पर राहुल जी द्वारा या उनके पात्रों द्वारा को गई विचारों की अभिव्यक्ति कथा-प्रवाह में बाधक सिद्ध हुई है।[१]

---

[१] कृपया देखिये—

(क) जीने के लिए—(१) मोहनलाल के 'देश की स्वतंत्रता के मार्ग में विघ्न' विषय पर विचार, पृ० ५०-५१

(२) देवराज और उसके साथियों के मध्य 'राष्ट्रीय एकता के मार्ग में धर्म बाधक' विषय पर विस्तृत विचार-विमर्श, पृ० ३०९-३१०

(ख) 'सिंह सेनापति'—महात्मा बुद्ध द्वारा व्यक्त जीवन सम्बन्धी विचार, पृ० २७३

(ग) 'जय यौधेय'—जय तथा उसके आचार्य के मध्य परलोकवाद सम्बन्धी विचार विमर्श, पृ० ११०-११३

(घ) 'मधुर स्वप्न'—शाह कवात् व मज्दक के नव-समाज विषयक विचार, पृ० १३४-१४०

(ङ) 'विस्मृत यात्री'—नरेन्द्रयश के साम्यवादी विचार, पृ० ३७५, ३८५

पंचम अध्याय

राहुल जी की कहानियों का अध्ययन
(कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण एवं उद्देश्य के तत्वों की दृष्टि से)

इस अध्याय में राहुल जी की कहानियों का कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण तथा उद्देश्य की दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) राहुल जी की कहानियों का कथावस्तु की दृष्टि से विश्लेषण

राहुल जी द्वारा रचित कहानियों के निम्नांकित तीन संग्रह उपलब्ध हैं—

(१) सतमी के बच्चे

(२) वोल्गा से गंगा

(३) बहुरंगी मधुपुरी

उक्त तीन संग्रहों में क्रमशः दस, बीस व इक्कीस कहानियाँ हैं। इन इक्यावन कहानियों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

(१) चित्रण-प्रधान कहानियाँ

(क) 'सतमी के बच्चे' की समस्त कहानियाँ

(ख) 'वोल्गा से गंगा' की समस्त कहानियाँ

इन कहानियों में भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण को प्रधानता दी गई है।

(२) चरित्र-प्रधान कहानियाँ

'बहुरंगी मधुपुरी' की समस्त कहानियाँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इनमे मधुपुरी (मसूरी) के वातावरण की पृष्ठभूमि में सेलानियों एवं स्थायी निवासियों के चरित्र प्रस्तुत किये गये हैं।

राहुल जी की चित्रण-प्रधान कहानियाँ

कथा-सूत्र

(क) सतमी के बच्चे—इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में, राहुल जी ने, अपने समकालीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियो से पीड़ित, अपने जीवन अनुभव में आये व्यक्तियो के चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन कहानियो के कथा सूत्र इस प्रकार हैं—

(१) सतमी के बच्चे—पन्दहा ग्राम की सतमी अहीरिन घोर निधंनता में दिन काट रही है। उसका पति, उसे सपरिवार निःसहाय छोड़ कर, बगाल चला गया

है। सतमी के पाँच बच्चे हैं—चार बेटे और एक बेटी। उनको खिलाने के लिए, न उसके पास अन्न है और न उनकी चिकित्सा के लिए पैसे। भूख और बीमारी से ग्रस्त होकर, उसके चारों बेटे काल कवलित हो जाते हैं। उसकी बेटी सुखिया, ससुराल वालों द्वारा प्रदत्त यातनाओं से त्रस्त हो अपनी माँ के पास रहती है। सतमी अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है।

(२) डीह बाबा—'कनैला' ग्राम की 'भर' जाति का मुखिया 'जीता' सन् १८९७ ई० के अकाल के कारण शोचनीय दशा में है। दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई भुखमरी से विवश हो वह सपरिवार आसाम चला जाता है। वहाँ चाय के बागों में मजदूरी करने लगा है। आसाम में रहते हुये, जीता को चौंतीस वर्ष हो गये हैं पर अभी तक न वह अपने पितृग्राम को भूला है और न कुल के इष्टदेव 'डीह बाबा' को।

(३) पाठक जी—पाठक जी अठारह वर्ष की आयु में अपने घर से भागते हैं और हैदराबाद की सेना में, दस-ग्यारह वर्ष तक नौकरी करने के बाद, घर लौट आते हैं। उनका अपने नाती से बड़ा स्नेह है। वे उसे अपनी भूमि देना चाहते हैं। इसी विषय पर उनका अपने भतीजों से मनमुटाव हो जाता है। पाठक जी, अपना गाँव छोड़, दामाद के गाँव चले जाते हैं। वहाँ उन्हें लोगों के व्यंग्यवाण सहने पडते हैं। इसी समय उनका नाती घर से भाग कर साधु बन जाता है। पाठक जी का दुःख बढ़ जाता है और उनकी मृत्यु हो जाती है।

(४) पुजारी—पुजारी, धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। उनकी जीविका का मुख्य साधन खेती है। उनका अपने ज्येष्ठ-पुत्र से बहुत स्नेह है। वे उसे पढ़ाना चाहते हैं पर वह घर से भाग जाता है और साधु बन जाता है। इस घटना से पुजारी को मानसिक आघात पहुँचता है और उनका शरीरान्त हो जाता है।

(५) स्मृति ज्ञान कीर्ति—स्मृति ज्ञान कीर्ति एक भारतीय पण्डित हैं। भोट भाषा सीखने के लिए, भोट प्रदेश के एक ग्राम में, एक नौकर के रूप में रहते हैं। उनके अज्ञातवास का रहस्य खुलने पर भोट विद्वान उनका सम्मान करते हैं और संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद-कार्य में उनसे सहायता लेते हैं।

(६) जैसिरी—जैसिरी पन्दहा ग्राम का प्रतिभाशाली व्यक्ति है। अक्षर-ज्ञान से अपरिचित है पर 'बहुश्रुत' है—जो कुछ सुनता है उसे गुनता है और याद रखता है। शिक्षित समाज में उत्पन्न न होने के कारण उसकी प्रतिभा अविकसित रह जाती है। यदि उसे आधुनिक शिक्षा के साधन सुलभ होते, तो वह अपने समय का शिक्षा-विशेषज्ञ बनता।

(७) राजबली—पति की मृत्यु के उपरान्त राजबली की माता, निर्धनता से त्रस्त हो, अपने एकाकी पुत्र के साथ दामाद के घर चली जाती है। वहाँ राजबली को नौकर का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। तंग आकर, वह अकेला अपने पितृग्राम आ जाता है। यहाँ उसे अपने चचेरे भाइयों की सेवा करनी पड़ती है।

कड़ा परिश्रम करने पर भी, न उसे भर पेट भोजन मिलता है और न पारिवारिक स्नेह। अन्ततः सोलह वर्ष की आयु में रोग-ग्रस्त हो कर मर जाता है।

(८) **रामगोपाल**—शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त रामगोपाल धर्म-प्रचारक बनते हैं। बाद में अध्यापन-कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं। अपने सुख की अपेक्षा उन्हें अपने मित्रों के हित की चिन्ता अधिक रहती है। उनका मन प्रवासी भारतीयों की सेवा की ओर है। प्लेग के कारण अकस्मात् मृत्यु हो जाने से उनकी यह इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

(९) **धुरबिन**—धुरबिन में, एक नेता के सभी गुण हैं। निर्भीक और साहसी है। अपने मित्रों को खिलाने पिलाने में, वह खूब खर्च करता है। बढ़ते हुये खर्च को पूरा करने के लिए वह चोरी-डाके का आरम्भ करता है। शेखपुर के अहंकारी जगलाल पांडे को नीचा दिखाने के लिए वह उसके बैलों की चोरी करता है। जगलाल पांडे के झुकने पर धुरबिन प्रसन्न हो जाता है और उसके बैल लौटा देता है।

(१०) **दलसिंगार**—दलसिंगार पास के ग्राम की पाठशाला में पढ़ता है। उसकी माता के मन में, यह शंका है कि पढ़ना उसके परिवार में फलता नहीं। एक बार दलसिंगार सचमुच बीमार हो जाता है। उसकी माता के मन की शंका विश्वास में परिणत हो जाती है। स्वस्थ होने पर दलसिंगार फिर पाठशाला जाने लगता है। कुछ दिन पश्चात् वह पुनः रोगग्रस्त हो जाता है और उसका देहान्त हो जाता है। उसकी माता को यह निश्चय हो जाता है कि पढ़ने के कारण ही उसके पुत्र की मृत्यु हुई है।

(ख) **वोल्गा से गंगा**—इस संग्रह की बीस कहानियों में भारतीय आर्यों की आदिकाल से वर्तमान काल तक की सभ्यता के विकास को लक्ष्य किया गया है। इन कहानियों के कथा-सूत्र इस प्रकार हैं—

(१) **निशा**—(६००० ई० पू०)—आदिम युग के पुरुष-स्त्रियों का एक परिवार एक पर्वत-गुहा में ठहरा हुआ है। परिवार की जीविका आखेट पर निर्भर है। निशा परिवार की स्वामिनी है। उसका, परिवार के सभी पुरुषों से (जिनमें पुत्र भी सम्मिलित हैं) यौन सम्बन्ध है। निशा, परिवार के पुरुषों की दृष्टि में अपनी पुत्री लेखा की बढ़ती हुई महत्ता को सहन न कर उसको नदी में डुबाने का प्रयत्न करती है। इस कार्य में, द्वन्द्वस्वरूप दोनों वोल्गा नदी की भेंट हो जाती हैं।

(२) **दिवा**—(३५०० ई० पू०)—दिवा, निशा-जन की नायिका है। इस जन की जन-संख्या निरन्तर बढ़ रही है। यह जन अपने पड़ोसी उषा जन के मृगया क्षेत्र को हस्तगत करना चाहता है। दोनों जनों का युद्ध होता है। विजय निशा-जन की होती है। इस जन के सदस्य विजितों पर अमानुषिक अत्याचार करते हैं। यह जन अब इतना शक्तिशाली हो गया है कि कुरु आदि अन्य जन इससे भयभीत हैं।

(३) **अमृताश्व**—(३००० ई० पू०)—अमृताश्व कुरु कुल का युवक है और

मधुर पक्थ कुल की युवती है। दोनों का परस्पर प्रेम है। मधुरा का पिता अपनी पुत्री का विवाह अमृताश्व से कर देता है। अपने गुणों के कारण अमृताश्व कुरु कुल का महापितर (नेता) बनता है। इस उपलक्ष्य में कुरु लोग उत्सव मनाते हैं। इस अवसर से लाभ उठा, पुरु, कुरुओं के पशुओं का अपहरण करते हैं। अमृताश्व अपने बाहुबल से पुरुओं को पराजित एवं नष्ट करता है।

(४) **पुरुहूत**—(२५०० ई० पू०)—वक्षु नदी के दोनों तटों पर नीचे वाले भाग में स्थित मद्र और पर्शुओं का ऊपर वाले पुरुओं और मद्रों से वैमनस्य है। दोनों वर्गों में युद्ध होता है। पुरुहूत पुरुओं और ऊपर वाले मद्रों का सम्मिलित सेनापति है। वह शत्रुओं को पराजित करता है और उनका अन्त कर देता है।

(५) **पुरुधान**—(२००० ई० पू०)—सुमेध पचास वर्ष की आयु में, बीस वर्षीया उषा से विवाह करता है। सुमेध की मृत्यु पर उषा अपने चचेरे देवर पुरुधान की पत्नी बनती है। पुरुधान उषा और अन्य पुरु-नारियों की मान-रक्षा हेतु अनार्यों से युद्ध कर, उन्हें परास्त करता है।

(६) **अंगिरा**—(१८०० ई० पू०)—ऋषि अंगिरा आर्य जाति के विद्वान् हैं। वे अपने शिष्यों को आर्यत्व की रक्षा का संदेश देते हैं। उनके शिष्य, पाल तथा वरुण इस संदेश को कार्यान्वित करते हैं। वे आर्य सुमित्र को अनार्यों के प्रभाव से बचाते हैं।

(७) **सुदास**—(१५०० ई० पू०)—मद्रपुर (शाकला, स्यालकोट) की कुमारी अपाला और पंचाल जनपद का राजकुमार सुदास् परस्पर प्रेम करते हैं। अपाला सुदास् से विवाह करना चाहती है पर उसके साथ पंचाल जाने को तैयार नहीं होती है। वहाँ स्त्रियों को सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। सुदास् अपनी माता के दर्शनोपरान्त, वापस आ जाने का अपाला को वचन दे कर, पंचाल चला जाता है। माता की मृत्यु के उपरान्त सुदास् अपाला के घर पहुँचता है पर अपाला सुदास् की प्रतीक्षा में प्राण छोड़ चुकी होती है।

(८) **प्रवाहण**—(७०० ई० पू०)—प्रवाहण लोपा की बूआ का पुत्र है। प्रवाहण की माता उसे उसके मामा के पास वेदाध्ययन के लिये भेजती है। प्रवाहण और लोपा का बचपन का प्रेम परस्पर आकर्षण में परिवर्तित होता है। दोनों का विवाह हो जाता है। पंचाल प्रदेश का राजा बनने पर प्रवाहण राजभोगवाद के समर्थन में ब्रह्मवाद और पुनर्जन्मवाद को जन्म देता है। लोपा, प्रवाहण के विचारों की कटु आलोचना करती है।

(९) **बन्धुलमल्ल**—(४९० ई० पू०)—अपने विरोधियोंके कारण बन्धुलमल्ल मातृभूमि कुसिनारा को छोड़, अपने सहपाठी प्रसेनजित् की राजधानी श्री वास्ती चला जाता है। मल्ल के विरोधियों द्वारा कान भरे जाने पर प्रसेनजित् उसको उसके पुत्रों के विरुद्ध युद्ध में भेजता है। इस युद्ध में, वह पुत्रों सहित मारा जाता है। उसका भागिनेय 'दीर्घकारायण' अपने मामा का बदला षड्यन्त्र द्वारा प्रसेनजित् से लेता है। प्रसेनजित् को पदच्युत किया जाता है। वह इसी दुःख से मर जाता है।

(१०) **नागदत्त**—(३३५ ई० पू०)—नागदत्त तक्षशिला का प्रसिद्ध वैद्य है। वह पर्शुपुरी के सम्राट् की मरणासन्न बहन महाक्षत्रपाणी की चिकित्सा करता है और बदले में दासी सोफिया को प्राप्त करता है। वह उसे उसकी मातृभूमि एथेन्स पहुँचा देता है। सोफिया नागदत्त के प्रति उसके त्याग व पवित्र विचारों के लिए कृतज्ञता प्रकट करती है और उससे विवाह कर लेती है। मृत्यु पर्यन्त दोनों साथ रहते हैं।

(११) **प्रभा**—(५० ई०)—यवन-कुलोत्पन्ना प्रभा और प्रसिद्ध संस्कृत नाटककार अश्वघोष का परस्पर घनिष्ठ प्रेम है। अश्वघोष के पिता इस प्रेम सम्बन्ध के विरुद्ध हैं पर अश्वघोष को प्रभा से सम्बन्ध-विच्छेद करना असह्य है। वह प्रभा को अपने काव्य के लिये रचना-स्रोत मानता है। प्रभा अश्वघोष को शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आत्मिक प्रेम करने की प्रेरणा देती है। भौतिक शरीर के प्रति आकर्षण को वह हेय समझती है। अश्वघोष के लिये शाश्वत प्रेरणा-स्रोत बनने के लक्ष्य से वह अपने को सरयू की लहरों को समर्पित कर देती है। अश्वघोष प्रभा के इस बलिदान से प्रेरणा प्राप्त कर संस्कृत के महान् नाटककार के रूप में विख्यात होता है।

(१२) **सुपर्ण यौधेय**—(४२० ई०)—सुपर्ण अवन्ती (मालवा) का यौधेय कुमार वेद-वेदांगों का पूर्ण ज्ञाता है। वह गुप्तों के राज्य को दासवृत्ति-वितरण का कारण समझता है। उसे ब्राह्मणों के स्वार्थीपन और संसार के मायाजाल से चिढ़ है। वह यौधेय भूमि का उद्धार करने या फिर उसके निमित्त रेत के पदचिह्नों की भाँति मिट जाने का संकल्प करता है।

(१३) **दुर्मुख**—(६३० ई०)—हर्षवर्धन बाण की निन्दा करते हुए कहता है कि बाण उसका हितैषी नहीं है। बाण ने उसके विषय में जो कुछ लिखा है वह अतिशयोक्ति-पूर्ण है। बाण, हर्ष को दोषी ठहरावा है। यह कहता है कि हर्ष, प्रशंसा का इच्छुक होते हुये भी अपने को निःस्पृह प्रदर्शित करता है। उसके नाटकों को हर्ष, ने अपने नाम से प्रसिद्ध करवाया है। उसके प्रासादों की भव्यता श्रमिकों एवं शोषितों के उत्पीड़न पर स्थित है।

(१४) **चक्रपाणि**—(१२०० ई०)—कन्नौज का विलासी सम्राट् जयचन्द अपने भाई पृथ्वीराज से वैमनस्य रखता है। पृथ्वीराज की सहायता के बिना वह तुर्कों से युद्ध करता है और मारा जाता है। जयचन्द के बाद उसका पुत्र हरिश्चन्द्र तुर्कों से युद्ध करता है और घायल हो जाता है। वैद्यराज चक्रपाणि की चिकित्सा से वह स्वास्थ्य लाभ करता है।

(१५) **बाबा नूरदीन**—(१३०० ई०)—सम्राट् अलाउद्दीन खिल्जी भारतवर्ष में अपने राज्य को सुदृढ़ बनाने में तत्पर है। उसके राज्य में बाबा नूरदीन जैसे सूफी फकीरों के प्रभाव से हिन्दू-मुसलमान परस्पर प्रेम से रह रहे हैं। बाबा नूरदीन अलाउद्दीन की सराहना करते हुए कहते हैं कि उसने प्रजा पर से अधिकारियों

आतंक को समाप्त कर दिया है। उनका विचार है कि जब तक शोषकों का उन्मूलन नहीं होगा, मानव, मानव को भाई नहीं समझेगा।

(१३) सुरैया–(१६०० ई०)—मुगल सम्राट् अकबर की अभिलाषा है कि हिन्दू-मुसलिम जातियों के का रक्त समागम हो। उसकी यह प्रबलाकांक्षा उसके दरबारी अबुलफजल की पुत्री सुरैया और टोडरमल के पुत्र कमल के परस्पर अन्तर्जातीय विवाह द्वारा फलीभूत होती है। दुर्भाग्यवश कुछ समय उपरान्त कमल और सुरया एक समुद्री दुर्घटना में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

(१७) रेखा भगत—(१८०० ई०)—रेखा भगत उन किसानों में से एक है जो अँग्रेज कम्पनी के राज्य में जमींदारों के दुर्व्यवहार से पीड़ित हैं। एक दिन जमींदार का दीवान रेखा भगत को जमींदार के घर पर दो सेर दूध भेजने के लिए कहता है। रेखा भगत के ऐसा न करने पर जमींदार के आदेश से उसके सेवक रेखा भगत की पत्नी मंगरी के स्तनों से दूध निकालते हैं। इस अपमान और अत्याचार से रेखा भगत का खून खौल जाता है। प्रतिशोध-स्वरूप वह जमींदार और उसके सेवकों का वध कर देता है।

(१८) मंगलसिंह—(१८५७ ई०)—मंगलसिंह बनारस के महाराज चेतसिंह का पौत्र है। अँग्रेज पदाधिकारियों की सहायता से शिक्षा-प्राप्ति हेतु वह इंगलैंड जाता है। वहाँ मार्क्सवादी नेता कार्ल मार्क्स के सम्पर्क के फलस्वरूप वह साम्यवादी बनता है और भारत प्रत्यागमन पर यहाँ अपने विचारों का प्रचार करता है। साम्यवाद की स्थापना के लिए, वह भारत से अंग्रेजी शासन का उन्मूलन करना अनिवार्य समझता है। सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता युद्ध में, वह भाग लेता है और अवध के मोर्चे पर लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है।

(१९) सफदर—(१९२२ ई०)—लखनऊ का सुविख्यात बैरिस्टर सफ़दर, ठाट-बाट का जीवन त्याग, देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेता है। उस का मित्र शंकरसिंह उसका अनुकरण करता है। दोनों मित्र महात्मा गांधी के राजनीतिक विचारों का विरोध करते हैं। वे चर्खा-कर्घावाद को राजनीतिक जागृति का एक मात्र साधन नहीं समझते हैं। उनकी धारणा है कि क्रान्ति का शक्ति-स्रोत गांधी जी की विचारधारा मात्र नहीं वरन् जनता का संगठन है।

(२०) सुमेर—(१९४२ ई०)—सुमेर पटना का हरिजन युवक है। वह महात्मा गांधी की हरिजन सम्बन्धी नीति का उग्र विरोधी है। उसका मत है कि अछूत समझे जाने वालों की दशा महात्मा गांधी की ओर से हरिजन की संज्ञा पा जाने से नहीं सुधरेगी प्रत्युत शोषकों का अन्त होने से सुधरेगी। जापानी फासिस्तों को वह साम्राज्यवादी अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक शोषक समझता है। अंग्रेजों से निपटने से पूर्व वह जापानी फ़ासिस्तों का अन्त देखना चाहता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में वह अंग्रेजों की ओर से युद्ध करता है। वायुयान संचालक के रूप में सुमेर जापानी सेना को भारी क्षति पहुँचाता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है।

कथा विश्लेषण

सतमी के बच्चे और वोलगा से गंगा नामक संग्रहों की कहानियों के कथा-सूत्रों से स्पष्ट है कि ये रचनायें चित्रण-प्रधान हैं। विहंगम दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि ये रेखाचित्र हैं। इनके—पुजारी, पाठक जी, राजबली, रामगोपाल, दलसिंगार, सुदास, प्रवाहण, नागदत्त, बाबा नूरदीन, सुरैया, सफ़दर, सुमेर—जैसे व्यक्ति-परक शीर्षक हैं। इनमें पात्र अथवा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण किया गया है।[१] इनकी शैली वर्णनात्मक है। वस्तुतः ये रेखा-चित्र नहीं हैं। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इनमें रेखा-चित्र की अधिकांश विशेषताओं[२] का अभाव है। रेखाचित्र में अनुभूति की मार्मिकता अनिवार्य है। कहानी कल्पना पर आश्रित रहती है। इसमें अनुभूति की तीव्रता रेखाचित्र की अपेक्षा कम होती है। 'सतमी के बच्चे' और 'वोलगा से गंगा' की सभी कहानियों में रेखाचित्र जैसी अनुभूति की मार्मिकता नहीं है। इनमें पात्रों के चरित्र-चित्रण को गौण और परिस्थितियों के चित्रण को प्रधान स्थान दिया गया है। 'सतमी के बच्चे' की पुजारी, पाठक जी, रामगोपाल, जैसिरी आदि कहानियों तथा 'वोलगा से गंगा' की निशा, दिवा, अंगिरा, सुपर्ण यौधेय आदि कहानियों में पात्रों के आन्तरिक गुणों की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत करने की अपेक्षा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

रेखाचित्र में सांकेतिकता को अधिक महत्व दिया जाता है। 'सतमी के बच्चे' और 'वोलगा से गंगा' की कहानियों में इस गुण का प्रायः अभाव है। पात्रों के चरित्र-चित्रण सूक्ष्म व सांकेतिक न हो कर स्थूल और विशद हैं। उदाहरण के लिए, 'पुजारी' (सतमी के बच्चे) कहानी में पुजारी की उदार-हृदयता प्रमाणित करने के लिए तीन प्रसंगों—पुजारी का अपने हलवाहे चिनगी चमार के दाह संस्कार में सम्मिलित होना, लंगड़े बैल को न बेचना, धार्मिक विचारों में अन्ध-श्रद्धा न दिखाना—का चार पृष्ठों में चित्रण किया गया है।[3] 'प्रवाहण' (वोलगा से गंगा) कहानी में राजा प्रवाहण की राजभोगवादी वृत्ति का सांकेतिक चित्रण न कर इस विषय पर प्रवाहण और लोपा के मध्य आठ पृष्ठों में सम्वाद कराया गया है।[४]

रेखाचित्र अपेक्षाकृत अधिक वैयक्तिक कला है। कहानी में सामाजिकता अधिक होती है। 'सतमी के बच्चे' और 'वोलगा से गंगा' की कहानियों में सामाजिक परि-

---

[१] उदाहरण के लिए कृपया देखिये—
(क) सतमी के बच्चे—पृ० २३, ३६, ७७ व ६७
(ख) वोलगा से गंगा—पृ० ६०, ६६, १६२, २८४

[२] हिन्दी रेखाचित्र—उद्गम और विकास, कृपाशंकर सिंह, पृ० ११-१२

[३] सतमी के बच्चे, पृ० ४३-४७

[४] वोलगा से गंगा, पृ० १२२-१२६

स्थितियों के चित्रण को मुख्य और पात्रों के चरित्र-चित्रण को गौण महत्व दिया गया है। सतमी के बच्चे, डीह बाबा, राजबली, निशा, दिवा, बाबा नूरदीन, सुमेर आदि कहानियों में लेखक का ध्यान जितना सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के अंकन की ओर है उतना इन कहानियों के पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर नहीं है।

कहानी में एक विशेष गति रहती है। उसमें घटनाओं के कालक्रम का विकास होता रहता है। कहानी में काल-क्रम का तत्व जितना घटता जाता है उतनी ही वह रेखा-चित्र के निकट आती है।[1] उक्त दोनों की संग्रहों ही अधिकांश कहानियों में काल की गति है। कहानियों की घटनायें पात्रों के समस्त जीवन अथवा उनके जीवन के अधिकांश भाग से सम्बद्ध हैं। 'पाठक जी' (सतमी के बच्चे) में पाठक जी के जन्म से जीवनान्त तक की घटनाओं का उल्लेख है। 'प्रवाहण' (वोल्गा से गंगा) कहानी का सम्बन्ध प्रवाहण और लोपा के बचपन से उनके अन्तिम समय तक की घटनाओं से है। उक्त कारणों से 'सतमी के बच्चे' और 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों को चित्रण-प्रधान कहानियों की संज्ञा देना अधिक संगत है।

'सतमी के बच्चे' और 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों में राहुल जी ने भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण नवीन युक्ति द्वारा किया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण के माध्यम द्वारा वातावरण के चित्रण को उन्होंने अधिक कलात्मक एवं रसात्मक बना दिया है। सन् १८९७ ई० के अकाल के पश्चात् पन्दहा और कनैला के लोगों को अकथनीय संकट का सामना करना पड़ा। इस तथ्य का निरूपण राहुल जी ने सतमी और जीता की रसात्मक कहानियों द्वारा किया है। अठारहवीं शताब्दी में कम्पनी के राज्य में जमींदार किसानों के प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते थे। राहुल जी ने इस तथ्य को रेखा भगत की कहानी में रसात्मक रीति से प्रस्तुत किया है।

'सतमी के बच्चे' संग्रह की प्रायः सभी कहानियां राहुल जी के जीवन-अनुभव से गृहीत हैं। सतमी के बच्चे नामक कहानी में राहुल जी ने अपनी ननिहाल पन्दहा की सतमी अहीरिन की दयनीय आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। 'डीह बाबा' का जीता, उनके पितृग्राम कनैला की भर जाति का मुखिया है। 'पाठक जी' तथा 'पुजारी' में उन्होंने क्रमशः अपने नाना और पिता के जीवन-चरित्र प्रस्तुत किये हैं। 'जेसिरी' के जैसिरी से राहुल जी अपने बाल्यकाल में कहानियां सुना करते थे। 'दलसिंगार' में राहुल जी ने अपने रिश्ते के समवयस्क नाना दलसिंगार की जीवन-कथा प्रस्तुत की है। सातवीं, आठवीं व नौवीं कहानी के राजबली, रामगोपाल तथा बगलाल पांडे व सुरबिन राहुल जी के अनुभवगत पात्र हैं। इस संग्रह की 'स्मृति-ज्ञान कीर्ति' कहानी ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी के भारतीय पण्डित स्मृतिज्ञान कीर्ति की है।

---

[1] बा० गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० २०६

'सतमी के बच्चे' की सभी कहानियों में आर्थिक विवशता की घुटन है। सतमी के बच्चे भुखमरी से पीड़ित हो, समाप्त हो जाते हैं। जीता, भुखमरी से तंग आकर, नौकरी की खोज में सपरिवार आसाम चला जाता है। जैसिरी की ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा निर्धन परिवार में उत्पन्न होने के कारण अविकसित रह जाती है। खर्च पूरा करने के लिए रामगोपाल को जेल में पढ़ाने के अतिरिक्त ट्यूशनें करनी पड़ती हैं। बढ़ते हुये खर्च का सामना करने के लिए धुरबिन चोरी-डाके का काम आरम्भ करता है। पुजारी और पाठक जी की भी आर्थिक स्थिति अधिक सन्तोषजनक नहीं है।

प्रगति की दृष्टि से, मानव आज जहाँ है उस अवस्था तक पहुँचने के लिए उसे नाना प्रकार की कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों में मानव-समाज के विकास को लक्ष्य बनाया गया है। संग्रह का नाम 'वोल्गा से गंगा' सार्थक है। इस संग्रह की कहानियों में आर्यों के वोल्गा नदी (रूस) के तट के जीवन से उनके गंगा के मैदान में स्थित होने तक के जीवन की झाँकी है। प्रत्येक कहानी एक नवीन झाँकी का अनावरण करती है। इस संग्रह की प्रथम छः कहानियों में आर्यों के गुफा-जीवन, भारत-आगमन एवं राज्य-स्थापना से सम्बद्ध घटनाएँ हैं। अगली सात कहानियों में आर्यों के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विकास की कहानी है। चक्रपाणि, बाबा नूरदीन, सुरैया—इन तीन कहानियों में आर्य-संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का बोध होता है। अन्तिम चार कहानियों—रेखा भगत, मंगलसिंह, सफ़दर व सुमेर—में अंग्रेजी शासन काल की सामाजिक एवं राजनीतिक घटनायें हैं।

'वोल्गा से गंगा' की कहानियों के आधार के सम्बन्ध में राहुल जी लिखते हैं, लेखक की एक-एक कहानी के पीछे उस युग के सम्बन्ध की वह भारी सामग्री है, जो दुनिया की कितनी ही भाषाओं, तुलनात्मक भाषा विज्ञान, मिट्टी, पत्थर, ताँबे, पीतल, लोहे पर सांकेतिक व लिखित-साहित्य अथवा अलिखित गीतों, कहानियों, रीति-रिवाजों, टोटके, टोनों में पाई जाती है।[१] राहुल जी का यह कथन सत्य है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ कोरी कल्पना नहीं। इस संग्रह की प्रथम चार कहानियों—निशा, दिवा, अमृताश्व और पुरुहूत—में ६००० ई० पू० से २५०० ई० तक के आर्य-जीवन का चित्रण है। इनका सम्बन्ध प्रागैतिहासिक काल से है। इनमें कल्पना का तत्व होना स्वाभाविक है पर ये पूर्णतया कल्पनाजन्य नहीं। ये राहुल जी के इन्दु-यूरोपीय तथा इन्दु-ईरानी भाषा शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन का परिणाम हैं। इस सम्बन्ध में, भदन्त आनन्द कौसल्यायन का मत उल्लेखनीय है—"राहुल जी द्वारा रचित 'वोल्गा से गंगा' की प्रथम चार कहानियों के नाम हैं–निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत। उन चार कहानियों में ६००० ई० पू० से लेकर २५०० ई० पूर्व तक के

---

१ वोल्गा से गंगा—द्वितीय संस्करण पर दो शब्द।

समाज का चित्रण है। वह प्रागैतिहासिक काल है और ये कहानियाँ हैं। इसलिए यह तो मानी हुई बात है कि उन कहानियों में कल्पना का हाथ विशेष है, लेकिन वह केवल कल्पनाजन्य कृति नहीं है। उन कहानियों में जो-जो मार्के की बातें हैं वह सब राहुल जी के इन्दु-यूरोपीय तथा इन्दु-ईरानी भाषा शास्त्र विषयक अध्ययन का परिणाम हैं।"[1]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन के अनुसार—पुरुधान, अंगिरा, सुदास् और प्रवाहण—कहानियों के पीछे साहित्यिक प्रमाण हैं—वेद, ब्राह्मण, महाभारत, पुराण और बौद्ध ग्रन्थों के 'अट्ठकथा' नाम से प्रसिद्ध भाष्य।[2] राजा सुदास् विषयक प्रसंग ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। वह दानशील है।[3] वीर है। इन्द्र ने दरिद्र सुदास् से एक कार्य कराया था। प्रबल सिंह को छाग द्वारा मरवाया था। सारा धन सुदास् राजा को प्रदान किया था।[4] ये प्रसंग सुदास् कहानी (वोल्गा से गंगा) की सुदास् और अपाला सम्बन्धी प्रेम घटनाओं से भिन्न हैं। सुदास् कहानी की घटनाएँ राहुल जी की रचना ऋग्वेदिक आर्य में उद्धृत ऋचाओं[5] से भी भिन्न हैं। इसी प्रकार अंगिरा, पुरुधान, प्रवाहण से सम्बद्ध कथायें वेद-वेदांगों में उस रूप में विद्यमान नहीं हैं, जिस रूप में राहुल जी ने इनका उल्लेख किया है। बन्धुलमल्ल, नागदत्त और प्रभा नामक कहानियों से सम्बद्ध तथ्य क्रमशः बौद्ध-ग्रन्थों, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, व बुद्धचरित्र तथा सौदरनन्द नाटक में उपलब्ध हैं। सुपर्ण-यौधेय की कुछ सामग्री गुप्तकालीन अभिलेखों और कुछ रघुवंश, कुमारसम्भव, अभिज्ञान शाकुन्तल आदि ग्रन्थों पर आधारित है।[6] 'दुर्मुख' कहानी के आधार-स्रोत हर्ष-चरित और कादम्बरी हैं।[7] 'चक्रपाणि' से सम्बद्ध तथ्य नैषध तथा शिलालेखों व अभिलेखों पर आधारित हैं।[8] भदन्त जी ने नौवीं से चौदहवीं तक की प्रत्येक कहानी के लिए एक से अधिक ग्रन्थों को कथा स्रोत बताया है। वास्तविकता यह है इन कहानियों में जिन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का उल्लेख हुआ है, वे इतिहास तथा साहित्य में उपलब्ध तथ्यों के अनुकूल हैं पर कहानियों की घटनायें राहुल जी की कल्पना का परिणाम हैं।

बाबा नूरदीन, सुरैया, रेखा भगत, मंगल सिंह, सफ़दर और सुमेर—इन छः कहानियों की प्रामाणिकता सिद्ध करते हुये भदन्त जी लिखते हैं, "बाबा नूरदीन

---

[1] वही, पृ० ३८४ (परिशिष्ट)
[2] वही, पृ० ३८५ (परिशिष्ट)
[3] हिन्दी ऋग्वेद—भाषान्तरकार व सम्पादक, पं० रामगोविन्द त्रिवेदी, पृ० ६३
[4] वही, पृ० ७९५
[5] ऋग्वेदिक आर्य, पृ० ३७७, ३९३, ३९५
[6] वोल्गा से गंगा, पृ० ३८५
[7-8] के लिए कृपया देखिये वोल्गा से गंगा, परिशिष्ट, पृ० ३८६

से ले कर सुमेर तक छः कहानियाँ और हैं जिनका समय है १०वीं सदी से बीसवीं सदी तक। उन सब कहानियों के पीछे भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता है। लगभग वैसी ही जैसी इन कहानियों के पीछे।"[1] इन छः कहानियों में बाबा नूरदीन कहानी का सम्बन्ध खिलजी वंश के शासक अलाउद्दीन के शासनकाल से है। अलाउद्दीन अपने राज्य को शक्तिशाली बनाना चाहता था। राज्यविस्तार के अतिरिक्त उसने राज्य के सुप्रबन्ध की ओर भी ध्यान दिया। इस कहानी में अलाउद्दीन की शासन-नीति की जो चर्चा की गई है वह इतिहास-सम्मत है। 'सुरैया' कहानी का सम्बन्ध सम्राट अकबर के धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों से है। वह हिन्दुओं तथा मुसलमानों से समान व्यवहार करता था। हिन्दुओं व मुसलमानों के अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में था। सुरैया और कमल के अन्तर्जातीय विवाह द्वारा सम्राट् अकबर के इन्हीं विचारों का स्पष्टीकरण किया गया है। सम्राट् अकबर द्वारा व्यक्त विचार इतिहासानुकूल हैं पर कहानी की घटनायें राहुल जी की कल्पना से उद्भूत हैं। रेखा भगत, मंगल सिंह, सफ़दर, सुमेर—कहानियों की सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों का चित्रण अंग्रेजी शासनकाल की परिस्थितियों के अनुकूल है। अंग्रेजी शासन काल में भारतीय कृषकों व राजनीतिक नेताओं के प्रति कठोरता का व्यवहार किया जाता था। सफ़दर और सुमेर राहुल जी के समकालीन पात्र हैं। वे उनके जीवन अनुभव से गृहीत हैं।

राहुल जी की चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ

कथा-सूत्र

इस श्रेणी के अन्तर्गत राहुल जी के 'बहुरंगी मधुपुरी' संग्रह की कहानियाँ हैं। इनमें उन्होंने अँग्रेजों के साम्राज्यकाल की मधुपुरी (मसूरी) के निर्माण व विकास तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उसके ऐश्वर्यगत ह्रास का चित्रण किया है। संग्रह की कहानियों के कथा-सूत्र इस प्रकार हैं :—

(१) **बूढ़े लाला**—सत्तर वर्ष पूर्व, दस-बारह वर्ष की आयु में बूढ़े लाला हरियाना प्रदेश से अपने पैतृक ग्राम को छोड़कर मधुपुरी आये। मधुपुरी का निर्माण व विकास उनकी आँखों के सामने हुआ। पहले उन्होंने मार्टिन होटल की ठेकेदारी और फिर दुकानदारी की। प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध में उन्होंने खूब धन कमाया। अंग्रेजों के भारत से जाने के उपरान्त मधुपुरी को ह्रासोन्मुख होना पड़ा। उसका प्रभाव बूढ़े लाला पर भी पड़ा। किराया कमाने के लिए जिस मकान का निर्माण उन्होने ऋण लेकर करवाया था अब खाली पड़ा है। किसी किराये पर कोई उसे लेना नहीं चाहता। उनका बुढ़ापा इसी चिन्ता में व्यतीत हो रहा है।

(२) **हाय बुढ़ापा**—प्रमोदबाला का पति, एक सरकारी अफसर है। सोने-चाँदी का समुद्र उनके घर में लहरें मार रहा है। प्रमोदबाला और उसके पति का

---

[1] बोल्गा से गंगा, परिशिष्ट, पृ० ३८६

विधिवत् सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ है पर दोनों प्रायः अलग रहते हैं। प्रमोदवाला को पति से अलग रहना प्रिय है। यह ग्रीष्मकाल व्यतीत करने के लिये प्रतिवर्ष मधुपुरी आती है। शराब पीना, जूआ खेलना, होटलों में नृत्य करना—उसकी दिन-चर्या के मुख्य अंग हैं। बुढ़ापे के प्रभाव को छिपाने के लिये वह कई घंटे अपने बनाव-शृंगार में व्यतीत करती है। तरुण पुरुषों को आकर्षित करने के लिए यह पान-गोष्ठी करती है पर उसका बुढ़ापा उसे धोखा दे जाता है। तरुणियाँ उसके बनाव-शृंगार पर व्यंग्य करती हैं।

(३) कुमार दुरंजय—दुरंजय एक रियासती राजकुमार है। रियासतों के भारत राज्य में विलय का प्रभाव दुरंजय पर भी पड़ा है। उसका अधिकांश समय मधुपुरी में व्यतीत हो रहा है। विलासी-जीवन के कारण वह ऋणी हो गया है। अपनी आय को बढ़ाने के लिये वह मधुपुरी वाली कोठी के बदले में किसी अन्य राजकुमार से उसका कृषि-फार्म ले लेता है। इस सौदे में उसे केवल इतना सन्तोष है कि मधुपुरी के ऋणदाताओं के प्रतिदिन के तकाजे से उसका पीछा छूट गया है।

(४) मेम साहब—मेम साहब सेठ वर्ग की आधुनिक नारी है। वेशभूषा से वह भारतीय है पर आचार-विचार से पूरी मेम। वह प्रतिवर्ष अपने बच्चों के साथ ग्रीष्मकाल मधुपुरी में व्यतीत करती है। सेठ साहब मेमसाहब से अलग मैदानी नगर में रहते हैं। मेम साहब का रहन-सहन विलासी है। सात मास के मधुपुरी के जीवन में वह तीस-चालीस हजार रुपये खर्च करती है। जिन दुकानदारों से वह उधार लेती है उन्हें रुपयों की प्राप्ति के लिए लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

(५) महाप्रभु—टीका राम का जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था। शिवपुरी में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त की। धनी बनने के लिए अब वे 'महाप्रभु' बने हुए हैं। हरिद्वार में गंगा तट पर उनके उपदेश को सुनने के लिए श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है। महाप्रभु, श्रद्धालु स्त्रियों में से करमा नामक स्त्री की ओर आकर्षित होते हैं और वे उसे अपनी पत्नी बना लेते हैं। श्रद्धालु लोग महाप्रभु के इस कार्य की निन्दा न कर उनकी शक्ति (करमा) की भी पूजा करने लगते हैं।

(६) लिप्स्टिक—कुंजा की बहू मधुपुरी के एक वैश्य परिवार की वधू है। अंग्रेज और क्रिस्तानी सैलानी स्त्रियों का अनुकरण कर वह लिप्स्टिक का प्रयोग करने लगती है। गली-मुहल्ले की रूढ़िवादिनी स्त्रियाँ उसके इस अभिनय की कटु आलोचना करती हैं। लिप्स्टिक को सौन्दर्य-वर्धन और पति को आकर्षित करने का सरल उपाय समझ अन्य ललनायें भी कुंजा की बहू का अनुकरण करने लगती हैं। सैलानियों की नगरी मधुपुरी में ऐसे फैशनों का तीव्र प्रचार स्वाभाविक है।

(७) ठाकुर जी—एक राजा का अपनी पुत्री से बहुत प्रेम है। पुत्री, विवाह हो जाने पर भी अपने पिता के पास ही रहती है। वेशभूषा तथा चालढाल से तो वह पूरी यूरोपीय दिखाई देती है पर धार्मिक विचारों की दृष्टि से वह आधुनिक 'मीरा' है। उसका पिता उसके लिए मधुपुरी में ठाकुर जी का मन्दिर बनवा देता है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद राजाओं के ह्रास के साथ ठाकुर जी के भी बुरे दिन आ जाते हैं। उसकी पूजा में संकोच से काम लिया जाने लगा है।

(८) **रायबहादुर**—दयाचन्द, क्लर्क से वकील और फिर ठेकेदार बनता है। अंग्रेजों की अनन्य भक्ति द्वारा 'रायबहादुर' की उपाधि प्राप्त करता है। भारत से अंग्रेजों के प्रस्थान कर जाने के बाद रायबहादुर की आर्थिक स्थिति डगमगा जाती है। समय की नब्ज को पहचान कर वह कांग्रेस-भक्त बन जाता है। मधुपुरी में होटल खोल लेता है। आर्थिक दृष्टि से मधुपुरी में अब उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

(९) **गुरुजी**—एक मैथिल पण्डित आजीविका की खोज में, मधुपुरी पहुँचते हैं। ट्यूशनों पर संस्कृत पढ़ाने लगते हैं। रुपये जोड़ कर सौराष्ट्र से अपने लिए पत्नी ले आते हैं। उन पर मधुपुरी का रंग पक्का हो जाता है। मांस खाना उन्होंने अभी आरम्भ नहीं किया है। उन्हें डर है कि ऐसा करने से लोगों की उनके प्रति श्रद्धा न रहेगी। मधुपुरी में तीस वर्ष की नौकरी के बाद वे अपने पैतृक ग्राम चले जाते हैं।

(१०) **मीनाक्षी**—विशाल और सुन्दर आँखों वाली मीनाक्षी, एक आधुनिकतम राजकुमारी है। वेशभूषा और खान-पान में वह पूर्णतया पाश्चात्य है। विचारों की दृष्टि से वह रूढ़िवादी है। आयु ढलती जा रही है। विवाह अभी नहीं हुआ है। वह अपने सामन्तवर्ग से बाहर किसी सुयोग्य पुरुष से विवाह करना चाहती है पर इस प्रतीक्षा में है कि उस वर्ग की दूसरी तरुणियाँ ऐसे कार्यों में पहल करें।

(११) **गोलू**—गोलू मधुपुरी का मजदूर है। पिता द्वारा लोगों से लिये हुये ऋण को उतारने के लिए उसे कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। रिक्शा चलाते चलाते वह बूढ़ा हो जाता है। कम दिखाई देता है। उसकी पत्नी उसको छोड़ कर देवर को अपना पति बना लेती है। गोलू का दुःख बढ़ जाता है। वह जैसे तैसे जीवन को पूरा कर रहा है।

(१२) **रूपी**—रूपी मधुपुरी के मूल निवासियों की निर्धन कन्या है। वह अपनी माँ मधुबाला' के संकेत पर शरीर बेचने का धन्धा आरम्भ करती है। उसके प्रेमियों में से, पाकिस्तान से आया हुआ एक दर्जी उससे विवाह कर लेता है। ज्ञात होने पर कि रूपी को और किसी का गर्भ है, दर्जी उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है। रूपी मधुपुरी में फिर अपना शरीर बेचने लगती है।

(१३) **राउत**—राउत पूर्वी भारत का एक अहीर है। आजीविका की खोज में वह सपरिवार मधुपुरी पहुँचता है। माली के रूप में आजीविका कमाने लगता है। बाद में सब्जी बेचने का काम करता है। इस धन्धे को अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप न समझ कर वह खेती का काम आरम्भ करता है। इस धन्धे को वह स्थायी रूप से अपना लेता है।

(१४) **कमलसिंह**—कमलसिंह गढ़वाल का रहने वाला है। मधुपुरी की म्युनि-

सिपलिटी में मजदूर है। बाद में वह लाइनमैन बन जाता है। उसके पाँच बच्चे हैं। उनसठ रुपये में परिवार का पेट पालना उसके लिए एक बड़ी समस्या है। बच्चों की बीमारी में उसका आर्थिक संकट बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में, उसकी बदली दूसरे स्थान को हो जाती है। घर का सामान बेच कर वह नये स्थान को जाने का प्रबन्ध करता है।

(१५) डोरा—डोरा, मधुपुरी के एक होटल के 'खानसामा' की पुत्री है। उसका विवाह एक गोआनी खानसामा के साथ होता है। डोरा का पति, उसे बहुत तंग करता है। वह उसे छोड़कर भाग जाता है। डोरा अपने दो बच्चों के साथ किसी अन्य पुरुष का पल्ला पकड़ती है। वह भी उसे छोड़कर चला जाता है। अब वह एक वृद्ध पुरुष के साथ रह रही है। उसके पाँच बच्चे हैं। सबका पेट पालना उसके लिए कठिन है। वह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है।

(१६) बिसुन—बिसुन किन्नर देश का रहने वाला है। खम्बा तरुणी के साथ भाग कर वह मधुपुरी आता है। पहाड़ी पर से गिरने के कारण वह लंगड़ा हो जाता है। चीजों के क्रय-विक्रय द्वारा जीविकोपार्जन करता है। अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद उसका काम मन्दा पड़ जाता है। काम की खोज में दिल्ली जाता है। वहाँ रोगग्रस्त हो कर मर जाता है।

(१७) पेड़ बाबा—मधुपुरी के एक वृक्ष पर गेरुये कपड़ों में एक साधु बैठा है। एक मास से उसने कुछ खाया पिया नहीं है। वृक्ष से उतर कर, वह एक पैर पर स्थिर हो भागवत का पारायण सुनता है। श्रद्धालुओं की भीड़ उसके दर्शनों के लिए उमड़ रही है। बैण्ड बाजों से उसका जलूस निकाला जाता है। अगले दिन दूसरे नगर पहुँचने पर साधु बाबा को बन्दी बना लिया जाता है। पुलिस को सूचना मिल चुकी होती है कि वह साधु के रूप में डाकुओं का सरदार है।

(१८) सुलतान—सुलतान मधुपुरी का धुनिया है। रजाई भरने का काम करता है। लोग उसके काम को सराहते हैं। पाकिस्तान बनने पर उसका लड़का और बहू वहाँ चले गये हैं पर सुलतान अपनी पत्नी सहित मधुपुरी में रह रहा है। काम न मिलने पर वह रिक्शा चलाने लगता है। बेकार बैठना उसे अखरता है।

(१९) मास्टर जी—मास्टर जी मधुपुरी के पास के एक गाँव के रहने वाले हैं। मिडिल पास हैं। प्रशिक्षण के उपरान्त सैनिक स्कूल के मास्टर बन कर वे आसाम जाते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर उन्हें इस नौकरी से हटना पड़ना है। मधुपुरी लौट कर वे एक पाठशाला में पढ़ाने लगते हैं। पैंसठ रुपयों के वेतन में नौ बच्चों का पेट पालना उनके लिए एक समस्या है। इस कारण वे प्रतिक्षण चिन्तित रहते हैं।

(२०) चम्पो—चम्पो, जमादार की लड़की है। वह अपने माता-पिता के साथ मधुपुरी के एक बंगले की 'छोटी सी कोठरी' में रह रही है। चम्पो का बंगले के मालिक की समवयस्का लड़की से प्रेम है। दोनों साथ खेलती हैं और मन बहलाती

है। मालिक की लड़की की कई सहेलियाँ उसके मन में चम्पो के विरुद्ध घृणा के भाव भर देती हैं। वह चम्पो से अलग रहने लगती है। चम्पो को यह असह्य है। वह अपनी सहेली की याद में, सिसक-सिसक कर प्राण दे देती है।

(२१) काठ का साहब—अंग्रेजों ने अपनी सुविधाओं के अनुसार, मधुपुरी का निर्माण किया। स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय अफसरों का मधुपुरी में राज्य हुआ। इनका आतंक अंग्रेजों से बढ़ कर है, पर गुणों की ओर से ये कोरे हैं। न इनमें कार्यक्षमता है और न ही अनुशासन-प्रियता। जनता से इन्हें सहानुभूति नहीं है। ये केवल अपने लोगों को लाभ पहुँचाते हैं।[1] ये सचमुच 'काठ के साहब' हैं।

कथा-विश्लेषण

बहुरंगी मधुपुरी की कहानियों के प्रस्तुत कथा-सूत्रों से स्पष्ट है कि ये, चरित्र चित्रण प्रधान कहानियाँ हैं। 'सतमी के बच्चे' एवं 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों की भाँति, ये रेखा-चित्र नहीं हैं। इनमें रेखाचित्र की मार्मिकता का अभाव है। चरित्र-चित्रण, सांकेतिक न हो कर स्थूल है। इनमें काल-क्रम का विकास है। बूढ़े लाला, महाप्रभु, रायबहादुर, गोलू, रूपी, राउत, कमलसिंह, डोरा, बिसुनसिंह, मास्टर जी, चम्पो आदि कहानियों का सम्बन्ध, पात्रों के प्रायः पूर्ण जीवन से है।

बहुरंगी मधुपुरी की समस्त कहानियाँ, राहुल जी के अपने जीवन-अनुभव का परिणाम हैं। राहुल जी, सन् १९५० ई० में कमला जी से विवाह करने के उपरान्त, कुछ काल मसूरी में रहे। उस नगरी के जीवन में उन्होंने विभिन्न उतार-चढ़ाव स्वयं देखे तथा अंग्रेजों के समय की और उनके बाद की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के अन्तर को अनुभव किया। मधुपुरी सम्बन्धी इन्हीं अनुभवों को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है।

बहुरंगी मधुपुरी की कहानियों को व्यक्तिविशेष के जीवन-चरित के रूप में ग्रहण करना उपयुक्त नहीं है। इस प्रसंग में यहाँ राहुल जी के शब्द उद्धरण योग्य हैं। "इस संग्रह में मेरी २१ कहानियाँ हैं, जिनमें पर्वतीय विलासपुरियों के जीवन को अंकित किया गया है। यद्यपि यह कहानियाँ काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक जीवन के आधार पर लिखी गई हैं पर यह भूल होगी, यदि इनमें से एक-एक को किसी एक व्यक्ति की जीवन-कथा मान लिया जाये। मैंने हरेक कहानी के चित्रण के लिए वस्तुतः बहुत से व्यक्तियों को लिया है और ऊपर से कुछ बातें कल्पित भी दी हैं।"[2] कहानियों के कुमार दुरंजय, सुल्तान, मीनाक्षी, प्रमोदबाला, मेम साहब, रूपी, डोरा, चम्पो आदि पात्र राहुल जी के अनुभव से गृहीत हैं। इन पात्रों अथवा इन जैसे

---

[1] काठ का साहब (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० २७५-२७६

[2] बहुरंगी मधुपुरी—दो शब्द

पात्रों के विषय में, राहुल जी जो ने कुछ देखा अथवा सुना, उसी के आधार पर उन्होंने इन पात्रों के जीवन-वृत्त प्रस्तुत किये हैं। पात्रों के चरित्र के विस्तृत-चित्रण तथा कथा के विकास के लिए, उन्होंने कल्पना का उपयोग किया है। उदाहरण स्वरूप, बूढ़े लाला नामक कहानी में बूढ़े लाला के सत्तर वर्ष के मधुपुरी के जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। राहुल जी ने बूढ़े लाला के जीवन की कुछ देखी तथा कुछ सुनी घटनाओं को कल्पना के आधार पर कहानी के रूप में विकसित किया है। गोलू नामक कहानी में गोलू के जीवन के पचास वर्षों से सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख है। गोलू के जीवन की कुछ घटनाओं को कहानी के रूप में विकसित करने तथा उसके चरित्र-चित्रण के लिए राहुल जी ने कल्पना का अवलम्बन लिया है।

बहुरंगी मधुपुरी की कहानियों में मधुपुरी के जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र हैं। कुमार दुरंजय नामक कहानी में विलासी राजकुमारों तथा 'हाय बुढ़ापा', 'मेम साहब', मीनाक्षी' में विलासी सैलानी स्त्रियों के जीवन-चरित्रों का अंकन किया गया है। इस संग्रह की बूढ़े लाला, गोलू, राउत एवं कमलसिंह, कहानियों में दुकानदारों, भारवाहकों तथा श्रमिकों के जीवन-वृत्त हैं। 'रूपी' और 'डोरा' में आर्थिक परिस्थितियों तथा 'चम्पो' में जाति-पाँति के भेदभाव से उत्पीड़ित मानव जीवन के चित्र हैं। 'गुरुजी' तथा 'मास्टर जी' में भद्र पुरुषों और 'महाप्रभु' एवं 'पेड़ बाबा' में ढोंगी साधु-महात्माओं के जीवन का परिचय दिया गया है। इन सभी कहानियों का मूल विषय मधुपुरी की आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण है पर उन्हें व्यक्त करने वाले पात्र विभिन्न प्रकार के हैं।

राहुल जी की कहानियों का कथा-शिल्प

राहुल जी की कहानियों के कथा-सूत्र एवं उनके विश्लेषण पर दृष्टिपात करने से निष्कर्ष इस प्रकार प्राप्त होते हैं। कहानी में कथा का महत्वपूर्ण स्थान है।[१] कहानी में मनोविश्लेपण के महत्व बढ़ जाने पर भी कथा की स्थिति पूर्ववत है। राहुल जी की कहानियों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उनमें निश्चित एवं क्रमबद्ध कथानक का अभाव है। अन्य तत्वों द्वारा उनकी सृष्टि हुई है। उदाहरणार्थ सम्वाद, जीवन-चित्रण आदि द्वारा। कथा-शिल्प की दृष्टि से कहानी की घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध होनी चाहिए किन्तु राहुल जी की कहानियों की घटनायें परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। पात्रों के चरित्र को विकसित करने के लिए अनेक घटनाओं एवं प्रसंगों का उनकी कहानियों में समावेश किया गया है। कथा-प्रवाह को रोककर राहुल जी पात्रों के विभिन्न गुणों की पुष्टि करने में उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन करने लगते हैं। उदाहरण स्वरूप, कुमार दुरंजय (बहुरंगी मधुपुरी) को कुत्ते पालने का व्यसन है। उसकी इस प्रवृत्ति से सम्बद्ध प्रसंग का तीन पृष्ठों मे उल्लेख किया गया है।[२] पुजारी (सतमी के बच्चे) की धार्मिक उदारता विषयक विशेषता के

---

[१] विस्तार के लिए कृपया देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय ३
[२] बहुरंगी मधुपुरी, 'कुमार दुरजय', पृ० ३३, ३५

समर्थन में उसके चिनगी चमार के दाह-संस्कार में सम्मिलित होने से सम्बद्ध प्रसंग का कहानी में समावेश किया गया है।[1] ऐसे प्रसंग राहुल जी की कहानियों के सहज प्रवाह में बाधक सिद्ध हुए हैं।

शिल्प की दृष्टि से कहानी विधा का कथानक आरम्भ होकर प्रायः किसी न किसी प्रकार के सघर्ष द्वारा क्रमशः उत्थान को प्राप्त होता हुआ 'चरम' अथवा तीव्रतम स्थिति को पहुँचता है। वहाँ कुतूहल अपनी चरम सीमा को पहुँच जाता है। इसके पश्चात कहानी का परिणाम या अन्त आता हैं, जिसमें पूरे तथ्य का उद्घाटन हो जाता है। चरम अर्थात् तीव्रतम स्थिति परिणाम को अधिक महत्वपूर्ण बना देती है।[2] राहुल जी की कहानियों में नाटकीयता का अभाव है। कथानक में आरम्भ, विकास, चरम, रहस्योद्घाटन जैसी स्थिति नहीं है। उदाहरण स्वरूप, ठाकुर जी (बहुरंगी मधुपुरी) नामक कहानी में किसी समस्या का आरम्भ विकास, चरम तथा रहस्योद्घाटन नहीं है। एक राजा को अपनी पुत्री से अत्यधिक स्नेह है। वह अपनी पुत्री के लिए उसके घर के सामने ठाकुर जी का मन्दिर बनवाता है। कथानक में इस विषय का विस्तार मात्र है। स्मृतिज्ञान कीर्ति (सतमी के बच्चे) कहानी में एक भारतीय पण्डित स्मृतिज्ञान कीर्ति की जीवन झाँकी है। भोट देश में अनेक कष्ट सहन करता हुआ वह वहाँ की भाषा सीखता है। कहानी मे विषय का वर्णन मात्र है। रहस्योद्घाटन जैसी स्थितियाँ नहीं हैं। राहुल जी की अन्य कहानियों के कथानक में संघर्ष तथा चरम स्थिति का अभाव है।

आधुनिक काल में उत्कृष्ट कहानी उसे माना जाता है जो रहस्याभिव्यक्ति के साथ समाप्त हो जाय।[3] राहुल जी की कहानियो में प्रायः इस गुण का अभाव है। 'सुरैया' (वोल्गा से गंगा) कहानी की मुख्य घटना सुरैया और कमल का अन्तर्जातीय विवाह है। विवाह के साथ कहानी समाप्त हो जानी चाहिए थी किन्तु ऐसा हुआ नहीं है। सुरैया और कमल, यूरोप यात्रा पर जाते हैं। वहाँ की सभ्यता की भारतीय सभ्यता से तुलना करते हैं। भारत लौटते समय समुद्र दुघटना में दोनों मृत्यु को प्राप्त होते हैं। विवाह के बाद की इन घटनाओं को राहुल जी ने अपने विचारों के प्रकाशन मात्र के लिए जोड़ा है। प्रभा (वोल्गा से गंगा) कहानी का अन्त प्रभा की मृत्यु के साथ हो जाना चाहिए था किन्तु राहुल जी ने कहानी को और आगे बढ़ाया है। प्रभा की मृत्यु के उपरान्त अश्वघोष बौद्ध-भिक्षु बनता है। वह बौद्ध एव यवन दर्शन के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त सस्कृत काव्य एवं नाटकों की रचना करता है। अश्वघोष के जीवन की इन दस वर्ष की घटनाओं को कथानक के साथ उपसहार रूप में जोड़ दिया गया है। इस प्रकार राहुल जी कथानक के अन्त को

---

[1] सतमी के बच्चे, 'पुजारी', पृ० ४६—४७

[2] बा०/गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० २०७

[3] डा० छविनाथ त्रिपाठी—कहानी कला और हिन्दी कहानियों का विकास, पृ० १६

इतना विस्तृत कर देते हैं कि पाठकों की कल्पना शक्ति के लिए कुछ करने को शेष नहीं रहता।

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार कहानी थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जानी चाहिए, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न हो। उसका पहला ही वाक्य पाठक के मन को आकर्षित कर ले और अन्त तक उसे मुग्ध किये रहे। उसमें कुछ चटपटापन हो, कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो और इसके साथ ही कुछ तत्व भी हो।[१] राहुल जी की अधिकांश कहानियाँ इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं। उनकी अधिकांश कहानियां लम्बी भूमिका के साथ आरम्भ होती हैं। डीह बाबा (सतमी के बच्चे) कहानी के कुल पृष्ठ तेरह हैं। यह कहानी आठ पृष्ठों की लम्बी भूमिका के बाद आरम्भ की गई है। भूमिका में भर जाति की उत्पत्ति व विकास का तथा कनैला ग्राम के निर्माण व विकास का लम्बा इतिहास प्रस्तुत किया गया है। कथानक की घटनाओं के आकार को देखते हुए इतनी लम्बी भूमिका अनावश्यक प्रतीत होती है। वोल्गा से गंगा की बीस में से दस[२] तथा बहुरंगी मधुपुरी की इक्कीस में से चौदह कहानियाँ[3] विशद भूमिका के उपरान्त आरम्भ की गई हैं। आरम्भ में ही नहीं कहानियों के कलेवर में भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विशद चित्रण हैं। सुदास् (वोल्गा से गंगा) कहानी में सुदास् व उसके पिता के मध्य राजतन्त्र की निकृष्टता तथा गणतन्त्र की महत्ता से सम्बद्ध विषयों पर चार पृष्ठों[४] में वाद-विवाद है। लिप्स्टिक (बहुरंगी मधुपुरी) में विमला और शैला के मध्य, समाज में स्त्रियों की स्थिति से सम्बद्ध विषयों पर बातचीत छः पृष्ठो[५] में फैली हुई है। राहुल जी की कहानियों में, इस अनावश्यक विस्तार के कारण वह आकर्षण नहीं है जिसकी ओर मुंशी प्रेमचन्द जी के उपरोक्त उद्धरण में संकेत दिया गया है।

"प्रेमचन्द से पहले हिन्दी कहानी घटनाप्रधान थी, नीतिवादी थी। प्रेमचन्द के साथ मनोवैज्ञानिकता को प्रश्रय मिला।"[६] राहुल जी का लेखनकाल प्रेमचन्द जी के बाद का है। उनकी कहानियों में घटनाओं की प्रधानता नहीं है। साथ ही उनमें वह मनोवैज्ञानिकता भी नहीं है जिसका संकेत प्रस्तुत उद्धरण में किया गया है। मुंशी प्रेमचन्द की भाँति राहुल जी की दृष्टि अपने पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व के चित्रण की ओर नहीं गई है। चरित्र-प्रधान कहानियों में राहुल जी का ध्यान पात्रों

---

१ मुंशी प्रेमचन्द—कुछ विचार, पृ० ३१

२ दस कहानियों के नाम हैं, निशा, अमृताश्व, पुरुहूत, सुदास्, प्रवाहण, बंधुमल्ल, नागदत्त, प्रभा, चक्रपाणि, सुरैया।

3 चौदह कहानियों के नाम हैं—बूढ़े लाला हाय बुढ़ापा, कुमार दुरंजय, मेम साहब, ठाकुर जी, गुरु जी, मीनाक्षी, राउत, कमलसिंह, बिसुन, पेड़बाबा, मास्टर जी, चम्पा, काठ का साहब।

४ सुदास् (वोल्गा से गंगा) पृ० ११२-११५

५ लिप्स्टिक (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० ७५-८०

६ राजेश्वर गुरु—प्रेमचन्द एक अध्ययन, पृ० २५१

की आकृति, वेशभूषा तक ही सीमित रहा है।[1] उन्होंने उनके आन्तरिक रहस्यों का उद्‌घाटन नहीं किया है।

जयशंकर प्रसाद जी के अनुसार सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना ही कहानी का उद्देश्य है।[2] सौन्दर्य से यहाँ अभिप्राय है जीवन-सत्य। कहानी, जीवन की एक झाँकी है। यह पाठकों की जिज्ञासा को उभारती है। राहुल जी की कहानियों में घटनाओं का इतना स्थूल एवं विशद वर्णन है कि पाठकों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती है। न ही उन्हें कहीं कल्पना का उपयोग करना पड़ता है। यही कारण है कि राहुल जी की कहानियाँ उस कोटि की नहीं हैं जिनको पढ़ने के लिए पाठक सदैव उत्सुक रहें और बारंबार उन्हें पढ़ें।

राहुल जी की कहानियाँ इतिवृत्तात्मक हैं। इनमें घटनाओं का ब्यौरामात्र अथवा जीवन-वृत्त है। जीवन जैसा बीत रहा है उसी की प्रतिलिपि इनमें विद्यमान है। समाज के सम्मुख किसी आदर्श को प्रस्तुत करने के निमित्त घटनाओं के बनाव-कटाव पर लेखक का ध्यान नहीं है। उदाहरण स्वरूप, हाय बुढ़ापा (बहुरंगी मधुपुरी) नामक कहानी में प्रमोदबाला के बनाव-शृंगार एवं विलासी जीवन का विशद वर्णन है। वह अपने पति के प्रति अन्यमनस्का क्यों है? क्या यह उचित है?—आदि विषयों की ओर लेखक का ध्यान नहीं है। इसी प्रकार राउत, कमलसिंह, मास्टरजी (बहुरंगी मधुपुरी), पाठक जी, जैसिरी, स्मृति ज्ञान कीर्ति (सतमी के बच्चे), प्रवाहण, पुरुधान (वोलगा से गंगा) पाठकों के जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर दिये गये हैं। इनमें किसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत नहीं किया गया है। वोलगा से गगा की 'दुर्मुख' एवं 'सुपर्ण यौधेय'—कहानियों को छोड़कर राहुल जी के तीनों संग्रहों की समस्त कहानियाँ वर्णनात्मक शैली में लिखी हुई हैं।

राहुल जी की कहानियाँ दुःखान्त और सुखान्त—दोनों प्रकार की हैं। घटनाओं के प्रभाव को अधिक मार्मिक और स्थायी बनाने के निमित्त राहुल जी ने अपनी कहानियों को दुःखान्त बनाया है। 'सतमी के बच्चे' और 'राजबली' (सतमी के बच्चे) कहानियाँ दुःखान्त हैं। इनमें सतमी के बच्चों व राजबली की भूखमरी के कारण मृत्यु हो जाने के करुणा-जनक चित्र हैं। पाठक जी और पुजारी के व्यक्तित्व को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए 'पाठक जी' और 'पुजारी' (सतमी के बच्चे) कहानियों को दुःखान्त बनाया गया है। संदेश को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भी राहुल जी ने अपनी कहानियों को दुःखान्त बनाया है। 'सुरैया' कहानी (वोलगा से गंगा) के अन्तर्जातीय विवाह के सन्देश को, मंगलसिंह (वोलगा से गंगा) के स्वतंत्रता के निमित्ति बलिदान विषयक सन्देश को तथा सुमेर (वोलगा से गंगा) के साम्यवादी

---

१ उदाहरण के लिए कृपया देखिये—हाय बुढ़ापा (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० २१; मीनाक्षी (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० १२२

२ विस्तार के लिए कृपया देखिये—प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय ३

संदेश को हृदयस्पर्शी बनाने के लिए कहानियों को दुःखान्त बनाया गया है। सुखान्त कहानियों की अपेक्षा राहुल जी की दुःखान्त कहानियाँ अधिक प्रभावोत्पादक एवं रसात्मक हैं। जिन पात्रों की मृत्यु दिखाई गई है वे सच्चरित्र एवं उच्चादर्शों के प्रतीक हैं। इनकी मृत्यु से पाठकों को हार्दिक आघात पहुँचता है। सहानुभूति से अभिभूत होने के कारण पाठक करुण रस का अनुभव करते हैं।

(ख) राहुल जी की कहानियों में पात्र और चरित्र-चित्रण

राहुल जी के पात्रों का वर्गीकरण

राहुल जी के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ सीमित हैं, अतः उनके पात्रों का चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण सम्भव नहीं है। यहाँ पात्रों पर उनके कथा से पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर विचार किया जा रहा है। राहुल जी की कहानियों के पात्र मुख्यतः दो प्रकार के हैं—

(१) घटनाओं के जन्मदाता
(२) परिस्थितियों द्वारा संचालित

प्रथम प्रकार के पात्र अपने चारित्रिक गुणों के कारण समाज की परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं और द्वितीय प्रकार के, चिन्तन-शक्ति आदि गुणों के अभाव में परिस्थितियों द्वारा उत्पीड़ित हैं। वे परिस्थितियों को अपने चारित्रिक गुणों द्वारा संचालित करने में असमर्थ हैं।

घटनाओं के जन्मदाता पात्र

घटनाओं को प्रभावित करने वाले पात्र दो प्रकार के हैं—

(अ) समाज सुधारक पात्र

ये पात्र अपने सुनिश्चित आदर्श के प्रति जागरूक हैं। अपने निर्दिष्ट जीवन-दर्शन द्वारा समाज-सुधार के लिए सदैव तत्पर हैं। राहुल जी की कहानियों के निम्नांकित पात्र इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं—

(क) पुरुष-पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) पुजारी	पुजारी	सतमी के बच्चे
(२) ऋषि अंगिरा	अंगिरा	वोल्गा से गंगा
(३) सुदास्	सुदास्	"
(४) नागदत्त	नागदत्त	"
(५) सुपर्ण यौधेय	सुपर्ण-यौधेय	"
(६) बाबा नूरदीन	बाबा नूरदीन	"
(७) रेखा भगत	रेखा भगत	"
(८) मंगलसिंह	मंगलसिंह	"
(९) सफ़दर	सफ़दर	"
(१०) सुमेर	सुमेर	"

(ख) नारी-पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) लोपा	प्रवाहण	वोल्गा से गंगा
(२) प्रभा	प्रभा	,,
(३) सुरैया	सुरैया	,,
(४) विमला	लिप्स्टिक	बहुरंगी मधुपुरी

(ब) स्व-केन्द्रित पात्र

स्वार्थपरता के कारण इस वर्ग के पात्र समाज के हित-चिन्तन की ओर से विमुख हैं। उन्हें केवल अपने सुख-दुःख की चिन्ता है। इस वर्ग के अन्तर्गत राहुल जी की कहानियों के निम्नांकित पात्र आते हैं—

(क) पुरुष पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) प्रवाहण	प्रवाहण	वोल्गा से गंगा
(२) जयचन्द्र	चक्रपाणि	,,
(३) कुमार दुरंजय	कुमार दुरंजय	बहुरंगी मधुपुरी
(४) महाप्रभु	महाप्रभु	,,
(५) रायबहादुर	रायबहादुर	,,
(६) पेड़ बाबा	पेड़ बाबा	,,

(ख) नारी पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) प्रमोदबाला	हाय बुढ़ापा	बहुरंगी मधुपुरी
(२) मेम साहब	मेम साहब	,,
(३) मीनाक्षी	मीनाक्षी	,,

परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र

इस वर्ग के पात्र भाग्यवादी एवं सहन-शील हैं। सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों द्वारा उत्पीड़ित राहुल जी की कहानियों के निम्नांकित पात्र इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं —

(क) पुरुष पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) जीता	डीह बाबा	सतमी के बच्चे
(२) राजबली	राजबली	,,
(३) जैसिरी	जैसिरी	,,
(४) गोलू	गोलू	बहुरंगी मधुपुरी
(५) कमल सिंह	कमल सिंह	,,
(६) सुल्तान	सुल्तान	,,
(७) मास्टर जी	मास्टर जी	,,

(ख) नारी पात्र	कहानी-शीर्षक	संग्रह
(१) सतमी	सतमी के बच्चे	सतमी के बच्चे
(२) रूपी	रूपी	बहुरंगी मधुपुरी
(३) डोरा	डोरा	"
(४) चम्पो	चम्पो	"

पात्रों का चरित्र-चित्रण

उपर्युक्त वर्गों के अनुसार राहुल जी की कहानियों के विभिन्न पात्रों के चरित्र-चित्रण का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

समाज-सुधारक पात्र

राहुल जी जनवादी कलाकार हैं। वे मानव-मात्र का हित चाहते हैं। उनके समाज-सुधारक पात्र इस भावना से ओत-प्रोत हैं। वे निर्भीक, कर्मठ, व दृढ़-संकल्प हैं और अपने आदर्शों के प्रति जागरूक हैं। वे सुनिश्चित जीवन-आदर्श के अनुसार समाज-सुधार के कार्यों में सदैव लीन हैं। समाज-हित के निमित्त वे बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर हैं। अपनी स्वतन्त्र बुद्धि द्वारा परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता रखते हैं। अपने सच्चरित्र के बल पर दूसरों के लिए अनुकरणीय हैं। इस वर्ग के पात्रों का चरित्र चित्रण इस प्रकार है—

पुजारी (पुजारी—सतमी के बच्चे) विवेकशील है। वह अपनी स्वतन्त्र-बुद्धि के कारण प्रचलित धार्मिक अंधविश्वासों से अति दूर है। गांव के लोग, साधु-वेश में किसी भी व्यक्ति को साष्टांग प्रणाम करना अपना धर्म समझते हैं किन्तु पुजारी साधु-वेश धारी व्यक्ति के गुणों को परखे बिना ऐसा करना स्वाभिमान के प्रतिकूल समझता है। पुजारी स्वयं ब्राह्मण है पर उसे ब्राह्मणों की जाति-पाँति सम्बन्धी संकीर्णता असह्य है। लोगों के विरोध की चिन्ता न कर वह अपने हलवाहे चिनगी चमार के दाहकर्म में सम्मिलित होता है। वह रूढ़िवादी नहीं है। वस्तुस्थिति समझ लेने पर किसी सामाजिक कुरीति पालन-मात्र के लिए वह दुराग्रह नहीं करता है।

ऋषि अंगिरा (अंगिरा—वोल्गा से गंगा) स्वतंत्र विचारक और दूरदर्शी हैं। वे गणतंत्र व्यवस्था के प्रेमी हैं। वे चाहते हैं कि आर्य अपने रक्त तथा आचार व्यवहारों की शुद्धता को न छोड़ें। उनका मत है कि आर्य, यदि अपने आर्यत्व की रक्षा करना चाहते हैं, तो उन्हें किसी व्यक्ति विशेष को राजाओं जैसे अधिकार नहीं देना चाहिये। राजा दूसरों के परिश्रम पर विलास करेगा। वह जनता का आर्थिक दृष्टि से शोषण करेगा। इस शोषण से बचने का उपाय यही है कि आर्य, पुरानी प्रथाओं पर दृढ़ता से स्थिर रहे।[1]

सुदास् (सुदास्—वोल्गा से गंगा) को शासन की गणतंत्र-प्रणाली अभीष्ट है। वह राजतन्त्र का कटु-आलोचक है। राजाओं को चोर बताता हुआ कहता है—"राजा चोर हैं, जन-अधिकार के अपहारक हैं, इसलिए उनको हर वक्त डर बना रहता है।

---

[1] वोल्गा से गंगा, पृ० ९०, ९४

राजाओं का रनिवास, राजाओं का सोना-रूपा-रत्न, राजाओं की दास-दासियाँ—राजाओं का सारा भोग अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरण से आया है।"[१] सुदास् का मत है कि केवल गणतंत्र प्रणाली द्वारा मानव-अधिकारों की रक्षा हो सकती है। अपने पिता दिवोदास के दिवंगत होने पर उसे प्रजा के आग्रह पर पंचाल का राजा बनना पड़ता है। उदारचित सुदास् जीवन-पर्यन्त अपनी प्रजा का हित करता है।

नागदत्त (नागदत्त—वोल्गा से गंगा) तक्षशिला का प्रसिद्ध वैद्य नागदत्त, उदार-हृदय है और गणतंत्र-प्रणाली का समर्थक है। उसका मत है कि राजाओं के दांत खट्टे करने के लिए, छोटे गणों को मिला कर एक शक्तिशाली संघ बनाना आवश्यक है। नागदत्त, राजाओं की शोषण-वृत्ति का कटु आलोचक है। इस सम्बन्ध में वह कहता है—"मिट्टी से सोना पैदा करने वाले भूखे-नंगे मरते हैं और सोने की मिट्टी करने वाले मौज उड़ाते हैं। मैं तीन बार शाहंशाह के सामने गया, हर बार लौटते वक्त मेरे सिर में दर्द होने लगा। मैंने उसके सारे वैभव से जाड़ों में ठिठुरकर, गर्मियों में जल कर मरने वाले कमकरों की आह निकलती देखी, उसकी लाल मदिरा मुझे सताई गई प्रजा के खून के रूप में दिखलाई पड़ी। मैं पर्शुपुरी से तंग आ गया हूँ और जल्दी निकल भागना चाहता हूँ।"[२] नागदत्त अन्तर्जातीय विवाह का पक्षपाती है और वह यवन कन्या सोफिया से विवाह कर इस सिद्धान्त का समर्थन करता है।

सुपर्ण यौधेय (सुपर्ण यौधेय—वोल्गा से गंगा) निर्भीक एवं दृढ़-संकल्प है। अपने सुनिश्चित जीवन-आदर्शों का वह दृढ़ता से पालन करता है। उसे ब्राह्मणों की जाति-पांति सम्बन्धी सामाजिक भेद-भाव की नीति असह्य है।[3] वह राजाओं की राज्य-विस्तार-लिप्सा और शोषकों की शोषण-वृत्ति का विरोधी है। सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं का उन्मूलन कर वह अपनी यौधेय भूमि का पुनरुत्थान करने की प्रतिज्ञा करता है।

बाबा नूरदीन (बाबा नूरदीन—वोल्गा से गंगा) अपनी स्वतंत्र बुद्धि का उपयोग समाज के हित-चिन्तन के लिए करता है। जाति-पांति के भेद-विभेद तथा आर्थिक वैषम्य के उन्मूलन के लिए वह प्रयत्नशील है। हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रचार करता है। मानवता के विकास के लिए वह शासकों एवं धनिकों की शोषण-वृत्ति के मूलोच्छेदन को अनिवार्य मानता है।

रेखा भगत (रेखा भगत—वोल्गा से गंगा) परिश्रमी एवं सूझ-बूझ रखने वाला किसान है। उसे यह असह्य है कि किसान लोग, उत्पादन-कार्य में रात-दिन रत रह कर लहू-पसीना एक करें और जमींदार उनकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ायें। वह जमींदारों को डाकू कहता है।[४] रेखा भगत स्वाभिमानी है। वह जमींदार और उसके

---

[१] वही, पृ० ११३
[२] वही, पृ० १७२
[3] वही, पृ० २२५
[४] वही, पृ० ३०७

सेवकों के वध द्वारा अपनी पत्नी के अपमान का प्रतिशोध लेकर स्वाभिमानिता का परिचय देता है।

मंगलसिंह (मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा)—विवेकशील और दूरदर्शी है। शिक्षा प्राप्ति हेतु वह इंगलैंड जाता है और कार्ल मार्क्स के सम्पर्क में रहकर उसके विचारों से प्रभावित होता है। मंगलसिंह भारत-प्रत्यागमन पर साम्यवादी विचारों का प्रचार करता है। भारत में साम्यवाद की स्थापना के लिए वह यहाँ से अंग्रेजों के राज्य की समाप्ति को अत्यावश्यक समझता है। उसे निश्चय है कि अँग्रेजों के बाद भारत में, पंचायती-राज्य की स्थापना होगी और कोई भी जन आजीविका का अनुभव नहीं करेगा।[१] सन् १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में शौर्य का परिचय देता हुआ वीर गति को प्राप्त होता है।

सफ़दर (सफ़दर—वोल्गा से गंगा) स्वभावतः क्रान्तिकारी है। देश की स्वतन्त्रता के लिए वह जनता की क्रान्ति को परमावश्यक समझता है। क्रान्ति के लिए वह कमकर तथा किसान को शक्ति-स्रोत मानता है। उसका मत है कि क्रान्ति की लड़ाई वही लड़ सकता है जिसके पास हारने के लिए कम से कम चीज हो।[२] वह साम्यवाद को केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु समस्त विश्व के कल्याणार्थ सर्व-श्रेष्ठ मार्ग मानता है

सुमेर (सुमेर—वोल्गा से गंगा) पटना का हरिजन तरुण सुमेर दूरदर्शी और विवेकशील है। वह देश-भक्त और समाज-हितैषी है। देश की स्वतन्त्रता के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर रहता है। सुमेर, महात्मा गांधी के राजनीतिक विचारों का अन्धानुयायी नहीं है। वह जन की राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ आर्थिक स्वतन्त्रता को आवश्यक मानता है। आर्थिक वैषम्य को समाप्त करने के लिए साम्यवाद को सरलतम उपाय बताता है। वह लोगों के इस विचार से सहमत नहीं है कि साम्यवाद विदेशी है। उसका मत है कि जब विदेशी ईसाई और इस्लाम-धर्म तथा कल-कारखाने स्वदेशी बन सकते हैं तो साम्यवाद भी स्वदेशी बन सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त, अंग्रेज शासकों की आँखें अवश्य खुलेंगी—इस आशय से वह अंग्रेजों की ओर से जापानी सेनाओं के विरुद्ध लड़ता है और शत्रु को भारी क्षति पहुँचा कर वीर-गति को प्राप्त होता है।

लोपा (प्रवाहण—वोल्गा से गंगा)—पंचाल के राजा प्रवाहण की रानी लोपा, बुद्धिमती नारी है। वह स्वतन्त्र-विचारिका है। वह अपने पति से राजभोगवाद और पुनर्जन्मवाद सम्बन्धी विषयों के प्रश्न पर मतभेद रखती है। वह इन्हें लोगों की कमाई के शोषण का साधन समझती है। वह कहती है कि प्रजा इन स्वार्थियों के

---

१ वही, पृ० ३३७
२ वही, पृ० ३५२

जाल से तब तक नहीं बच सकती जब तक कि वह स्वयं सचेत न हो।[1] वह दासों को मुक्त कर देने के पक्ष में है। लोपा को सादा जीवन प्रिय है।

प्रभा (प्रभा—वोल्गा से गंगा)—यवन-कन्या प्रभा अकृत्रिम प्रेम की प्रतीक है। अपने प्रियतम अश्वघोष के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर है। शारीरिक प्रेम की अपेक्षा वह आत्मिक प्रेम को उत्तम समझती है। उसका मत है कि विवाह के बिना भी प्रेम किया जा सकता है। अश्वघोष के काव्य के लिये शाश्वत प्रेरणा-स्रोत बनने के निमित्त, प्रभा अपने नश्वर शरीर को सरयू नदी की लहरों में अर्पण कर देती है।

सुरैया (सुरैया—वोल्गा से गंगा)—अबुलफ़जल की पुत्री, सुरैया, जाति-पांति विषयक संकीर्णता से घृणा करती है। समाज की कटु आलोचनाओं की चिन्ता न कर वह टोडरमल के पुत्र कमल से दाम्पत्य-प्रेम प्राप्त करती है।

विमला (लिप्स्टिक—बहुरंगी मधुपुरी) सुशिक्षिता महिला है। वह महिलाओं को समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए क्रान्ति के पक्ष में है। क्रान्ति के लिये वह महिलाओं में नव-विचारों के प्रचार की आवश्यकता पर बल देती है। उसकी धारणा है कि क्रान्ति के सफल होने पर ही स्त्री जाति, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होगी।

स्व-केन्द्रित पात्र

इस वर्ग के प्रायः सभी पात्र, विलासी, स्वार्थी व अदूरदर्शी हैं। स्वार्थपरता-वश, वे समाज-हित की ओर निरपेक्ष हैं। अपने ही सुख के लिये वे सतत प्रयत्न-शील हैं। उनकी दृष्टि दूसरों के धन को किसी न किसी प्रकार हस्तगत करने की ओर ही रहती है। वे प्रकृति से अकर्मण्य हैं। लोक-अपवाद का उन्हें डर नहीं है। इस वर्ग के पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत है।

प्रवाहण (प्रवाहण—वोल्गा से गंगा)—पंचाल प्रदेश का राजा प्रवाहण, स्वार्थी एवं विलासी है। राजाओं तथा परधनभोगियों की शोषणवृत्ति को संदेह-वादियों की आलोचना से बचाने के लिए वह ब्रह्मवाद और पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्तों की स्थापना करता है। इन सिद्धान्तों की स्थापना में उसका अन्तर्निहित लक्ष्य यह है कि दरिद्र प्रजा, इस जीवन की कटुता और कष्ट को पूर्व जन्म का फल समझती रहे और दूसरी ओर राजा लोग निर्विघ्न होकर राज्य-सुख का उपभोग करते रहें।[2] उसे यथार्थ एवं सत्य का असत्य से कोई प्रयोजन नहीं, उसका तो एकमात्र अभीष्ट इसी में है कि येन-केन-प्रकारेण अपना उल्लू सीधा होता रहे। स्वार्थ-साधन के लिए, वह लोगों का बड़े से बड़ा अहित करने को उद्यत है। प्रवाहण को किसी देवता, देव-लोक, पितृकुल, यज्ञ और ब्रह्मवाद में आस्था नहीं है। उसके जीवन का चरम लक्ष्य

---

[1] वही, पृ० १३५
[2] वही, पृ० १२९

है—केवल ऐहिक सुख-भोग। मृत्यु की काली घटाओं से घिरे हुए अपने निराश जीवन के अन्तिम तीन दिन पूर्व, वह एक बीस वर्ष की सुन्दरी से प्रेम-अभिनय करता है।[1]

जयचन्द्र (चन्द्रपाणि—वोल्गा से गंगा)—कन्नौज सम्राट् जयचन्द्र विलासी एवं कामुक है। प्रजा की कल्याण कामना की ओर से वह विमुख है। राजोचित-दूरदर्शिता से काम न लेकर वह अपने भाई पृथ्वीराज से वैमनस्य रखता है और तुर्कों के साथ युद्ध में मारा जाता है।

कुमार दुरंजय (कुमार दुरंजय—बहुरंगी मधुपुरी) रियासती राजकुमार है। रियासत के भारत में विलय के उपरान्त वह अधिकांश समय, मधुपुरी में ही रहता है। वह विलासी है और समाज-हित की ओर से नितरां उदासीन है। भोग-विलास के लिये दूसरों से उधार लेने में भी वह संकोच नहीं करता है। उधार लिया धन वापस करना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है।

महाप्रभु (महाप्रभु—बहुरंगी मधुपुरी) महात्मा के रूप में, एक कामुक और स्वार्थी व्यक्ति है। धनी बनने की लालसा से वह टीकाराम से 'महाप्रभु' बन जाता है। आन्तरिक रूप में, वह पूरा वंचक है। श्रद्धालु स्त्रियों में से करमा नाम की महिला से पहले वह गुप्त रूप से प्रेम करता है और बाद में उसे अपनी पत्नी बना लेता है। उसके अंधविश्वासी श्रद्धालु भक्त, अब भी उसके ढोंग को नहीं समझ सके हैं।

रायबहादुर (रायबहादुर—बहुरंगी मधुपुरी)—स्वार्थी रायबहादुर को केवल अपना ही उत्कर्ष अभीष्ट है। व्यापार में, अधिकाधिक लाभ उठाना उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य है। स्वार्थ के लिए, स्वाभिमान को वह, नगण्य समझता है। चाटुकारिता की नीति के कारण वह अंग्रेजों के समय में 'रायबहादुर' और उनके भारत से प्रस्थानोपरान्त मधुपुरी का सबसे बड़ा सेठ है।

पेड़ बाबा (पेड़बाबा—बहुरंगी मधुपुरी) के नाम से प्रसिद्ध साधु डाकुओं का सरदार है। पुलिस की पकड से बचने के लिए वह एक साधु का वेश धारण करता है। इस ढोंग का रहस्य प्रकट हो जाने पर पुलिस उसे बन्दी बना लेती है।

प्रमोदबाला (हाय बुढ़ापा—बहुरंगी मधुपुरी) को विलासी और स्वतंत्र जीवन प्रिय है। पति से पृथक रहना उसे रुचिकर है। गर्मियों में, वह प्रति वर्ष मधुपुरी आती है। शराब पीना, जूआ खेलना, मित्र-मण्डली में ठहाके मारना उसकी दिनचर्या के मुख्य अंग हैं। बनाव शृंगार में वह पर्याप्त समय व्यतीत करती है। दूसरों के सुख-दुःख के प्रति वह उदासीन है। तरुण-पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करना उसका एक मात्र लक्ष्य है।

---

[1] वही, पृ० १२६, १२९ व १३३

मेम साहब (मेम साहब—बहुरंगी मधुपुरी)—परहित चिन्तन की ओर से विमुख मेम साहब, एक आधुनिक सेठानी है। पाश्चात्य सभ्यता का रंग उस पर पूर्णतया चढ़ गया है। वह अपने जीवन की विलासिता पर अन्धाधुन्ध धन खर्च करती है। उधार ले कर लौटाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है।

मीनाक्षी (मीनाक्षी—बहुरंगी मधुपुरी) आधुनिकतम राजकुमारी है। वेश भूषा, खान-पान में वह पूर्णतया पाश्चात्य है पर उसके विचार पुराने हैं। अन्तर्जातीय विवाह को वह अच्छा समझती है पर साहस के अभाव में पहल करने में संकोच का अनुभव करती है।

परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र

इस वर्ग के पात्र सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों द्वारा उत्पीड़ित हैं। उनमें साहस और निर्भीकता का अभाव है। आन्दोलन-संचालन की शक्ति न रखने के कारण वे समाज की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में असमर्थ हैं। स्वभाव से क्रान्तिकारी न होने के कारण वे परिस्थितियों के दमन को सहन कर रहे हैं। वे भाग्यवादी हैं। अपनी दयनीय दशा को भाग्य का फल समझते हैं। इस श्रेणी के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत है—

जीता (डीहबाबा—सतमी के बच्चे) परिश्रमी और सहनशील जीता, भर जाति का मुखिया है। सन् १८९७ ई० के अकाल के कारण उसे निर्धनता का सामना करना पड़ रहा है। भुखमरी से वचने के लिए वह सपरिवार आसाम चला जाता है। वह भाग्यवादी है। अपनी परिस्थितियों को भाग्य का ही परिणाम मान कर जीवन-यापन कर रहा है।

राजबली (राजबली—सतमी के बच्चे)—एक ग्रामीण बालक है। पिता की मृत्यु के बाद अपना पेट पालने के लिए, उसे कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। पारिवारिक यातनाओं के विरुद्ध उसमें भाव उद्बुद्ध होते हैं। वह असहाय है, इसलिए ये भाव, उसमें पनपने नहीं पाते हैं। भुखमरी और रोगों से पीड़ित राजबली की सोलह वर्ष की अल्पायु में ही जीवन-लीला समाप्त हो जाती है।

जैसिरी (जैसिरी—सतमी के बच्चे) मधुरभाषी और प्रतिभाशाली व्यक्ति है। ग्रामीण और निर्धन परिवार में उत्पन्न होने के कारण उसकी प्रतिभा अविकसित रह जाती है। यदि उसे आधुनिक शिक्षा के साधन सुलभ होते, तो वह अपने समय का एक शिक्षा-विशेषज्ञ बन सकता था। वह निर्धनता को भाग्य का परिणाम मान कर पशु-चारण वृत्ति द्वारा अपना जीवन-यापन कर रहा है।

गोलू (गोलू—बहुरंगी मधुपुरी) मधुपुरी का भारवाहक है। पेट पालने और ऋण उतारने के लिए वह लहू-पसीना एक करता है। उसकी पत्नी उसे वृद्ध और निर्बल समझ, छोड़ देती है और अपने देवर को अपना पति बना लेती है। अतः गोलू का दुःख और भी बढ़ जाता है। परिस्थितियों के सम्मुख नत-मस्तक हो वह अपना जीवन पूरा कर रहा है।

कमलसिंह (कमलसिंह—बहुरंगी मधुपुरी)—परिश्रमी और सहनशील कमल सिंह गढ़वाली तरुण है। आजीविका की खोज में वह मधुपुरी आता है। थोड़ी मजदूरी से बड़े कुटुम्ब का पालन करने में असमर्थ होने के कारण वह आर्थिक संकट में है। बच्चों की बीमारी के कारण उसका संकट और भी बढ़ जाता है। वह स्वाभिमानी है। किसी से उधार नहीं माँगता है। आय बढ़ाने के लिए वह और अधिक परिश्रम करने लगता है। कमलसिंह भाग्यवादी होता हुआ भी परिश्रम में विश्वास रखता है।

सुलतान (सुलतान—बहुरंगी मधुपुरी) मधुपुरी का निर्धन धुनिया है। जाति से वह मुसलमान है। उसमें धर्म विषयक संकीर्णता नहीं है। पाकिस्तान बनने पर उसका लड़का और बहू वहाँ चले जाते हैं पर सुलतान मधुपुरी में ही रहता है। उसे यहाँ का जीवन प्रिय है। परिश्रम में उसका विश्वास है। बेकार बैठना उसे अखरता है। धुनाई का काम न मिलने पर वह रिक्शा चलाने लगता है।

मास्टर जी (मास्टर जी—बहुरंगी मधुपुरी) की आयु ४४-४५ वर्ष की है। निर्धनता-जन्य चिन्ता के कारण वे ६० वर्ष के वृद्ध से दिखाई देते हैं। थोड़े से वेतन में नौ बच्चों का पेट पालना उनके लिए एक समस्या है। रात-दिन वे इसी उधेड़-बुन में रहते हैं। वे स्वाभिमानी हैं। किसी से सहायता नहीं माँगते हैं। अपना दुःख छिपाने का वे प्रयत्न तो करते हैं, पर मुखाकृति से उनकी आन्तरिक वेदना का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

सतमी (सतमी के बच्चे) अहीरिन पन्दहा ग्राम की एक नारी है। स्वभाव से वह श्रम-सहिष्णु है। दुर्भिक्ष के संकट का सामना करने के लिए वह रात-दिन परिश्रम करती है। भुखमरी और बीमारी से उसके चारों बेटे काल-कवलित हो जाते हैं। ससुराल की यातनाओं से दुखी हो, उसकी बेटी उसके पास ही रहती है। सतमी का पति उसे विपन्नावस्था में छोड़ गया है। इन सब दुःखों को झेलती हुई सतमी अपनी अन्तिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रही है।

रूपी (रूपी—बहुरंगी मधुपुरी)—आर्थिक संकट से विवश हो, अपनी माँ 'मधुबाला' के संकेत पर अपना शरीर बेचने के धन्धे को आरम्भ कर देती है। एक दर्जी, उससे विवाह करके, उसे इस गन्दगी से निकालना चाहता है, पर रूपी को गन्दगी का जीवन ही प्रिय है। जिस धन्धे को उसने आर्थिक संकट से विवश हो, अपनाया था वह अब उसे अपने स्वभाव के अनुकूल समझने लगी है।

डोरा (डोरा—बहुरंगी मधुपुरी) सामाजिक और आर्थिक संकटों के भार से दबी हुई है। उसके खानसामा पति के भाग जाने पर, वह क्रम से तीन और पुरुषों को अपना पति बनाती है। जिस बूढ़े पति के साथ, अब वह रह रही है, वह अति निर्धन मजदूर है। डोरा, अपने पाँच बच्चों का पेट भरने में कठिनता का अनुभव कर रही है। भाग्य पर उसका विश्वास है। परिस्थितियों के संकट को झेलती हुई वह, मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही है।

चम्पो (चम्पो—बहुरंगी मधुपुरी) स्वभाव से सरल और मृदुल है। समाज में प्रचलित जातीय भेद-भाव से वह अपरिचित है। सहेलियों द्वारा सिखाये जाने पर मालिक की पुत्री, चम्पो का साथ छोड़ कर उससे घृणा करने लगती है। इस व्यवहार से, चम्पो के हृदय को आघात पहुँचता है और इसी दुःख से वह मृत्यु का ग्रास बन जाती है।

राहुल जी की कहानियों में पात्र-चित्रण कला

राहुल जी की कहानियों के पात्रों का चरित्र तथा उनके चित्रण का विश्लेषण करने के उपरान्त निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

पात्रों का स्रोत—राहुल जी की कहानियों के अधिकांश पात्र, उनके अपने जीवन-अनुभव तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर आश्रित हैं। 'सतमी के बच्चे' संग्रह की पाठक जी, पुजारी, दलसिंगार नामक कहानियों में राहुल जी ने क्रमशः अपने नाना, पिता और रिश्ते के अन्य नाना के संस्मरण प्रस्तुत किये हैं। सतमी के बच्चे, डीह बाबा और जैसिरी नामक कहानियों के सतमी, जीता और जैसिरी उनकी ननिहाल व पितृग्राम के सुपरिचित व्यक्ति हैं। साथ ही, जान पड़ता है 'रामगोपाल' तथा 'राजबली' कहानी के रामगोपाल और राजबली तथा सफ़दर और सुमेर (वोल्गा से गंगा) राहुल जी के अनुभव-लब्ध पात्र हैं। 'वोल्गा से गंगा' के जयचन्द्र, अश्वघोष, हर्ष, बाणभट्ट, अलाउद्दीन खिल्जी व सम्राट अकबर इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं। सुदास्, पुरुधान, अंगिरा, प्रवाहण, लोपा, गार्गी नाम के पात्र वैदिक साहित्य में प्राप्य हैं पर उनका व्यक्तित्व-सृजन एवं चरित्र-चित्रण राहुल जी ने अपने विचारों के आधार पर ही किया है। बहुरंगी मधुपुरी की कहानियों में राहुल जी ने मधुपुरी की सुपरिचित परिस्थितियों एवं घटनाओं का उल्लेख किया है। कहानियों के पात्र व्यक्ति विशेष नहीं हैं। इन पात्रों अथवा इन जैसे पात्रों के विषय में राहुल जी ने जो कुछ देखा अथवा सुना है, उसी के आधार पर इन पात्रों के जीवन-वृत्त प्रस्तुत किये हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए कल्पना से भी काम लिया गया है।

सीमित चयन-परिधि—राहुल जी के उपन्यासों के पात्रों की भाँति उनकी कहानियों के पात्रों की चयन-परिधि सीमित है। उन्होने अपनी कहानियों के लिए केवल उन्हीं पात्रों को चुना है जो उनके विचारों के प्रकाशन में सहायक हो सकते थे। उनके पात्र तीन प्रकार के हैं—समाज-सुधारक, स्वकेन्द्रित और सामाजिक परिस्थितियों द्वारा संचालित। राहुल जी का जीवन-लक्ष्य समाज-सुधार रहा है। इसी लक्ष्य के अनुरूप उन्होंने समाज-सुधारक पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। समाज में प्रचलित कुरीतियों की आलोचना के लिए उन्होंने अपनी कहानियों में स्वकेन्द्रित पात्रों का समावेश किया है। सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के चित्रण के लिए उन्होंने परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्रों को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। राहुल जी की कहानियों में धनी, निर्धन और मध्यम—तीनों वर्गों के पात्र मिलते हैं परन्तु उनके पात्रों की चयन-परिधि में वह व्यापकता नहीं है, जो प्रेमचन्द जी के पात्रों में

प्रचुरता से प्राप्त होती है। प्रेमचन्द जी के पात्र, लोक-सुलभ साधारण जीवन से ग्रहण किये गये हैं। इसके विपरीत राहुल जी के पात्र अभिजात और धनी हैं अथवा इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। साधारण जीवन जैसा बीत रहा है तदनुकूल पात्र नहीं हैं। 'सतमी के बच्चे' की कहानियों के पात्र व्यक्ति विशेष हैं। उनके अनुरूप व्यक्ति प्रायः समाज में कम ही देखने को मिलते हैं।

पात्रों के चरित्र में स्थिरता तथा समानता

राहुल जी की कहानियों के पात्रों के चरित्र प्रायः स्थिर हैं। उनके चारित्रिक गुणों में परिवर्तनशीलता नहीं है। राहुल जी के पात्र मुख्यतः दो प्रकार के हैं—अच्छे और बुरे। जो पात्र कहानी के आरम्भ में अच्छे हैं वे अन्त तक अच्छे हैं। बुरे पात्र, जिन अवगुणों को लेकर कहानी में प्रवेश करते हैं, वे अवगुण उनमें अन्त तक बने रहते हैं। उदाहरण के लिए रूपी (रूपी—बहुरंगी मधुपुरी) कहानी के आदि में बुरी है और अन्त में भी। अपनी माता के संकेत पर, निर्धनता के कारण वह अपना शरीर बेचने लगती है। उसको इस गर्त से निकालने के लिए समाज की ओर से प्रयत्न किये जाते हैं किन्तु उसे कुत्सित जीवन ही प्रिय है। चरित्र में स्थिरता के साथ राहुल जी की कहानियों के पात्रों के गुणों में परस्पर समानता भी है। उनके अच्छे एवं बुरे पात्र एक ही साँचे में ढले प्रतीत होते हैं। सभी समाज सुधारक पात्र, स्वतंत्र विचारक एवं दूरदर्शी हैं। स्वकेन्द्रित पात्रों में से प्रायः सभी स्वार्थी एवं विलासी हैं। परिस्थितियों द्वारा संचालित पात्र भाग्यवादी और विद्रोह-शून्य हैं।

बाह्य एवं स्थूल चरित्र-चित्रण

राहुल जी की दृष्टि अपने पात्रों के बाह्य चरित्र-चित्रण तक ही सीमित रही है। उन्होंने पात्रों की वेश-भूषा, आकृति एवं उनके क्रिया-कलापों का अधिक चित्रण किया है। कुमार दुरंजय की आकृति से सम्बद्ध एक उदाहरण प्रस्तुत है—"कुमार दुरंजय का रंग साँवला बल्कि कुछ हद तक काला था। वैसे शरीर छः फुट का बहुत लम्बा-तगड़ा था। रंग कोई बिगाड़ न कर सकता, यदि रूप अच्छा होता—यह मालूम ही है, रंग सुन्दरता की गारन्टी नहीं है। कुमार के भारी-भरकम शरीर और उसके अनुरूप ही सिर में कुछ पीली मज्जा की कमी जरूर थी, लेकिन उनको बेवकूफ हर्गिज नहीं कहा जा सकता था।[1] इसी प्रकार अन्य पात्रों [2] का चरित्र-चित्रण बाह्य कोटि का है। पात्रों के कर्मों का विवरण मात्र प्रस्तुत किया गया है। उनके आन्तरिक व्यक्तित्व का चित्रण नहीं हो सका है। प्रवाहण, सुमेर, सफ़दर जैसे विचारशील

---

[1] बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २६

[2] उदाहरणों के लिए कृपया देखिये :—

(क) सतमी के बच्चे—जीता, पृ० २५; पाठक जी २८

(ख) वोल्गा से गंगा—जयचन्द्र, पृ० २५१-२५२; सुरैया, २५८

(ग) बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २३, ६२, १२३ व १८८

पात्रों के भी आन्तरिक चरित्र-चित्रण की ओर राहुल जी का ध्यान नहीं गया है।

अल्प पात्र-संख्या

राहुल जी की कहानियां वातावरण-चित्रण अथवा चरित्र चित्रण प्रधान हैं। अतः उनमें पात्रों की संख्या अधिक नही है। एक कहानी में प्रधानता केवल एक पात्र को दी गई है। सतमी के बच्चे और बहुरंगी मधुपुरी की कहानियां जीवन-चरितात्मक हैं। प्रत्येक कहानी में प्रायः एक पात्र है। वोल्गा से गंगा की कहानियों में एक से अधिक पात्र हैं—दो अथवा तीन। उनमें भी मुख्यता केवल एक ही को मिली है।

चित्रण शैली—राहुल जी के तीन कहानी-संग्रहों—'सतमी के बच्चे', वोल्गा से गंगा', 'बहुरंगी मधुपुरी'—की इक्यावन कहानियों में केवल दो कहानियां, सुपर्ण यौधेय (वोल्गा से गंगा) और दुर्मुख (वोल्गा से गंगा) आत्मचरितात्मक शैली में लिखी हुई हैं। शेष सभी कहानियां वर्णनात्मक शैली में हैं। पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए राहुल जी ने प्रत्यक्ष तथा नाटकीय दोनों प्रणालियों को अपनाया है। 'सतमी के बच्चे' व 'बहुरंगी मधुपुरी' की सभी कहानियाँ चरितात्मक कोटि की हैं। उनमें चरित्र-चित्रण के लिए प्रायः प्रत्यक्ष शैली का उपयोग किया गया है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए प्रत्यक्ष प्रणाली की अपेक्षा नाटकीय विधि का आश्रय अधिक लिया गया है।

(ग) राहुल जी की कहानियों में वातावरण-सृष्टि

कहानी में उपन्यास की भांति वातावरण के चित्रण के लिये अधिक अवकाश नहीं होता है फिर भी देश-काल की स्पष्टता लाने तथा घटनाओं से परिस्थिति की अनुकूलता व्यंजित करने के लिए कहानी में वातावरण-चित्रण की आवश्यकता होती है। राहुल जी की कहानियां देश-काल सापेक्ष हैं। उनमें वातावरण-चित्रण को मुख्य लक्ष्य बनाया गया है। जैसा कि पहले[1] उल्लेख किया जा चुका है वातावरण के मुख्य पक्ष दो हैं—सामाजिक तथा प्राकृतिक। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत पात्रों के खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार एवं रीति-नीति का चित्रण किया जाता है। प्राकृतिक वातावरण के अन्तर्गत मनुष्येतर जगत्-पशु, पक्षी, सरिता, वनस्पति आदि का चित्रण किया जाता है। उक्त तत्वों के आधार पर राहुल जी की कहानियों की वातावरण-सृष्टि का विश्लेषण प्रस्तुत है—

घटनास्थल

राहुल जी की कहानियों के घटनास्थल विभिन्न हैं। 'वोल्गा से गंगा' की प्रथम पाँच कहानियों—निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत, पुरुधान—के घटनास्थलों का संबंध वोल्गा (रूस की प्रसिद्ध नदी) और सुवास्तु नदी के मध्य स्थित प्रदेशों से है। इस संग्रह

---

[1] विस्तार के लिये कृपया देखिये-प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय ४

की शेष पन्द्रह कहानियों की घटनाएँ तक्षशिला और पटना के मध्य स्थित विभिन्न प्रदेशों एवं नगरों में घटती हैं।

सतमी के बच्चे नामक संग्रह की स्मृतिज्ञानकीर्ति का घटनास्थल भोट देश है। 'रामगोपाल' कहानी की घटनायें फतेहपुर व प्रयाग (उत्तर प्रदेश) तथा लाहौर (पंजाब) में घटती हैं। सतमी के बच्चे, पाठक जी, जैसिरी तथा दलसिंगार नाम की कहानियों का सम्बन्ध राहुल जी की ननिहाल पन्दहा (जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) से है। 'डीह बाबा' व 'पुजारी' की घटनायें राहुल जी के पितृग्राम कनैला (जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) में घटती हैं। राजबली तथा घुरबिन कहानियों के घटनास्थल राहुल जी के पितृग्राम कनैला के समीपस्थ ग्राम हैं।

बहुरंगी मधुपुरी की समस्त कहानियों की घटनायें मधुपुरी (मसूरी, उत्तर प्रदेश) में घटती हैं।

कहानियों का कालक्रम तथा राजनीतिक अवस्था

विभिन्न कालों से सम्बद्ध होने के कारण राहुल जी की कहानियों से विभिन्न कालो की राजनीतिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों से ६००० ई० पू० से सन् १९४२ ई० के बीच की लम्बी अवधि के विभिन्न कालों की राजनीतिक अवस्था का बोध होता है। 'सतमी के बच्चे' की कहानियों का मुख्य विषय बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है फिर भी इन से उस समय की राजनीतिक स्थिति का यत्किञ्चित आभास मिलता है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियों का सम्बन्ध अंग्रेजी शासकों के भारत से चले जाने अर्थात् भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद की राजनीतिक स्थिति से है।

आर्य-पूर्वजों (हिन्दी **योरोपीय** जाति) का भारत-प्रवेश से पूर्व (६००० ई० पू०—२००० ई० पू०) का राजनीतिक जीवन कबीलों (परिवारों) के जीवन के रूप में देखने को मिलता है। हिन्दी-योरोपीय जाति छोटे-छोटे परिवारों में बँटी हुई है। प्रत्येक परिवार की नायिका (स्वामिनी) परिवार की तरुण स्त्री है।[1] आखेट-भूमि तथा पशु-चारण भूमि के निमित्त परिवारों के परस्पर संघर्ष आरम्भ होने पर परिवार के योग्यतम पुरुष को जन (परिवार) का स्वामी (महापितर) बनाने की प्रथा चलती है।[2]

आर्यों तथा असुरों के निरन्तर संघर्ष के उपरान्त आर्य विजयी होते हैं और उनका राज्य (१८०० ई० पू० से ४६० ई० पू०) गान्धार (तक्षशिला) से कुसिनारा व श्रावस्ती तक फैल जाता है। गान्धार व कुसिनारा गण-शासित प्रदेश हैं। ३२५ ई० पू० से ६३० ई० तक की राजनीतिक अवस्था का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल से हर्षवर्धन तक के राज्यकाल की परिस्थितियों से है। इस काल के शासक

---

[1] वोल्गा से गंगा
[2] वही, पृ० ४२

स्वभाव से साम्राज्यवादी हैं। वे निर्बल राज्यों को ध्वस्त कर अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत करने में सलग्न हैं। सन् १२०० ई० से १६०० ई० के मध्य की घटनायें कन्नोज महाराज जयचन्द्र, अलाउद्दीन खिल्जी व सम्राट् अकबर के शासन कालों की हैं। पृथ्वीराज और जयचन्द्र की परस्पर फूट से लाभ उठा कर तुर्क भारत में राज्य स्थापित करते हैं। अलाउद्दीन, भारत में इस्लामी राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिये यहाँ की प्रजा को सुखी और संतुष्ट देखना चाहता है।[1] अपने शासन को लोकप्रिय बनाने के निमित्त सम्राट् अकबर हिन्दुओं तथा मुसलमानों से समान व्यवहार करता है। बीरबल और टोडरमल सम्राट् अकबर के दरबार में उच्चपदाधिकारी हैं। सम्राट् अकबर का ध्यान अपने राज्य के सुप्रबन्ध की ओर है।

सन् १८०० ई० से १९४२ ई० तक की भारत की राजनीतिक स्थिति का सम्बन्ध अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन से द्वितीय विश्वयुद्ध तक के अंग्रेजी शासनकाल से है। जमीदार किसानों पर अन्याय कर रहे हैं। उनकी भूमि को हस्तगत किये हुये हैं। सरकार जमींदारों के पक्ष में है। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम के पश्चात् भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना आती है। प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध तक का समय महात्मा गान्धी के नेतृत्व में किये गये 'असहयोग' व 'सत्याग्रह' आन्दोलनों का समय है। रौलट एक्ट जैसे कठोर कानूनों द्वारा, अंग्रेज शासक, भारतीय स्वतन्त्रता हेतु किये गये आन्दोलनों के दमन करने में संलग्न हैं। जलियावाला बाग (अमृतसर) जैसे हत्याकांड इसी अवधि में होते हैं।[2] स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा में, महात्मा गान्धी के नेतृत्व में, कांग्रेस तथा भारतीय जनता, अंग्रेजों की, द्वितीय विश्वयुद्ध में तन-मन-धन से सहायता करती है।

सन् १९४७ में भारत स्वतन्त्र होता है। अंग्रेजों के बाद भारत में जन-तन्त्र की स्थापना होती है। देश की उन्नति के लिए निर्माण कार्य आरम्भ किये जाते हैं। साम्यवादी विचारधारा का प्रसार एवं शोषण वृत्ति के विरुद्ध लोगों में चेतना जाग्रत होती है।[3]

सन् १९५० के आस पास की राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत करते हुये राहुल जी कहते हैं—"पुराने बड़े साहब की जगह नये बड़े साहब आये जिनके रंग में फर्क जरूर है, लेकिन तनखाह में कोई फर्क नहीं, जिनकी योग्यता में कमी जरूर है किन्तु रोब में नहीं। यह भी पुराने साहबों की तरह ही जनता से अलग रहना पसन्द करते हैं।......... मधुपुरी के साहब कुछ बातों में वस्तुतः राजा है। उनकी आनबान और ठाठ-बाठ में अपने पूर्वाधिकारियों का खूब प्रभाव है।"[4] राहुलजी भारत

---

[1] वही पृ० २७४

[2] देखिये—(क) वोल्गा से गंगा, पृ० ३०२, ३२०
(ख) सतमी के बच्चे, पृ० ९८

[3] वोल्गा से गंगा, पृ० ३६३, ३६८, ३७८

[4] बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २७४-२७५

में, जन-राज्य के पक्ष में हैं। वे चाहते हैं कि राजकीय कार्यालयों और संस्थाओं में, कार्य करने वाले कर्मचारी प्रजा-हितैषी बनें। वे जनता से सहानुभूति रखते हुये अपने में कार्य क्षमता तथा अनुशासन प्रियता जैसे गुण उत्पन्न करें।[1]

सामाजिक अवस्था

गत पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि मानव-समाज के जीवन को आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। राहुल जी की कहानियो की सामाजिक अवस्था का उक्त तत्वों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत है—

(अ) **खान-पान तथा रहन-सहन**—भारत में आने से पूर्व आर्य-पूर्वज (हिन्दी योरोपीय जाति) खुले मैदानों तथा पर्वतीय गुफाओं में जीवन व्यतीत करते हैं। नग्न शरीर को ठण्ड से बचाने के लिए, पशु चर्म का प्रयोग करते हैं। उनकी मुख्य भोजन-सामग्री कच्चा एव भुना मांस है।[2] भारत आने पर आर्य लोग ऋतु अनुसार ऊनी व सूती कपड़े धारण करत हैं। पुरुषों का पहनावा है—उष्णीष, कंचुक, अन्तरवासक (लुंगी) अथवा सुत्थन व कमर बंद। पैरों में प्रायः तनियों वाली चप्पलें पहनी जाती हैं।[3] स्त्रियाँ प्रायः उत्तरासंग (चादर), कंचुक व अन्तरवासक (लुंगी) धारण करती हैं।[4] रहने के लिए पहले तम्बुओं व झोंपड़ियों का और फिर कच्चे व पक्के मकानों का प्रयोग करने लगते हैं। असुरों के मकान पक्की ईंटों के और देखने मे अधिक अच्छे होते हैं।[5] आर्य, मांस के अतिरिक्त खान-पान के लिए घी, दूध, सत्तू व सोमरस का प्रयोग करते हैं।[6]

वैदिक युग के बाद आर्यों का रहन सहन व खान-पान उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य व हर्षवर्धन के शासन काल में आर्य-वंशजों का जीवन, अधिक सुखमय है। अतः इस समय को स्वर्णयुग कहा जाता है। ग्रामों की अपक्षा नगरों का जीवन अधिक समृद्ध है। ग्रामों में अधिकांश मकान छोटे व कच्चे हैं। नगरों में भव्य प्रासाद हैं। मुसलमान शासकों (अलाउद्दीन खिलजी व सम्राट् अकबर) के समय में नगरों एवं ग्रामों के जीवन में रंचन् ही अन्तर है। नगरवासियों की अपेक्षा ग्रामीणों का खाना-पीना पौष्टिक है। नगरों में, लोग, कुर्ते और अचकन का प्रयोग अधिक करते हैं।[7]

बीसवीं शताब्दी में नगरवासियों के रहन-सहन व खान पान में अधिक विलासिता एवं आडम्बर आ जाता है। इस पर अत्यधिक व्यय किया जाता है।

---

1 वही पृ० २७६

2 वोल्गा से गंगा, पृ० ८, ३५, ३८

3 वही, पृ० ४८, ६६

4 वही पृ० १००

5 वही, पृ० ८२

6 वही पृ० ५१, ५८

7 वही, पृ० २२७, २८८

पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोगों की दिनचर्या एवं वेशभूषा आदि सभी व्यवहारों में पाश्चात्य रंग-ढंग का बोलबाला है। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी कोट पेंट पहनने लगी हैं। रहने के लिए नवीन फैशन की भव्य कोठियाँ हैं।[१] इसके विपरीत, गाँव के लोगों का रहन सहन व भोजनादि पुराने ढंग का ही है। रहने के लिए वही कच्चे-पक्के साधारण मकान। धोती, कुर्ते का वही पुराना पहनावा है। खान-पान नगरों की अपेक्षा ग्रामों का पौष्टिक है। घी दूध का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।[२] नगर में रहने वाले श्रमिकों व निर्धनों का जीवन बड़ी परिश्रम का जीवन है। रहने के लिए साधारण मकान हैं। उन्हें पेट भर भोजन भी बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।[३]

(ब) आर्थिक अवस्था—आर्थिक दृष्टि से प्राचीन भारत के लोग समृद्ध हैं। पशुधन, मुख्य धन माना जाता है। मुख्य पशु अश्व व धेनु हैं। पशुधन की न्यूनाधिकता के आधार पर लोगों के धनी होने का अनुमान लगाया जाता है। अनार्य लोगों का अनुकरण कर आर्य-स्त्रियाँ सोने-चाँदी के आभूषणों से अपने अंग को अलकृत करने लगी हैं। सप्तसिन्धु प्रदेश में, स्थायी रूप से बस जाने के बाद आर्यों के मुख्य धन्धे व्यापार एवं कृषि हो गये हैं।[४]

मध्यकालीन भारत में ग्रामों की अपेक्षा नगरों की आर्थिक दशा अच्छी है। लोगों की आजीविका के मुख्य साधन कृषि, शिल्प व व्यापार हैं। सामुद्रिक वाणिज्य उन्नति के शिखर पर है। आर्थिक समृद्धि का मुख्य लाभ राजाओं, सामन्तों व व्यापारियों को ही है। श्रमिकों व कृषकों की दशा दयनीय है। गाँवों के शिल्पियों व कृषकों का धन सिमट-सिमट कर नगरों में आ जाता है।[५] मुसलमान शासकों के समय की आर्थिक स्थिति लगभग वैसी ही है जैसी कि हिन्दू शासकों के समय में मिलती है।[६]

अंग्रेजी शासन-काल में, आर्थिक विषमता वृद्धि पर है। सामन्तों, जमींदारों व सेठों के पास माया इकट्ठी हो रही है।[७] निर्धनों व श्रमिकों को दिन में एक बार आहार प्राप्त होना कठिन है। भूख से बचने के लिए उन्हें रात-दिन परिश्रम करना पड़ता है। भुखमरी से उनकी मृत्यु तक हो जाती है।[८] स्वतंत्र भारत में लोगों के मुख्य धन्धे कृषि, व्यापार, कार्यालयों में काम-काज व अन्य उद्योग-धन्धे हैं। सामान्यतः समाज के सभी वर्गों की आर्थिक दशा सुधार की ओर अग्रसर है।

---

१ वही, पृ० ३४८; बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १७, ४६, ४७, १२२
२ सतमी के बच्चे, पृ० २, १५ ८९
३ बहुरंगी मधुपुरी पृ० १७३, १९९, २४१ व २५८
४ वोल्गा से गंगा, पृ० ४७, ६९, ८०, १२३
५ वही, पृ० २०७
६ वही, पृ० २८४
७ वही, पृ० ३८८; बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २०, १२७
८ 'बहुरंगी मधुपुरी, पृ० १९९, २४१; सतमी के बच्चे, पृ० ७, ८९

(स) धार्मिक स्थिति—नवीन दृष्टिकोण के अनुसार समय विशेष में धर्म को किसी जाति अथवा वर्ग के लिए उचित ठहराया हुआ कर्त्तव्य माना जाता है।[१]

वोल्गा के तट पर रहने वाले आर्य-पूर्वज धर्म सम्बन्धी विषयों से अपरिचित हैं। वे केवल उदरपूर्ति की समस्या तक सीमित हैं। भारत आगमन पर (२००० ई० पू० के बाद) आर्य अग्नि, वरुण तथा इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करने लगते हैं। उनका विश्वास है कि इन्द्र की कृपा से उन्हें पीवर पशु और मधुर सोम प्राप्त होता है। असुरों के संहार में इन्द्र आर्यों की सहायता करता है। आर्य देवताओं की अर्चना सकाम भाव से करते हैं।[२] आर्यों का ब्रह्म और पुनर्जन्म में विश्वास है। धार्मिक कार्य पुरोहितों द्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं।[3] बौद्धमत के साथ देववाद व यज्ञवाद को सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगता है। बौद्धमत जाति-पाँति के बन्धनों से मुक्त है।[४]

भारत में यवनों का पदार्पण होने के बाद आर्यधर्म, एक विदेशी धर्म के सम्पर्क में आ जाता है। अपनी कट्टरता के कारण मुसलमान हिन्दुओं के प्रति वैमनस्य रखते हैं। हिन्दू भी उनके विपरीत स्वभाव व आचरण देख, उनसे दूर-दूर रहते हैं। यह जान कर कि हिन्दुओं की सहायता के बिना राज्य को शक्तिशाली नहीं बना सकते मुसलमान शासक उनके प्रति उदारता का व्यवहार करने लगते हैं। सम्राट् अकबर अपनी उदार धार्मिक नीति द्वारा हिन्दुओं व मुसलमानों में अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा को प्रोत्साहित करता है। सूफी फकीर अपने प्रेम प्रचार द्वारा हिन्दुओं व मुसलमानों के मनोमालिन्य को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।[५]

अंग्रेजी शासन काल में, भारत में ईसाई धर्म का प्रवेश होता है। ईसाई पादरी, धर्म के प्रचार के लिए लोगों को धन व उच्च शिक्षा जैसे प्रलोभन देते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य स्थापित होने पर सभी धर्मों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। कोई किसी के धार्मिक आचरण में हस्तक्षेप नहीं करता है। शिक्षा-प्रचार के साथ ही लोगों में धार्मिक संकीर्णता के भाव घटते दिखाई देते हैं। साम्यवाद के प्रचार के साथ कुछ लोगों में धर्म एवं ईश्वर के प्रति उदासीनता तथा अश्रद्धा बढ़ती जाती है।[६]

(द) सांस्कृतिक स्थिति—समाज की सभ्यता को अनुप्राणित करने वाले तत्वों में से 'संस्कृति' मूल तत्व है। आर्य संस्कृति, संसार की प्राचीनतम संस्कृति है।

---

१ साहित्य कोश — सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा।
२ वोल्गा से गंगा, पृ० ३४, ५२, ६७, व ७२
3 वही, पृ० १३०
४ वही, पृ० १६५
५ वही, पृ० २७६, २६२, २६३
६ वही, पृ० ३६७

अपनी विशेषताओं के कारण भारतीय सभ्यता के लिए, वह सदैव प्रेरणा स्रोत बनी रही है। राहुल जी की कहानियों से प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है।

संस्कृत-असंस्कृत—सभी आदिम तथा सभ्यता में अग्रगण्य जातियों में नृत्य, संस्कृति का एक मुख्य अंग रहा है। नृत्य मनोरंजन की एक उत्तम और प्राचीनतम ललित कला है।[१] यह अच्छा व्यायाम भी है। राहुल जी की कहानियों से ज्ञात होता है कि नृत्य, प्राचीन आर्य-संस्कृति का मुख्य अंग है। आर्य सोम रस के प्रेमी हैं उसे पी कर वे आनन्द-विभोर हो जाते हैं। तरुण, तरुणियों के साथ स्वच्छन्दता से नृत्य-गान करते हैं।[२] परस्पर वार्तालाप, हास परिहास व प्रेम प्रदर्शन के लिए, वे स्वच्छन्द हैं। आर्य युवक व युवतियाँ परस्पर निःसंकोच मुख-चुम्बन करते व आलिंगन बद्ध होते हैं। प्रेमिकाएँ अपने एक प्रेमी को छोड़, दूसरे प्रेमी से निःसंकोच शारीरिक सम्पर्क स्थापित करती हैं।[३] आर्य तरुणों की अश्वारोहण में रुचि है। वे तैरने को स्फूर्तिदायक व्यायाम समझते हैं। तरुण ही नहीं तरुणियाँ भी तैरने में कुशल हैं।[४]

संसार की अन्य प्राचीन जातियों में स्त्रियाँ उपेक्षित थीं। जो पुरुष जितनी स्त्रियाँ चाहता था, उतनी पत्नी रूप में रख लेता था। पैगम्बर मुहम्मद से पहले, अरब में, लड़कियाँ जन्म लेते ही जला दी जाती थीं। एथेन्स और स्पार्टा में स्त्रियों की नारकीय दशा रही है।[५] राहुल जी की कहानियों से ज्ञात होता है कि प्राचीन आर्य, स्त्रियों का सम्मान करते हैं। सभ्यता के विकास के साथ काम प्रवृत्ति पर वे नियन्त्रण व संयम से काम लेते हैं। स्त्रियाँ 'जन' की स्वामिनी हैं। युद्ध में भाग लेती हैं। वेदाध्ययन का उन्हें अधिकार है। लोपा प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी है। अपाला, गार्गी जैसी विदुषी आर्य-स्त्रियाँ ब्रह्मवाद, यज्ञवाद, पुनर्जन्मवाद जैसे गम्भीर विषयों पर तर्क-वितर्क करने की योग्यता रखती हैं।[६] अन्य स्त्रियाँ साधारण हैं। ये गृह कार्य में कुशल हैं। स्त्रियों में पर्दे की प्रथा नहीं है।

आर्य, अतिथि-सेवक हैं। अतिथि के प्रति निःसंकोच सम्मान प्रदर्शित किया जाता है। भोजन के लिए कई प्रकार के मांस व सोम-चषक प्रस्तुत किये जाते हैं। प्राचीन भारत में, लोग त्योहार (उत्सव) बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। इन्द्र-पूजा आर्यों का सबसे बड़ा त्योहार है। इन्द्र को अश्व की बलि दी जाती है। अनार्यों के विरुद्ध युद्ध में सहायता के लिये आर्य इन्द्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। स्वादिष्ट मांस और सोमरस का भोजन एवं पान किया जाता है। इन्द्रोत्सव मुख्यतः तरुणों का

---

१ ऋग्वेदिक आर्य, राहुल सांकृत्यायन, पृ० १४९, १५०
२ वोल्गा से गंगा, पृ० २३, ७४
३ वही, पृ० २०-२१, २४, १०८, ११०
४ वही, पृ० ८२, १०८
५ रामगोविन्द त्रिवेदी—हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका पृ० ६७
६ वोल्गा से गंगा, पृ० १५, ७९, १३१

त्योहार है। इस उत्सव पर, एक दिन-रात के लिए, तरुण सारे बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।[१] परिवार के महापितर के निर्वाचन के समय उत्सव मनाये जाते हैं। सोमरस पी कर तरुण और तरुणियों के समुदाय मस्ती में होड़ लगा कर नृत्य और गान करते हैं।[२]

यवनों के भारत में आने पर, यवन-संस्कृति का प्रभाव आर्य-संस्कृति पर पड़ता है। अब स्त्रियों को प्राचीन भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। समाज में स्त्री की अपेक्षा पुरुष का अधिक सम्मान होता है। स्त्रियों में पर्दे की प्रथा प्रचलित हो जाती है। तरुण-तरुणियों के स्वतंत्र प्रेम पर प्रतिबन्ध है। नृत्य-गान की अपेक्षा नाटकों के अभिनय में तरुण तरुणियों की रुचि अधिक है।[3] सम्राट् अकबर की उदार नीति के कारण अन्तर्जातीय विवाह होने लगते हैं। वसन्तोत्सव के दिन तरुण-तरुणियाँ परस्पर प्रेम-प्रदर्शन कर सकते हैं। प्राचीन भारत के सुरापान व नृत्य गान उत्सवों का प्रायः अभाव है। जीवन के अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त होने के कारण लोगों का ध्यान मनोरंजन के साधनों की ओर कम होता जाता है।[४]

बीसवीं शताब्दी में, भारतीय संस्कृति पर अँग्रेजी प्रभाव के लक्षण स्पष्ट हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीयों के खान-पान व रहन-सहन के अतिरिक्त लोगों की मनोरंजन करने की प्रवृत्ति पर भी पड़ा है। नगरों में रहने वाले सेठ, राजकुमार व सामन्त अपनी धन राशि अपने विलासी जीवन पर व्यय करते हैं। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी विलासमय जीवन में रुचि रखती हैं। तरुण-तरुणियां ग्रीष्म-काल व्यतीत करने के निमित्त प्रायः पर्वतीय स्थानों को जाते हैं। स्त्रियां अपने बनाव-शृंगार पर सैकडों रुपए खर्च करती हैं, होटलों में नृत्य करती एवं जूआ खेलती हैं और तरुणों को आकर्षित करने के लिए पान-गोष्ठियों का आयोजन करती हैं।[५] ऐसा विलासी जीवन केवल पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित अति धनाढ्य परिवारों में ही देखने को मिलता है। नगरों में रहने वाले अन्य धनी मध्यम वर्ग के लोग, सादा तथा आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करते हैं। नगरों व ग्रामों में रहने वाले श्रमिकों व निर्धनों को मनोरंजन की अपेक्षा अपना पेट पालने की चिन्ता अधिक है।[६]

पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के प्रसार के कारण, वर्तमान भारत में, पर्दे की प्रथा विशेषकर नगरों में बहुत दूर होती जा रही है। स्त्रियां पुरुषों के समान

---

१ वोलगा से गंगा, पृ० ७४, ७५।

२ वही, पृ० ४४

3 वही पृ० १८६, १९३

४ वही, पृ० २८८, २९३

५ बहुरंगी मधुपुरी, पृ० २०, ३४, ४७-४९

६ सतमी के बच्चे, पृ० ८७; बहुरंगी मधपुरी, पृ० १८५, १९९, २४१ व २५४

अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। वे अपने को सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र देखना चाहती हैं।[१]

प्रकृति-चित्रण

मानवीय अनुभूतियों को मार्मिक बनाने और कहानी की घटनाओं को पाठकों की कल्पना में सजीव करने के हेतु कहानी में प्रकृति-चित्रण किया जाता है। घटनाओं को सजीव बनाने के लिए राहुल जी ने अपनी कहानियों में प्रकृति-चित्रण किया है।

ऋतुएँ छः हैं—ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर व वसन्त। राहुल जी ने इन छः ऋतुओं में से चार का वर्णन किया है। उन्होंने शरत्, हेमन्त व शिशिर—इन तीन ऋतुओं को एक मान कर वर्णन किया है। ग्रीष्म काल का चित्र, राहुल जी ने, अपनी कहानियों में बहुत कम खींचा है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—"ग्रीष्म का आरम्भ था। हरे-हरे वृक्षों को धीरे-धीरे कम्पित करने वाला समीर बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था।"[२] यह चित्र अति संक्षिप्त है। इससे ग्रीष्म ऋतु के आगमन की सूचना मात्र मिलती है। यहाँ वृक्षों के हरे पत्तों व मन्द समीर द्वारा निर्मित सुहावने वातावरण के मार्मिक चित्रण की ओर राहुल जी का ध्यान नहीं गया है। ग्रीष्म काल के आगमन की सूचना देने के बाद उन्होंने कहानी की घटनाओं को आगे बढ़ाना आरम्भ कर दिया है।

वर्षा ऋतु का चित्रण करते हुए, राहुल जी लिखते हैं—"वर्षा के मटमैले पानी की धार चारों ओर फैली दिखलाई पड़ रही थी। पानी समतल भूमि पर धीरे-धीरे फैलता, ढालुआ जमीन पर दौड़ता और नालों-नदियों में खेलती पहाड़ी नदियों के विस्तृत जल का रूप धारण कर रहा था। वृक्षों ने मानो वर्षा को अब भी रोक रखा था, उनसे बड़ी बड़ी बूँदें अब भी टपाटप गिर रही थीं। वैसे वर्षा अब फुहारों की शक्ल में परिणत हो गई थी।"[३] इस चित्र में राहुल जी ने वर्षा ऋतु के नीले काले घनों से आच्छादित नभ का तथा चमचमाती मन्दाकिनी की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित न कर वर्षा के मटमैले पानी मात्र का वर्णन किया है। चित्र आकर्षक नहीं बन सका है।

शरत् ऋतु के चित्र, राहुल जी की कहानियों में अत्यल्प हैं। शरत् की पूनो का चित्र उन्होने इस प्रकार खींचा है—'शरत् की पूनो थी। शाम से ही चन्द्रमा का थाल पूर्व क्षितिज पर उग आया था और जैसे जैसे क्षितिज पर फैली सूर्य की अन्तिम लाल किरणें आकाश छोड़ रही थीं, वैसे ही वैसे चन्द्रमा की शीतल श्वेत किरणें प्रसारित हो रही थीं।"[४] इस चित्र में सूर्य के अस्त होने और चांद के निकलने की

---

१ बहुरंगी मधुपुरी, पृ० ७८
२ वोल्गा से गंगा, पृ० २५५
३ सुरैया (वोल्गा से गंगा), पृ० २८५
४ प्रभा (वोल्गा से गंगा), पृ० २०४

सूचना मात्र है। पूर्ण चन्द्रमा की धवल ज्योत्स्ना में स्नात रात्रि का आकर्षक चित्र नहीं है।

राहुल जी ने, वसन्त ऋतु के चित्र अधिक आकर्षक रूप में प्रस्तुत किये हैं। एक स्थान पर वसन्त ऋतु के आगमन की सूचना देते हुये वे लिखते हैं—"फर्गाना के हरे-हरे पहाड़, जगह जगह बहती सरितायें तथा चश्मे, कितने सुन्दर हैं, इसे वही जान सकते हैं, जिन्होंने काश्मीर की सुषमा देखी है। हेमन्त बीतकर वसन्त आ गया है और वसन्त भी उस पार्वत्य उपत्यका को भूस्वर्ग बना रही है।"[१] पार्वत्य उपत्यका को भू-स्वर्ग बनाने वाले उपकरणों का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रकृति-चित्रण से सम्बद्ध उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि राहुल जी ने अपनी कहानियों में ऋतुओं का चित्रण बहुत साधारण और चलता हुआ किया है। ऋतुओं के चित्रों में मार्मिकता का अभाव है। चित्र स्थूल एवं बाह्य हैं। प्रकृति के उपकरणों की गणना मात्र है।

राहुल जी पर्वत-यात्राओं के प्रेमी हैं। पार्वत्य वनस्पति उनके मन को आकर्षित करती है। पर्वतीय वृक्षों में से उन्होने देवदारु और शाल वृक्षों के चित्र अधिक खींचे ह। देवदारु वृक्ष का चित्रण करते हुये वे लिखते हैं—'वक्षु की घर्घर करती धारा बीच में बह रही थी। उसके दाहिने तट पर पहाड़ धारा से ही शुरू हो जाते थे, किन्तु बाईं तरफ अधिक ढालुआँ होने से उपत्यका चौड़ी मालूम होती थी। दूर से देखने पर सिवाय घन हरित उत्तुंग देवदारु वृक्षों की स्याही के कुछ नहीं दिखलाई पड़ता था; और नजदीक आने पर नीचे ज्यादा लम्बी और ऊपर छोटी होती जाती शाखाओं के साथ उनके बाण जैसे नुकीले शृंग दिखलाई पड़ते थे और उनके नीचे तरह-तरह की वनस्पति तथा दूसरे वृक्ष भी थे।"[२] देवदारु वृक्ष का यह चित्र विशद अधिक है, प्रभावशाली कम। इस चित्र में देवदारु की लम्बी लम्बी नुकीली शाखाओं का उल्लेख मात्र है, चित्रण की मार्मिकता नहीं।

राहुल जी ने अपनी कहानियों में सरस और शुष्क दोनों प्रकार की प्रकृति के चित्र खींचे हैं। सरस प्रकृति में उन्होंने पार्वत्य वनस्पति, मनोहारी सरिता तटों, उद्यानों तथा शान्त व निर्मल सरोवरों के चित्र अधिक खींचे हैं। शुष्क प्रकृति में उन्होने वनस्पति शून्य पर्वतों के चित्र खींचे हैं। उदाहरणस्वरूप सरोवर युक्त उद्यान की छटा का एक सरस चित्र प्रस्तुत है—"बाग के बीच में एक सुन्दर पुष्करिणी थी, जिसके नील विशुद्ध जल में पद्म, पुण्डरीक आदि नाना वर्णों के कमल खिले तथा हंस-मिथुन तैर रहे थे। चारों ओर श्वेत-पाषाण के घाट थे, जिनके सोपान स्फटिक की भाँति चमकते थे। सरोवर के किनारे पर हरी दूब की काफी चौड़ी मगजी लगी थी। फिर कहीं गुलाब, जूही, वेला आदि फूलों की क्यारियाँ थीं और कहीं तमाल-

---

[१] अमृताश्व (वोल्गा से गंगा), पृ० ३३
[२] पुरुहूत (वोल्गा से गंगा), पृ० ४८

बकुल अशोक-पंक्तियों की छाया। कहीं लतागुल्मों से घिरे पाषाण तलवाले छोटे-बड़े लतागृह थे और कहीं कुमार-कुमारियों के कन्दुक क्षेत्र। उद्यान में कई पाषाण मृत्तिका और हरित वनस्पति से आच्छादित रम्य क्रीड़ा पर्वत थे। कहीं कहीं जलयन्त्र(फव्वारे) जल-शीकर छोड़ वर्षा का अभिनय कर रहे थे।[1] उक्त चित्र में अधिक बल बाग की सुन्दरता बढ़ाने वाले उपकरणों की गणना पर है फिर भी सरोवर के विभिन्न प्रकार के कमलों व जलयन्त्र के जल-शीकरों के कारण चित्र में सजीवता एवं प्रभाव है। सरस प्रकृति के चित्र राहुल जी, तन्मयता से खींचते हैं। ऐसे चित्र अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं।

प्रकृति के शुष्क पक्ष का एक उदाहरण प्रस्तुत है—"चारों ओर छोटे छोटे नंगे वृक्ष वनस्पति शून्य पहाड़ थे, वहाँ हरियाली देखने को आँखें तरस रही थीं।[2]" ऐसे शुष्क स्थल राहुल जी को आकर्षित नहीं कर सके हैं। अपेक्षाकृत ऐसे चित्र संक्षिप्त एवं शुष्क हैं।

राहुल जी की कहानियों के प्रकृति चित्र रसात्मक कम और इतिवृत्तात्मक अधिक हैं। इतिवृत्तात्मक चित्रों में, उन्होंने प्रकृति के उपकरणों की गणना मात्र की है।[3] ऐसे चित्रों में मार्मिकता एवं सजीवता का अभाव है। इन चित्रों को पढ़कर पाठक प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव नहीं करते हैं।

निष्कर्ष

'वोल्गा से गंगा' की प्रथम पांच कहानियों व 'सतमी के बच्चे' की स्मृतिज्ञान कीर्ति नामक कहानी को छोड़, राहुल जी की शेष सभी कहानियों का सम्बन्ध भारत के विभिन्न प्रदेशों व नगरों से है। इन कहानियों से प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। राहुल जी ने अपनी कहानियों में समाज के किसी वर्ग विशेष का चित्रण नहीं किया है। उन्होंने समाज के सामान्य जीवन के चित्र प्रस्तुत किये हैं 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों में मानव समाज के विकास की कहानी है। 'सतमी के बच्चे' संग्रह में जहाँ सतमी, जीता, राजबली व जैसिरी जैसे निर्धनों की कहानियां हैं, वहाँ पाठक जी, पुजारी, रामगोपाल जैसे मध्यवर्ग के व्यक्तियों तथा जगलाल पांडे जैसे धनी जमीदार के जीवन चरित्र भी हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' में समाज के उच्च, मध्यम, निम्न-तीनों वर्गों से सम्बद्ध व्यक्तियों की चरितात्मक कहानियाँ हैं।

राहुल जी की कहानियों में, कथा की अपेक्षा वातावरण तत्व की प्रधानता है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ वातावरण-चित्रण के उद्देश्य से लिखी गई हैं। इस संग्रह के पूर्वार्द्ध की कहानियों में वातावरण तत्व की अपेक्षा कथा बहुत कम है। 'वोल्गा से गंगा' नामक संग्रह की बीस कहानियों में से बारह कहानियों का आरम्भ

---

[1] प्रभा (वोल्गा से गंगा), पृ० १८४, १८५

[2] नागदत्त (वोल्गा से गंगा), पृ० १६०

[3] उदाहरणों के लिए कृपया देखिये, निशा, दिवा (वोल्गा से गंगा), पृ० २, १६

विशद प्रकृति-चित्रण से किया गया है। इस संग्रह की प्राय: समस्त कहानियों में कथा के साथ सामाजिक वातावरण का चित्रण चलता रहता है। कहीं कहीं वातावरण का चित्रण मात्र ही है, कथा का नितान्त अभाव है।[1] 'सतमी के बच्चे' की डीह बाबा नामक कहानी तेरह पृष्ठों में है, इसमें सात पृष्ठों में कनैला ग्राम के विकास का इतिहास है। इस संग्रह की शेष कहानियाँ संक्षिप्त हैं। इनमें कथारम्भ से पूर्व विषद भूमिका नहीं है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की प्रत्येक कहानी में मधुपुरी की ऋतुओं, इसके विकास व ह्रास के चित्र हैं। ऐसे स्थल कथा की गति में अवरोध का कारण सिद्ध हुये हैं।[2]

राहुल जी की कहानियों में, सामाजिक वातावरण की अपेक्षा प्राकृतिक वातावरण का चित्रण बहुत कम हुआ है। प्रकृति-चित्रण सबसे अधिक 'वोल्गा से गंगा' की पूर्वार्ध की कहानियों में हुआ है। बहुरंगी मधुपुरी में जीवन-चरित्र प्रस्तुत किये गये हैं। प्रकृति-चित्रण बहुत कम हुआ है। 'सतमी के बच्चे' की कहानियों में प्रकृति-चित्रण का प्राय: अभाव है। राहुल जी की कहानियों में ग्रीष्म, वर्षा, शरत् व वसन्त इन चार ऋतुओं का वर्णन हुआ है। सबसे अधिक चित्र वसन्त ऋतु के हैं। अन्य ऋतुओं के चित्रों की अपेक्षा वसन्त ऋतु के चित्र अधिक हृदयग्राही हैं। ग्रीष्म ऋतु के चित्रण अति संक्षिप्त हैं। वे पाठक की कल्पना में कोई चित्र प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। पार्वत्य वनस्पति में देवदारु वृक्ष का चित्रण अधिक हुआ है। मैदानी वृक्षों में आम, नीम और इमली का उल्लेख किया गया है।

राहुल जी ने प्रकृति के सरस एवं शुष्क दोनों पक्षों का चित्रण किया है। सरस प्रकृति में उद्यानों, सरोवरों, शस्य श्यामल खेतों के चित्र अधिक मनोहारी हैं। शुष्क प्रकृति में वनस्पति शून्य पर्वतों, जेठ मास के जलरहित तालाबों व सुनसान कब्रिस्तानों के चित्र मिलते हैं। शुष्क प्रकृति के चित्र संक्षिप्त एवं प्रभावहीन हैं।

(घ) राहुल जी की कहानियों में उद्देश्य-तत्व

कहानी का उद्देश्य केवल पाठकों का मनोरंजन करना नहीं है। कहानीकार, कथा के माध्यम द्वारा पाठकों के समक्ष मानव-जीवन तथा मानव-मन सम्बन्धी कुछ तथ्यों को प्रत्यक्ष करता है। उपन्यास के समान कहानी, विशद जीवन-मीमांसा नहीं होती किन्तु इससे प्राय: कहानीकार के जीवन के प्रति दृष्टिकोण का परिचय मिल

---

१ उदाहरणों के लिए कृपया देखिये—
पुरुधान, पृ० ७४ से ७७; प्रवाहण, पृ० १२२, १३०-१३१,
बन्धुलमल्ल, पृ० १४७-१४६; सुपर्ण यौधेय, पृ० २२६-२२६,
सुमेर, पृ० ३६४-३६६ (वोल्गा से गंगा)

२ उदाहरणों के लिए कृपया देखिये—
हाय बुढ़ापा, पृ० १४-१५; ठाकुर जी, पृ० ८१
कमलसिंह, पृ० १७१; पेड़ बाबा, पृ० २१६-२१७ (बहुरंगी मधुपुरी)

जाता है। यह दृष्टिकोण कहानीकार की प्राय: समस्त कहानियों में अदृश्य रूप से व्याप्त रहता है। राहुल जी चिन्तनशील कथाकार हैं। उन्होंने अपने जीवन-दृष्टिकोण को कहानियों के माध्यम द्वारा व्यक्त किया है। उनकी कहानियों के उद्देश्य का निरूपण करने से पूर्व, कहानियों में व्याप्त राहुल जी की जीवन-दृष्टि का विश्लेषण अभीष्ट है।

मानवता का विकास और राहुल जी

मानव, मूल रूप में शारीरिक दृष्टि से पशु है। सभ्यता एवं संस्कृति की क्रोड में निरन्तर विकसित होने के कारण वह पशु से सुसंस्कृत मानव बना है। विकास की जिस अवस्था को मानव आज प्राप्त है वह सहस्रों वर्षों की साधना का परिणाम है। 'वोल्गा से गंगा' कहानी संग्रह की बीस कहानियों के माध्यम द्वारा राहुल जी ने मानव के आदिम जीवन से वर्तमान जीवन तक के विकास की कहानी प्रस्तुत की है।

मानवता की आरम्भिक अवस्था का परिचय देते हुये राहुल जी लिखते हैं कि यह युग मानवता के लिए स्वच्छन्दता का युग है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में मानव निश्चिन्त एवं निर्बाध जीवन व्यतीत करता है। पुरुष की अपेक्षा नारी अधिक स्वतन्त्र है। वह परिवार की स्वामिनी है। परिवार की रक्षा का भार उसी पर है। उसकी आज्ञा, परिवार के समस्त सदस्यों के लिए, शिरोधार्य है।[1] इस युग के मानव का चरम लक्ष्य अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र है। वह अपना समय खान-पान की सामग्री की खोज में तथा वन्य पशुओं से स्व-रक्षा में व्यतीत करता है। काम-वृत्ति की तृप्ति के लिए पुरुष व स्त्री कृत्रिम बन्धन रहित हैं। परिवार की स्वामिनी का अपने पुत्रों एवं भाइयों से यौन सम्बन्ध है। किसका कौन पिता है, यह बतलाना असम्भव है। स्त्री को अपने एक पति के मर जाने का कोई दु:ख नहीं, उसके पति अनेक हैं।[2] शीतनिवारण हेतु शरीर पर चर्म-परिधान का प्रयोग किया जाता है अन्यथा पुरुष एवं स्त्री नि:संकोच नग्न-शरीर रहते हैं।[3] प्रेमी-प्रेमिकाएँ परस्पर प्रेम-प्रदर्शन के लिए स्वतंत्र हैं। स्वच्छन्दता से वे मुख-चुम्बन का आदान-प्रदान करते हैं, आलिंगन-बद्ध होते हैं और अंक-शयन करते हैं। तरुण-तरुणियाँ नग्न हो, एक साथ नदी में स्नान करते व तैरते हैं।[4] कच्चा, उबला व भुना माँस खाया जाता है। अश्व-मांस व वत्सर मांस को अधिक स्वादिष्ट समझा जाता है। सोमरस का पान किया जाता है। पशुओं के गरम लहू तक को पिया जाता है।[5] जहाँ तक द्वन्द्व-प्रवृत्ति का सम्बन्ध है इस युग में मानव, पशुवत आचरण करता है।

---

[1] निशा (वोल्गा से गंगा), पृ० १३, १५

[2] वही, पृ० ११, १२

[3] वही, पृ० १०

[4] दिवा. पृ० २०, २१; पुरुधान, पृ० ७५ (वोल्गा से गंगा)

[5] निशा, पृ० १०; अमृताश्व, पृ० ३४, ३५ (वोल्गा से गंगा)

युद्ध में विजयी परिवार परास्त परिवार का चिह्नमात्र मिटा देता है। दुध-मुँहे बच्चों को पत्थरों पर पटका जाता है। वृद्ध-वृद्धाओं के गले में पत्थर बाँधकर उन्हें नदी में डुबा दिया जाता है। कुछ को आग में जला दिया जाता है।[१]

राहुल जी के विचारानुसार मानव-इतिहास के मध्यकाल में मानव को आदिम युग की स्वतन्त्रता नहीं है। मानव को राज्य और समाज के अनुशासन के अधीन रहना पड़ता है। आदिम युग में परिवारों के परस्पर संघर्ष होते थे। अब राज्यों में जाति व धर्म के नाम पर युद्ध होते हैं।[२] इस युग में आदि युग की आर्थिक व सामाजिक समानता का अभाव है। धनी लोग निधनों को दास बना कर रखते हैं। उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं।[३] आदिम युग की अपेक्षा इस युग में, स्त्री को पुरुष की अपेक्षा कम महत्व दिया जाता है। पर्दे की प्रथा प्रचलित है। लोगों के खान-पान में, पूर्व युग की माँस व मदिरा की अधिकता का अभाव है। प्रेमी-प्रेमिकाओं के परस्पर सार्वजनिक चुम्बनों के आदान-प्रदान व आलिंगनों का अभाव है। जाति-पाँति सम्बन्धी पारस्परिक वैमनस्य को समाप्त करने के निमित्त अन्तर्जातीय विवाह को जन-साधारण में प्रोत्साहित किया जाता है।[४]

आधुनिक युग में मानवता के विकास के सम्बन्ध में राहुल जी का विचार है कि वैज्ञानिक आविष्कारों तथा शिक्षा के प्रसार के कारण इस युग में मानवता का विकास अति तीव्रता से हुआ है। वाष्पयान एवं वायुयान के आविष्कार के फलस्वरूप विभिन्न देशों व प्रदेशों का सम्पर्क परस्पर बढ़ गया है। पिछड़ी हुई जातियों ने विकसित जातियों के सम्पर्क में आने से आश्चर्यजनक उन्नति की है। इसी प्रकार अंग्रेज-जाति के सम्पर्क में आने से भारत ने आधुनिक ढंग से रहने की तीव्रता से उन्नति की है। रहने के लिए भारत में भव्य व विशाल कोठियों का निर्माण होने लगा है। लोगों की वेशभूषा अंग्रेजी ढंग की हो गई है। खान-पान में मांस और मदिरा के प्रति लोगों की रुचि बढ़ चली है। लोगों का खान-पान पौष्टिक कम और आडम्बरपूर्ण अधिक है। मनोरंजन के लिए सैकड़ों-हजारों रुपयों का अपव्यय कर दिया जाता है।[५]

भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव नगरों में रहने वाले धनी लोगों के जीवन तक सीमित है। नगरों व ग्रामों में रहने वाले श्रमिकों व निर्धनों को पेट पालने के लिए रात-दिन लहू-पसीना एक करना पड़ता है। आजीविका न मिलने पर निर्धन

---

[१] अमृताश्व (वोल्गा से गंगा), पृ० ४७
[२] चक्रपाणि (वोल्गा से गंगा), पृ० २५०
[३] सुपर्ण यौधेय (वोल्गा से गंगा), पृ० २२७, २२८
[४] सुरैया (वोल्गा से गंगा), पृ० २६३
[५] हाय बुढ़ापा (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० २०; कुमार दुरंजय (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० ३२; मीनाक्षी (बहुरंगी मधुपुरी), पृ० १२२

भुखमरी से मर जाते हैं। चिकित्सा के लिए उनके पास पैसे नहीं होते। धनाभाव में उनकी प्रतिभा अविकसित रह कर नष्ट हो जाती है।

राहुल जी के अनुसार, इस युग में, मानवता के सब से बड़े शत्रु दो तत्व हैं—सामाजिक तथा आर्थिक विषमता। जाति-पाँति के भेद-भाव के कारण समाज निर्बल होता जा रहा है। जब तक समाज के जाति-पाँति सम्बन्धी भेदभाव समाप्त नहीं होंगे, भारत में एक सुगठित एवं सुव्यवस्थित राज्य की स्थापना नहीं हो सकेगी।[1] आर्थिक विषमता के कारण भी समाज की जड़ें खोखली होती जा रही हैं। सेठों, धनियों व उद्योगपतियों की शोषणवृत्ति के कारण निर्धनों व श्रमिकों की दरिद्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। निर्धनता के कारण इन लोगों के विकास के मार्ग अवरुद्ध हो चुके हैं। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर भी शोषकों द्वारा श्रमिकों का शोषण समाप्त नहीं हुआ है। राहुल जी का मत है कि भारत ही नहीं अपितु विश्व की समस्याओं का समाधान केवल साम्यवाद द्वारा हो सकता है। इसी के द्वारा समाज में समानता, स्वतन्त्रता एवं भ्रातृभाव का शासन स्थापित किया जा सकता है।

प्रकृति का रहस्य और मानव की आस्था

प्रकृति मे पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, पृथ्वी, वृक्षादि सम्मिलित हैं। प्रकृति व मानव चिरकाल से सहचर हैं। राहुल जी की कहानियों में मानव और प्रकृति के चिर-साहचर्य का निराला साक्ष्य है। आदिकाल का मानव प्रकृति पर पूर्णतया आश्रित है। अपनी सहायता के लिए वह प्रकृति की अपेक्षा रखता है। धन-धान्य की समृद्धि तथा असुरों पर विजय प्राप्त करने के निमित्त वह इन्द्रादि देवताओं से अनुनय-विनय करता है। देवताओं के प्रकोप से वह भयभीत है। अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि जैसे प्रकृति के प्रकोपों से बचने के लिए वह इन्द्र वरुणादि देवताओं को पशु-बलि देता है। आदिकाल के मानव का भय ही धर्म एवं श्रद्धा है।

आज का मानव आत्म-निर्भर है। खाद्य-पदार्थों, खनिज-वस्तुओं और जीवन सम्बन्धी अन्य आवश्यक तत्वों को प्रकृति से प्राप्त करते हुए भी, वह प्रकृति द्वारा नियन्त्रित नहीं है। अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि से अब उसे भय नहीं है। प्रकृति की ऐसी विभीषिकाओं से अपनी रक्षा करने में वह पूर्णतः समर्थ है। वैज्ञानिक अविष्कारों से उसने सर्दी गर्मी पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। वह वायुयान द्वारा आकाश में तथा जलयान द्वारा समुद्र में यात्रा कर सकता है। राहुल जी के अनुसार आज के मानव ने प्रकृति पर इतना नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है कि उसकी देवताओं की कल्पना से आस्था हट गई है। भगवान् में उसका विश्वास नहीं रहा है। धर्म को वह असहिष्णुता के प्रचार का साधन समझने लगा है। भाग्य अथवा भगवान् पर

---

[1] सुपर्ण यौधेय, पृ० २२७; मंगलसिंह, पृ० ३२८, ३३१; सफदर, पृ० ३५४; सुमेर, पृ० ३६८ (वोल्गा से गंगा)।

आश्रित रहने की अपेक्षा वह अपने भुजदंडों पर विश्वास करना अधिक श्रेयस्कर समझता है ।[1]

मानव और धर्म

राहुल जी के अनुसार संसार की अन्य सभी वस्तुओं की भाँति, धर्म परिवर्तनशील है। धर्म, समय एवं स्थान के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। धर्म की परिवर्तनशीलता को राहुल जी ने धर्म की 'धूप-छाँह' कहा है। इस सम्बन्ध में वे पात्र सुपर्ण यौधेय (वोल्गा से गंगा) से कहलाते है—"जान नहीं पड़ता यह परिवर्तन-चक्र क्यों घुमाया जा रहा है। पश्चिमी उत्तरापथ गन्धार में अब भी मधुपर्क में वत्स-मांस दिया जाता है, किन्तु मध्य-प्रदेश, युक्त प्रान्त और बिहार में गोमांस का नाम लेना पाप है—वहां गोब्राह्मण रक्षा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। मुझे समझ में नहीं आता, आखिर धर्म में इतनी धूप छाँह क्यों? क्या एक जगह अधर्म दूसरी जगह धर्म होकर चलता रहेगा, अथवा एक जगह परिवर्तन पहले आया है, दूसरी जगह उसी का अनुकरण किया जायेगा।"[2] राहुल जी धर्म को सार्वभौम नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि एक स्थान पर जिस को अधर्म माना जाता है उसी को दूसरे स्थान पर धर्म माना जाता है।

राहुल जी धर्म को कर्त्तव्य का पर्यायवाची मानते हैं। उनका मत है कि मनुष्य रूप में जन्म लेने से हमारे कुछ कर्त्तव्य हो गये हैं। हमें उन कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहना चाहिये। जो धर्म, निर्धनों एवं निर्बलों की सहायता नहीं करता, तथा दासों और स्त्रियों पर अन्याय करता है वह अग्राह्य है। धर्म का स्वरूप बताते हुये राहुल जी कहते हैं कि स्वस्थ मानव का मन, जिसे उचित समझे, वही धर्म है।[3]

राहुल जी का मत है कि प्रचलित कुप्रथाओं के कारण रूढ़िगत धर्म का पालन समाज के लिए क्षय रोग के समान घातक है। कट्टर मुसलमान व पंडित, समाज में वैमनस्य फैलाते हैं। मन्दिरों और मसजिदों का निर्माण होड की दृष्टि से किया जाता है। एक दूसरे के धर्म पर आक्षेप किये जाते हैं। पाखंडी साधु व ठग महात्मा अंध-भक्तों को ठगते है। शिक्षित लोग भी इनके सम्मुख भ्रमवश नतमस्तक हो जाते हैं। ब्राह्मण, पुरोहित, वंचक महात्मा निर्धनों की श्रम की कमाई का शोषण करते हैं।[4] राहुल जी का विचार है कि समाज को धर्म के क्षयरोग से बचाने के लिए धार्मिक कुरीतियों का उन्मूलन अनिवार्य है। धर्म के जाल से बचने के लिए धार्मिक को स्वयं सचेत होना चाहिये। साम्यवादी विचारधारा आर्थिक विषमता को समाप्त करने के साथ, धार्मिक शोषकों की शोषणवृत्ति को भी समाप्त करती है। अतः

---

[1] मंगल सिंह, पृ० ३३१; सुमेर, पृ० ३६७, ३७१ (वोल्गा से गंगा)
[2] सुपर्ण यौधेय (वोल्गा से गंगा), पृ० २१२
[3] नागदत्त (वोल्गा से गंगा), पृ० १५५
[4] महाप्रभु, पृ० ६७-६८; पेड़ बाबा, पृ० २२६-२२८ (बहुरंगी मधुपुरी)

धार्मिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए साम्यवाद का अवलम्बन ग्रहण करना चाहिये।[1]

मानव-जीवन और प्रेम

'मैं' और 'तू' की भावना से उत्पन्न अज्ञान के कारण मानव परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझता है। भिन्न दीख पड़ने वाले मानव-शरीरों में परस्पर प्रेम का एक अदृश्य सूत्र विद्यमान है। मानव-जीवन में प्रेम के अनेक रूप हैं, जैसे राष्ट्र-प्रेम, आदि। तीव्रता एवं प्रभाव की दृष्टि से स्त्री-पुरुष का प्रणय अद्वितीय है। प्रेम का स्वरूप निर्धारित करते हुये राहुल जी लिखते हैं कि प्रेम का अर्थ यह नहीं है कि प्रेमी प्रिय के दोषों की ओर से आँखें मोंच ले। प्रेम प्रेमी और प्रिय दोनों को आदर्श जीवन के लिए प्रेरित करता है। अवसाद के समय, प्रेम, प्रेमी को हस्तावलम्ब देता है, उसमें उत्साह एवं स्फूर्ति का नव संचार करता है।[2]

राहुल जी मानवतावादी हैं। वे मानव-मात्र से प्रेम को उच्च कोटि का प्रेम समझते हैं। वे उन लोगों की कटु आलोचना करते हैं जो स्वार्थपरता के कारण मानव-मानव के मध्य वैमनस्य के बीज बोते हैं। उनका मत है कि प्रेम मानव की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करता है। प्रेम के बल पर ही मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है।[3]

सामाजिक रूढ़ियाँ

राहुल जी रुचि से समाज-सुधारक हैं। समाज-सुधार के लिए प्रचलित निःसार सामाजिक रूढ़ियों के उन्मूलन को वे अत्यावश्यक समझते हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों का अनावरण किया है।

जाति-पाँति गत भेदभाव को राहुल जी समाज के लिए घातक मानते हैं। वे कहते हैं कि जिस वर्ण-व्यवस्था को कार्य-विभाजन के लिए बनाया गया था, वह अपनी उपयोगिता खो चुकी है। वर्ण-व्यवस्था, आज, मानवता पर मरण-व्यवस्था के रूप में आक्रान्त है। इसके कारण, जन-शक्ति क्षीण हो रही है। जाति-पाँति के समाज में विद्यमान रहने पर सुगठित राष्ट्र निर्माण के निमित्त किये गये सभी प्रयत्न विफल रहेंगे।[4] वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करने के लिए अन्तर्जातीय विवाह को, राहुल जी, एक अच्छा उपाय मानते हैं। साथ ही, उन्हें यह भी डर है कि जब तक स्वार्थी लोगों का अन्त नहीं होगा, इस प्रथा का प्रचुरता से प्रचलित होना भी कठिन है।[5] साम्य-वाद जाति-पाँति के बन्धन से रहित है। राहुल जी का विचार है कि साम्यवाद का प्रचार जाति-पाँति की कुरीति को समाज से समाप्त करने में सहायक हो सकता है।[6]

---

[1] सुमेर (वोल्गा से गंगा), पृ० ३६७
[2] सुदास्, पृ० १०५; प्रवाहण, पृ० १२४ (वोल्गा से गंगा)
[3] बाबा नूरदीन (वोल्गा से गंगा), पृ० २७६, २७८
[4] वोल्गा से गंगा, पृ० २६१
[5] वही, पृ० २६३
[6] वही, पृ० ३१६, ३७१

सामाजिक रूढ़ियों में अंध-विश्वास को राहुल जी समाज की उन्नति में बाधक समझते हैं। उन्हें आश्चर्य इस बात पर है कि विज्ञान के युग में, शिक्षित लोग भी सामाजिक कुरीतियों से अपने को मुक्त करने में असमर्थ हैं। जादू-टोनों, पीर-पैगम्बरों, ज्योतिष, पशुबल आदि पाखंडों में विश्वास करने वाले व्यक्तियों को राहुल जी मूर्खों में गिनते हैं। उनका मत है कि इन आडम्बरों पर आश्रित रहने की अपेक्षा मनुष्य को अपनी भुजाओं पर विश्वास रखना चाहिए। समाज को पाखंडी साधुओं व महात्माओं से बचाना चाहिये क्योंकि ये लोग भी समाज का शोषण करते हैं।[१]

राहुल जी को सन्तोष है कि पाश्चात्य सभ्यता, विज्ञान के आविष्कारों एवं शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज से कुरीतियाँ समाप्त होती जा रही हैं किन्तु इसके लिए अभी प्रयत्नों की आवश्यकता है। उनका विचार है कि भारत के ग्रामों में अंधविश्वासों का सबसे अधिक प्रभाव है।[२] शिक्षा प्रसार द्वारा गाँवों को इन कुरीतियों से बचाना समाज की उन्नति के लिए परमावश्यक है।

साम्यवाद

साम्यवाद, मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वह सिद्धान्त है, जिसका उद्देश्य ऐसे वर्ग-हीन समाज की स्थापना है कि जिसमें सम्पत्ति पर समाज का समान अधिकार हो और व्यक्ति से शक्ति भर काम लेकर उसकी सारी आवश्यकताएँ पूरी की जायँ।[3] राहुल जी साम्यवादी हैं। उन्हें शोषकों से घृणा और शोषितों से पूर्ण सहानुभूति है। उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा यह सिद्ध किया है कि साम्यवादी व्यवस्था का अस्तित्व प्राचीन भारत में भी था।

राहुल जी लिखते हैं कि आदि मानव, मेरा तेरा के भाव से अपरिचित हैं। मेरा-तेरा का प्रश्न बहुत आगे चलकर उठा है। उस समय सभी चीजों पर सब का समान अधिकार है।[४] जन-स्त्री, पुरुष दोनों साथ मिलकर सम्पत्ति अर्जित करते हैं। साथ ही उसे भोगते हैं। न मिलने पर साथ ही भूखे मरते हैं। आर्थिक विषमता का भाव राजतन्त्र के जन्म के साथ उत्पन्न हुआ है। राजवाद, प्रजा की परिश्रम की कमाई को मुफ्त में खाने का साधन है। राजा चोर हैं। जन अधिकार के अपहारक हैं। मिट्टी से सोना उपजाने वाले भूखे-नंगे मरते हैं और सोने को मिट्टी करने वाले राजा व शोषक मौज उड़ाते हैं। श्रमिक, शिल्पी, कृषक रात-दिन लहू-पसीना एक करके जो उपार्जन करते हैं उसका उपभोग उनके लिए स्वप्न मात्र है। 'कर' व लाभ के रूप में

---

१ डीह बाबा, पृ० १९, २०; दलसिंगार, पृ० ११० (सतमी के बच्चे) महाप्रभु, पृ० ६८; पेड़ बाबा, पृ० २२८ (बहुरंगी मधुपुरी)

२ मीनाक्षी, पृ० १३१; चम्पो, पृ० २६७ (बहुरंगी मधुपुरी)

3 विस्तार के लिए कृपया देखिए—प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, अध्याय ४

४ निशा, पृ० ११; दिवा, पृ० २२ (वोल्गा से गंगा)

वह कमाई राजाओं व शोषकों के पास पहुँच जाती है। शोषित लोग, सदैव निर्धन बने रहते हैं। शोषक उनके परिश्रम के फल का उपभोग करते हैं।[१]

राहुल जी, आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन का एक मात्र उपाय, साम्यवाद को बताते हैं। उनका दृढ़ मत है कि भारत एवं विश्व के कल्याण का केवल यही एक मार्ग है। साम्यवादी व्यवस्था में प्रत्येक मानव उसकी क्षमता के अनुसार काम करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकतानुसार जीवनोपयोगी सामग्री उपलब्ध होगी। सम्पत्ति पर किसी का वैयक्तिक अधिकार न होगा। सारे उत्पादन के साधनों पर राष्ट्र का अधिकार होगा।[२] इस सम्बन्ध में वे अपने पात्र सुमेर से कहलाते हैं—"हाँ, गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों का भारत में नामो-निशान यदि न रहे, तभी हमारी समस्या हल हो सकती हैं।"[३] कुछ लोग साम्यवाद को विदेशी विचारधारा मान कर इसे त्याज्य मानते है। राहुल जी इस सम्बन्ध में कहते हैं कि ईसाई, इस्लाम जैसे विदेशी धर्म, रेल, तार, हवाई जहाज, कल कारखाने जैसी विदेशी चीजें स्वदेशी बन कर हमारा हित कर रही हैं तो क्या साम्यवाद देशी नहीं हो सकता। साम्यवाद जब अपनी अपूर्ण मात्रा में अधिकांश मानवता को लाभान्वित कर रहा है तो अपने पूर्ण प्रचार से यह मानव-मात्र को निश्चय ही सुख-शान्ति प्रदान करेगा।[४]

गणतन्त्र

साम्राज्यवाद मनुष्य की शोषण-वृत्ति का चरम रूप है। साम्राज्यवाद में, आर्थिक शोषण के अतिरिक्त, मानव के समानता, स्वतन्त्रता सम्बन्धी मौलिक अधिकारों का अपहरण कर लिया जाता है। राहुल जी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कटु आलोचक हैं। वे गणतन्त्र व्यवस्था को शासन की सर्वोत्तम प्रणाली मानते हैं। गणतंत्र में, मानव, आत्मसम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुये, अपने उत्कर्ष के निमित्त स्वतन्त्रता से प्रयत्न करता है। राहुल जी के अनुसार प्राचीन भारत में गणतन्त्र प्रणाली प्रचलित थी। आर्य, जन-परिषद् को सर्वोपरि मानते थे। जन-परिषद् में प्रत्येक आर्य को अपने विचार खुल कर रखने का अधिकार होता था। जनपति अपने को जन पुत्र समझते थे, तथा जन के सदस्यों से वैसा ही व्यवहार भी करते थे। आर्य, राजतन्त्र से अपनी रक्षा के लिए, छोटे गणों का एक बड़ा संघ बनाने के पक्ष में था।[५]

गणतन्त्र प्रणाली के विकास का उल्लेख करते हुए राहुल जी ने बताया है कि

---

१ सुदास्, पृ० ११३; प्रवाहण, पृ० १३४; नागदत्त, पृ० १७२; सुपर्ण यौधेय, पृ० २२७ (वोलगा से गंगा)

२ सफ़दर (वोलगा से गंगा), पृ० ३५३-३५४

३ सुमेर, पृ० ३६८ (वोलगा से गंगा)

४ सुमेर (वोलगा से गंगा), पृ० ३७३

५ अंगिरा, पृ० ८३-८४; सुदास्, पृ० ११२; नागदत्त, पृ० १५५-१५६ (वोलगा से गंगा)

राजतन्त्र के प्रसार से गणतन्त्र को आघात पहुँचा और इसका प्रायः अभाव हो गया। परस्पर वैमनस्य व बाह्य आक्रमणों के कारण मध्यकाल में भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। गाँवों में कहीं कहीं पंचायत राज्य व्यवस्था प्रारम्भ हुई पर विदेशी शासन की ओर से समुचित प्रोत्साहन के अभाव में पनप न सकी। साम्राज्य-वादी अँग्रेजों के भारत में आगमन से भारत में गणतन्त्र का नाम लेना भी अदम्य अपराध बन गया।

भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना से राहुल जी का स्वप्न साकार हो गया है। उन्हें इस बात से सन्तोष है कि भारत में अब जनता का राज्य है। मानव मात्र के अधिकार समान हैं। प्रत्येक मानव को अपनी योग्यता के अनुसार अधिकाधिक उन्नति करने का अधिकार है।[1]

राहुल जी की कहानियों का उद्देश्य

राहुल जी की कहानियों में व्यक्त जीवन-दृष्टिकोण के विश्लेषण के उपरान्त उनकी कहानियों के उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार करना उपयुक्त होगा।

"सतमी के बच्चे" संग्रह की समस्त कहानियों का उद्देश्य, मुख्यतः बीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश के भारत की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण है। इस संग्रह की सतमी के बच्चे, डीह बाबा, राजबलि नामक कहानियों का लक्ष्य तत्कालीन भुखमरी से पीड़ित जनता का चित्रण है। 'जैसिरी' कहानी में निर्धनता के कारण व्यक्ति की प्रतिभा के अविकसित रह जाने की चर्चा है। 'पाठक जी' एवं 'पुजारी' में स्वार्थजन्य पारिवारिक कलह की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' में एक भारतीय पण्डित की दुःखगाथा है। 'रामगोपाल' में मनुष्य के स्वार्थत्याग का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 'धुरबिन' तथाकथित पंडितवर्ग के मिथ्याभिमान के उद्घाटन की कथा है। 'दर्लसिगार' में ग्रामीण लोगों की मिथ्या धारणाओं का दिग्दर्शन है।

'वोल्गा से गंगा' की समस्त कहानियों द्वारा मानव के क्रमिक विकास की कहानी प्रस्तुत की गई है। इस संग्रह की प्रथम छः कहानियों—निशा, दिवा, अमृताश्व, पुरुहूत, पुरुधान, और अंगिरा—से मानव का, अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त प्रकृति पर पूर्णतः आश्रित होने का बोध होता है। समाज में 'मेरा तेरा' की भावना का अभाव है। सम्पत्ति पर सभी का सम्मिलित अधिकार है। मानव झूठ कपट से अनभिज्ञ है। अगली सात कहानियों—सुदास, प्रवाहण, बंधुलमल्ल, नागदत्त, प्रभा, सुपर्ण यौधेय व दुर्मुख—में प्रजातन्त्र प्रदेशों एवं राजाओं के परस्पर संघर्ष, राजतन्त्र के दोष, प्रजातन्त्र का महत्व आदि विषयों की अभिव्यक्ति है। चन्द्रपाणि, बाबा नूरदीन व सुरैया नामक कहानियों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के परस्पर वैमनस्य के चित्रण के साथ मानव-मानव के प्रेम व अन्तर्जातीय विवाह की

---

[1] मंगलसिंह (वोल्गा से गंगा), पृ० ३३७

आवश्यकता पर बल दिया गया है। अन्तिम चार कहानियों—रेखा भगत, मंगलसिंह, सफ़दर, सुमेर—में साम्राज्यवादी तथा धनिकजनों की शोषण वृत्ति तथा जातीय संकीर्णता की कटु आलोचना की गई है। साम्यवाद को भारत व विश्व की सभी समस्याओं का समाधान बताया गया है।

'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियों का लक्ष्य, सन् १९४७ से पूर्व व उसके बाद की मधुपुरी की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना है। इस संग्रह की प्रथम कहानी 'बूढ़े लाला' में अंग्रेजों के समय की व उनके बाद की आर्थिक परिस्थिति का तुलनात्मक चित्र है। अंग्रेजों के बाद मधुपुरी के लोगों का आर्थिक दृष्टि से ह्रास हुआ है। बुढ़ापा, मेम साहब व मीनाक्षी नामक कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता में रँगी, भारतीय महिलाओं के विलासी जीवन का दिग्दर्शन है। 'कुमार दुरजय' में अपने विलासी जीवन के लिए अपनी चादर से अधिक पैर फैलाने वाले राजकुमार की कहानी है। 'लिप्स्टिक' में फैशन के प्रति फैशनेबुल नारियों की अंध श्रद्धा पर व्यंग्य किया गया है। महाप्रभु, ठाकुर जी, एवं पेड़ बाबा नामक कहानियों में लोगों के धार्मिक अंध विश्वास पर व्यंग्य किया गया है। संकेत किया गया है कि अशिक्षित ही नहीं, शिक्षित लोग भी ठग व पाखंडी साधु महात्माओं के मायाजाल में फँस जाते हैं। गोलू, राउत, कमलसिंह, गुरु जी, मास्टर जी, बिसुन व सुलतान कहानियों में उन लोगों की जीवन गाथा है, जिन्हें अपना व अपने परिवार का पेट पालने के लिए लहू-पसीना एक करना पड़ता है। 'रूपी' में एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसे निर्धनता से विवश होकर अपने शरीर को बेचने का धन्धा अपनाना पड़ता है। डोरा' में पति द्वारा परित्यक्ता डोरा को अपना व अपने बच्चों का पेट पालने के लिए क्रम से तीन अन्य पुरुषों को अपना पति बनाना पड़ता है। सभी उससे दुर्व्यवहार करते हैं। 'चम्पो' में मनुष्य की जातिगत संकीर्णता के दुष्फल का चित्रण है। इस संग्रह की अन्तिम कहानी 'काठ का साहब' में वर्तमान अफसरों व कर्मचारियों की अनुशासनहीनता तथा अयोग्यता की चर्चा की गई है।

कहानी का उद्देश्य व्यक्त करने के लिए, कहानीकार, विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया करते हैं। इस प्रसंग में, ये पंक्तियाँ उद्धरण के योग्य हैं—कहानीकार का उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, वह अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं किया जाना चाहिये। उसकी ओर पात्रों के वार्तालाप में अथवा कहानी के अन्त में केवल एक संकेत-मात्र ही लेखक को कर देना चाहिये। अधिक स्पष्ट हो जाने से लेखक का उद्देश्य उपदेश सा बन जायगा और अपने प्रभाव को खो बैठेगा। दूसरी ओर यदि लेखक अपना उद्देश्य व्यंग्य ही रखेगा, तो इससे उसकी रचना के सौन्दर्य की वृद्धि होगी, और उस उद्देश्य का प्रभाव अनायास पाठक के मन पर पड़ जायगा।[१] राहुल जी, कहानियों में उद्देश्य को पाठकों के अनुमान और धारणा-शक्ति पर छोड़ने की अपेक्षा प्रत्यक्ष

---

[१] आदर्शालोचन, पृ० २१३

रूप से उसका यथाशक्ति स्पष्टीकरण कर देना अधिक उपयुक्त समझते हैं। स्वतंत्र होने पर भारत में कैसा राज्य होगा, इस विषय पर राहुल जी अपने पात्र मंगलसिंह से कहलाते हैं—"हम गाँव-गाँव में पंचायतों को कायम करेंगे, जिसमें कम खर्च में लोगों को न्याय प्राप्त हो। हम सारे मुल्क की एक पंचायत बनायेंगे जिसको गाँव-गाँव की प्रजा चुनेगी और जिसका हुक्म बादशाह पर भी चलेगा। हम जमींदारी प्रथा को उठा देंगे, और किसान और सरकार के बीच कोई दूसरा मालिक न रहेगा। जागीर जिसको मिलेगी, उसे सिर्फ सरकार को मिलने वाली मालगुजारी के पाने का हक होगा। हम कल-कारखानों को बढ़ाकर अपने यहाँ के सभी कारीगरों को काम देंगे और कोई बेकार नहीं रहने पायेगा। हम सिंचाई के लिए नहरें, तालाब और बाँध बनायेंगे जिससे करोड़ों मजदूरों को काम मिलेगा, देश में कई गुना देशी अनाज पैदा होगा और किसानों के लिए बहुत से नये खेत मिलेंगे।"[1] प्रस्तुत कथन का उपयोग राहुल जी ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए किया है। मानव को किस प्रकार के राज्य से लाभ पहुँच सकता है, इसका पूर्ण विवरण उन्होंने यहाँ प्रस्तुत कर दिया है। पाठकों की कल्पना के लिए कुछ शेष नहीं छोड़ा है। राहुल जी ने अपनी अधिकांश कहानियों में उद्देश्य की सूक्ष्म व्यंजना करने की अपेक्षा अभिधात्मक रूप में इसको पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है।[2]

---

१ मंगलसिंह (वोल्गा से गंगा), पृ० ३३७

२ उदाहरणों के लिए कृपया देखिये—

(क) अंगिरा, पृ० ६८; प्रवाहण, पृ० १३४; बन्धुलमल्ल, पृ० १५४, नागदत्त, पृ० १७६; बाबा नूरदीन, पृ० २८४; रेखा भगत, पृ० ३२१ (वोल्गा से गंगा)

(ख) पाठक जी, पृ० ३६; जैसिरी, पृ० ८१; दलसिंगार, पृ० ११२ (सतमी के बच्चे)

(ग) महाप्रभु, पृ० ६८; लिप्स्टिक, पृ० ८०; ठाकुर जी, पृ० ९१ मीनाक्षी, पृ० १३१; रूपी, पृ०१५६; डोरा, पृ० १६६ पेड़ बाबा, पृ० २२८; काठ का साहब, पृ० २७६ (बहुरंगी मधुपुरी)

षष्ठ अध्याय

राहुल जी के उपन्यासों तथा कहानियों का कथोपकथन, भाषा एवं लेखन-शैली की दृष्टि से विश्लेषण

(क) राहुल जी के उपन्यासों तथा कहानियों में कथोपकथन

उपन्यास तथा कहानी के पात्रों के परस्पर वार्तालाप को सम्वाद अथवा कथोपकथन कहा जाता है। कथोपकथन का सम्बन्ध कथावस्तु तथा पात्र दोनों से है। इसका उपयोग पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं कथानक के विकास की दृष्टि से किया जाता है। उपन्यासकार और कहानीकार, कभी-कभी, कथा तथा चरित्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर, कथोपकथन द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगते हैं। यह उनके अधिकार का दुरुपयोग है।[1]

अच्छे कथोपकथन में तीन गुण अपेक्षित हैं—सार्थकता, स्वाभाविकता तथा रोचकता या नाटकीयता। कथोपकथन की सार्थकता से भाव है कि वे कथानक को अग्रसर करने अथवा पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में योग देते हों। स्वाभाविकता से यहाँ अभिप्राय है कि कथोपकथन की भाषा तथा उनमें प्रकट किये गये भाव एवं विचार पात्रों के बौद्धिक विकास के अनुकूल हों। उदाहरणार्थ, दार्शनिक पात्र की बात-चीत से उसकी दार्शनिकता का आभास मिलता हो। कथोपकथन में रोचकता अथवा नाटकीयता की दृष्टि से उनमें संक्षिप्तता, सजीवता एवं कार्यानुकूल गति अपेक्षित है। कथोपकथन के वाक्य सुगठित हों, उनमें अनावश्यक शब्द न हों। उपन्यास की अपेक्षा कहानी के कथोपकथन अधिक संयत होते हैं। कथोपकथन के विशेष विस्तार से कहानी बोझिल बन जाती है। उक्त विवेचन के आधार पर राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों के कथोपकथन का विश्लेषण प्रस्तुत है।

राहुल जी के सहज कथोपकथन

राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में कथोपकथनों का उपयोग प्रचूर मात्रा में किया है। उनके छः में से दो उपन्यासों—'जीने के लिए' तथा 'सिंह सेनापति' का आरम्भ कथोपकथन द्वारा ही किया गया है। धुरबिन (सतमी के बच्चे), लिप्स्टिक, डोरा (बहुरंगी मधुपुरी), दिवा, अंगिरा, प्रवाहण, नागदत्त, बाबा नूरदीन (वोल्गा से गंगा)—कहानियाँ, कथोपकथन से आरम्भ होती हैं। यही नहीं, अंगिरा, सुदाम्, प्रवाहण, बन्धुलमल्ल, नागदत्त, प्रभा सुपर्ण यौधेय, चक्रपाणि, बाबा

---

[1] उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २०५

नूरदीन, सुरैया, रेखाभगत, मंगलसिंह, सफ़दर, सुमेर (वोल्गा से गंगा)—कहानियों में लेखक की संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियों को छोड़ सारा कथानक कथोपकथन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

राहुल जी ने कथोपकथनों का उपयोग मुख्यतः कथानक के विकास एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए किया है। उनके कथोपकथन दीर्घ एवं संक्षिप्त दोनों प्रकार के हैं। जहाँ उन्होंने अपने पात्रों द्वारा किसी समस्या पर विचार प्रकट कराये हैं, कोई विश्लेषण अथवा विवेचन प्रस्तुत कराया है, कथन बड़े तथा वाक्य लम्बे हैं। जहाँ तीव्रता है, गति है वहाँ कथन संक्षिप्त तथा वाक्य छोटे हैं। लम्बे कथनों की अपेक्षा संक्षिप्त कथनों से कथानक के विकास एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण में अधिक सहायता मिली है। उदाहरणार्थ, आचार्य बहुलाश्व और लिच्छविकुमार सिंह (सिंह सेनापति) का निम्नलिखित कथोपकथन प्रस्तुत है। शिक्षा प्राप्ति हेतु लिच्छवि कुमार सिंह तक्षशिला के आचार्य बहुलाश्व के पास पहुँचता है। सिंह को शिष्यरूप में स्वीकार करने से पूर्व आचार्य उससे कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं।

(दूसरे साथियों के) बाद मुझे आचार्य के सामने जाना पड़ा। आचार्य बहुलाश्व ने पूछा—'तुम्हारा नाम-गोत्र, तात।"

"गोत्र काश्यप और नाम सिंह कहते मैंने गैंडे की ढाल आचार्य के सामने रखी। आचार्य ने जहाँ-तहाँ लोहे की कीलों से जटित उस ढाल को हाथ में लेकर—बड़ी सुन्दर है यह ढाल और साथ ही बहुत मजबूत भी।'

"मेरे पिता ने गैंडे को अपने हाथ से मारा था और उसी से बनी ढालों में यह एक है।"

"तो वत्स सिंह ! तुम्हारे पिता को तक्षशिला वालों की प्रिय वस्तु मालूम है, तभी तो उन्होंने खास तौर से इसे सम्पादन करके भेजा।"

"लेकिन, आचार्य ! मेरे पिता तेरह वर्ष पहिले मर चुके। उस वक्त मैं पाँच ही वर्ष का था।"

"आह वत्स ! बिना पिता के पुत्र का कष्ट मुझे खब मालूम है। मैं आठ वर्ष का था, जब मेरे पिता मरे थे। किन्तु, मेरे तीन बड़े भाई और माँ थी। तुम्हारी माँ तो होगी ?"

"हाँ, मेरी पुत्र-प्राण जननी जीवित हैं। उनकी मैं पहली सन्तान था। माँ ने दूसरा व्याह किया, किन्तु सौभाग्य से उनके नये पति मेरे द्वितीय पिता साबित हुए। उन्हीं की कृपा से मैं अब तक कुछ सीख-पढ़ सका हूँ।"

"तो वत्स ! मैं समझता हूँ, शुल्क देकर नहीं पढ़ सकोगे, किन्तु उसकी पर्वाह न करो। तुम्हारे जैसे धर्म—निःशुल्क—अन्तेवासी (शिष्य) के लिए बहुलाश्व का घर खुला हुआ है।"

"आचार्य की इस असीम कृपा के लिए मैं मुंह से क्या कह सकता हूँ ?"

"कुछ कहने की जरूरत नहीं। तुम अपने को मेरी विद्या का एक अच्छा पात्र साबित करना।"

"मैं कोशिश करूँगा, आचार्य ! और वैशाली में जिस तरह अपने को मैं आचार्य महाली का योग्य शिष्य साबित करने में सफल हुआ था, वैसा ही यहाँ भी करूँगा।"

"तो तुम वैशालीगण के निवासी हो। पूर्व में वज्जी देश से आये हो ? मेरे मित्र और सहपाठी आचार्य महाली लिच्छवि के शिष्य हो ? मुझे बहुत खुशी है। वत्स सिंह ! तुम तक्षशिला को वैशाली समझना। पूर्व में वैशाली ही है, जिस पर हमें गर्व है। और तो सारे रजुल्ले हैं।—कुरु, पंचाल, वत्स, कोशल, मगध, सारी रजुल्लियाँ हैं। वहाँ से आर्यत्व नष्ट हो चुका है। वहाँ कंधे पर सीधा सर रखकर चलनेवाला पुरुष कहाँ है ? ये रजुल्ले अपने को देव कहलवाते हैं और आर्य भी। आर्य भाई-भाई हो सकते हैं, उनमें कोई देव रजुल्ला नहीं हो सकता। सतलुज के इस पार कहीं किसी रजुल्ले को देखा, वत्स ?"

"नहीं आचार्य।"[1]

उक्त कथोपकथन से 'सिंह सेनापति' उपन्यास का आरम्भ किया गया है। इसमें चौदह कथन हैं। वार्ता में भाग लेने वाले केवल दो पात्र हैं—आचार्य बहुलाश्व और सिंह। आचार्य और सिंह—दोनों के सात-सात कथन हैं। कथन संक्षिप्त एवं सजीव हैं। आचार्य के 'तुम्हारा नाम-गोत्र, तात।' संक्षिप्त प्रश्न के उत्तर में सिंह का 'गोत्र काश्यप और नाम सिंह' उत्तर संक्षिप्त है। इसी प्रकार आगे की बातचीत में तीव्रता है। गति के कारण बातचीत कथानक के विकास में सहायक है। 'तो तुम वैशाली गण के निवासी हो।'—आचार्य का कथन उपन्यास की भूमिका का काम करता है। ज्ञात होता है पूर्व में वज्जी और पश्चिम में तक्षशिला राजाओं के राज्यों के मध्य दो गणशासित प्रदेश हैं। इस कथन से दोनों प्रकार के राज्यों के मध्य भावी संघर्ष का संकेत मिलता है। वैशाली एवं तक्षशिला के परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध की सूचना मिलती है। संक्षिप्त कथन द्वारा उक्त कई बातों का परिचय करा दिया गया है।

उक्त कथोपकथन पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक है। इससे सिंह के गोत्र, उसके माता-पिता एवं पारिवारिक स्थिति का ज्ञान सहज ही हो जाता है। सिंह साहसी एवं दूरदर्शी है। वह तत्कालीन राजकीय परिस्थितियों के प्रति पूर्णतया जागरूक है। इस कथोपकथन से आचार्य बहुलाश्व के महान् व्यक्तित्व का बोध होता है। आचार्य अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति पूर्ण हैं।......'तुम शुल्क देकर नहीं पढ़ सकोगे, किन्तु उसकी पर्वाह न करो। तुम्हारे जैसे धर्म—निःशुल्क—अन्तेवासी (शिष्य) के लिये बहुलाश्व का घर खुला हुआ है'—आचार्य के इन शब्दों से ज्ञात

---

[1] सिंह सेनापति, पृ० १४-१५

होता है कि वे स्वभावतः अति उदार हैं। असहाय एवं निर्धन विद्यार्थियों की सहायता करना वे अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं। आचार्य दूरदर्शी एवं गणतन्त्र-प्रेमी हैं। उन्हें राजाओं से घृणा है। घृणा से वे उन्हें 'रजुल्ले' कहते हैं। उनका मत है कि राजा अपने गुणों से पतित हैं। उन्हें वैशाली एवं तक्षशिला की गणतन्त्र प्रणाली प्रिय है। इस सम्बन्ध में एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है।[1] ईरान सम्राट् शाह कवात् और उसका पुत्र खुसरो साम्यवादी नेता अन्दर्जगर मज्दक (मधुर स्वप्न) की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति के कारण चिन्तित हैं। मज्दकियों का दमन किस प्रकार किया जाय, इस विषय पर पिता (कवात्) और पुत्र (खुसरो) परस्पर वार्तारत हैं। दोनों के कथन संक्षिप्त हैं। कथोपकथन का आरम्भ खुसरो करता है। उसका मत है कि मज्दकियों को बल से पराजित करना असम्भव है, कूटनीति और छल द्वारा उन्हें नीचा दिखाना सुगम होगा। उत्तर में वाद-विवाद करने की अपेक्षा कवात् खुसरो के विचारों का संकेत रूप से अनुमोदन कर देता है और पूछता है कि छल की वह नीति कौनसी है। इस प्रश्न का उत्तर खुसरो अति संक्षेप में देता है, 'शास्त्रार्थ तो एक बहाना मात्र है, वहाँ निःशस्त्र मज्दकी नेताओं के संहार का सब से अच्छा मौका मिलेगा।'

'मधुर स्वप्न' उपन्यास के कथानक की मुख्य घटना साम्यवादी मज्दकियों और ईरान सम्राट् शाह कवात् एवं उसके पुत्र खुसरो के मध्य संघर्ष एवं मज्दकियों के अन्त से सम्बद्ध है। संघर्ष का परिणाम क्या होगा इस विषय का ज्ञान उपर्युक्त कथोपकथन से हो जाता है। यह वार्ता कथानक के विकास तथा पात्रों के चरित्र विकास में सहायक है। शाह कवात् पुत्र खुसरो के वश में है। वह अपनी सूझ बूझ से काम न लेकर अपने पुत्र पर आश्रित है। मज्दकियों का अन्त करने के लिए खुसरो पिता की अपेक्षा अधिक उतावला है। स्वार्थहेतु पिता और पुत्र दोनों मज्दकियों पर बड़े से बड़ा अत्याचार करने को तत्पर हैं।

सुदास् तथा अपाला (सुदास्—वोल्गा से गंगा) की वार्ता संक्षिप्त एवं सजीव है। सुदास् की अपाला से प्रथम भेंट गाँव के कुएँ पर होती है। सुदास् अपनी यात्रा का उद्देश्य बताता हुआ कहता है कि वह पंचाल देश से आया है और काम की खोज में है। बातचीत के प्रभाव से दोनों के मन में प्रेम उत्पन्न होता है। अपाला सुदास् को अपने पिता के पास ले जाती है। अपाला का पिता सुदास् की वार्ता से प्रभावित हो कर उसे काम पर रख लेता है। अपाला के पिता के सम्मिलित होने से कथोपकथन में अधिक तीव्रता आ गई है। उसके प्रश्न अति संक्षिप्त हैं। बातचीत में गति है। यह कथोपकथन दो पृष्ठों में है और कथाक्रम के विकास में सहायक है।[2] इससे सुदास् और अपाला के मृदुल स्वभाव तथा अपाला के पिता की उदारता का परिचय प्राप्त होता है।

---

[1] मधुर स्वप्न, पृ० ३०४-३०५

[2] सुदास् (वोल्गा से गंगा), पृ० १०१, १०२

इस प्रकार के सहज कथोपकथन राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों में पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं।[1]

कथोपकथन द्वारा विषय प्रतिपादन

निजी जीवन-दृष्टिकोण के प्रतिपादन निमित्त राहुल जी ने पात्रों के कथोपकथन का उपयोग किया है। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने नायकों एवं मुख्य पात्रों को अपने विचारों का प्रतिनिधि बनाया है। विषय के प्रतिपादन के लिए राहुल जी ने इन पात्रों से युक्तिपूर्ण कथोपकथन प्रस्तुत कराये हैं। उदाहरणार्थ, 'जय यौधेय' उपन्यास में परलोकवाद और पुनर्जन्मवाद विषयक निजी विचारों के प्रतिपादन के लिए राहुल जी ने एक विस्तृत कथोपकथन प्रस्तुत किया है।[2] राहुल जी परलोकवाद तथा पुनर्जन्मवाद से सम्बद्ध रूढ़िवादी विचारों के विरोधी हैं। उन्होंने उपन्यास के नायक रज को अपने विचारों का प्रतीक बनाया है। इस सम्बन्ध में कथोपकथन का प्रवर्त्तन करते हुये जय कहता है कि परलोकवाद के लिए एक क्षण भी देना जीवन का अपव्यय है। परलोकवाद शोषण वृत्ति का पोषक है। परलोक इसी संसार में है, अन्यत्र नहीं। पुत्र पिता का परलोक है, पुत्र पिता का पुनर्जन्म है। आचार्य, जय के कथन का खण्डन नहीं करते हैं प्रत्युत कहते हैं कि आत्मा के नित्य होने की लालसा, मृत्यु से डरने का भय बहुत ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता है। अगले कथन में जय, आचार्य के उन्हीं शब्दों को दोहराता है—"मैं भी परलोकवाद और पुनर्जन्मवाद को ऐसी ही तुच्छ स्वार्थान्धता और कायरता समझता हूँ।" इन्हीं विचारों के स्पष्टीकरण हेतु जय अगले कथन में पुनः व्यक्त करता है कि परलोक वह है जिसका प्रवाह अनन्त काल तक जारी रहता है, अर्थात्—सन्तान, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र। आचार्य, जय के विचारों का समर्थन करते हुये, मत प्रकट करते हैं कि यदि लोग इस प्रकार के परलोकवाद में आस्था पहले से ही रखते तो संसार की परिस्थितियाँ बहुत अच्छी होती। जय अपने अन्तिम कथन में आचार्य के उक्त विचारों का पुनः स्पष्टीकरण करता है।

इस कथोपकथन को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट होता है कि जय ने आरम्भ और अन्त में एक जैसे विचार व्यक्त किये हैं। आरम्भ में जय कहता है—"परलोकवाद धोखे की टट्टी है आचार्य, इसकी आड़ में बहुजन के जीवन को नरक बना दिया है, हजार में नौ सौ निन्यानवे आदमियों को भेड़ बना दिया गया है और एक को सबका खून चूसने वाला बाघ।" ऐसे ही शब्द जय ने कथोपकथन के अन्त में कहे हैं—"जब तक नौ सौ निन्यानवे और एक के भेद को मिटा न दिया जायेगा, तब तक

---

[1] अन्य उदाहरणों के लिए कृपया देखिये—
(क) सुरैया और कमल की प्रणय वार्ता—सुरैया (वोल्गा से गंगा), पृ० २८६, २८८
(ख) रोहिणी और सिंह की प्रणय वार्ता—सिंह सेनापति, पृ० ४१, ४३
(ग) देवराज और जैनी की परिचयात्मक बातचीत—जीने के लिये, पृ० १४३

[2] जय यौधेय पृ० ११०, ११३

इस दुनिया को बेहतर नहीं बनाया जा सकता, तब तक यह दुनियां नरक बनी रहेगी।" यही विचार लगभग इन्हीं शब्दों में आचार्य ने भी व्यक्त किये हैं—"श्रमण-ब्राह्मणों का परलोकवाद तो एकहिताय—नौ सौ निन्यानवे की कमाई को चोरी-डकैती करके मौज करने वाले एक आदमी को प्रोत्साहन देना है।" "तुम्हारे विचार सुन्दर हैं, जय।" "आपने ठीक कहा आचार्य," "साधु! वत्स! साधु!" "तुम्हारा यह परलोकवाद श्रमण-ब्राह्मणों के परलोकवाद से ज्यादा अच्छा है—(आचार्य की उक्ति)"—आदि शब्दों द्वारा जय और आचार्य एक दूसरे द्वारा व्यक्त विचारों का अनुमोदन मात्र करते हैं। जय ने अपने कथनों में बार बार एक जैसे विचार व्यक्त किये हैं।

विवेचन से स्पष्ट कि राहुल जी ने इस कथोपकनन का विकास परलोकवाद विषयक अपने नवीन प्रकार के विचारों के प्रतिपादन के लिए किया है। यहां उन्होंने कथा को रोक दिया है और विषय का विशद प्रतिपादन पात्रों द्वारा कराया है। कथोपकथन को आरम्भ कराने के लिए उन्होंने इस प्रकार पृष्ठभूमि तैयार की है—'पिछले ढाई वर्षों में मैं ही अपनी पढ़ाई में अधिक तत्परता दिखलाता था, बल्कि आचार्य भी अपने हृदय को खोलने के लिए प्रस्तुत रहते थे। जान पड़ता था वह इसे भार हलका करना-सा समझते थे। उनका सबसे अधिक समय मैं लेता था।" कथोपकथन के बाद उन्होंने अवरुद्ध कथा को फिर आगे बढ़ाया है—"मैं अब बीस वर्ष का हो रहा था आचार्य वसुबन्धु गंधार जाने के लिए तैयार थे,......।" जहां राहुल जी को अपने विचारों का कथोपकथन द्वारा प्रतिपादन करना होता है, वहां वे कुछ समय के लिए, कथानक के प्रवाह को रोक देते हैं। विषय के सर्वांगीण विवेचन के उपरान्त कथानक को आगे बढ़ाते हैं।

इस प्रसंग में ईरान सम्राट कवात् और उसके साथियों का एक संवाद उल्लेखनीय है।[१] ईरान सम्राट कवात् के अन्त पुर की भोजनशाला में शाह कवात् साम्यवादी नेता मज्दक, मित्रवर्मा और सियाबख्श भोजनोपरान्त परस्पर वार्ता कर रहे हैं। बातचीत में मज्दक अन्य तीन पात्रों की साम्यवाद से सम्बद्ध शंकाओं का समाधान करता है। सम्वाद का प्रारम्भ कवात् के प्रश्न से होता है। कवात् मज्दक से प्रश्न करता है कि क्या वह 'मेरा और तेरा' के भाव को अनुयायियों के मन से समाप्त करना चाहता है। उत्तर में मज्दक विषय का स्पष्टीकरण करता है। उसका कथन है कि वह महात्मा बुद्ध और मानी की समता की शिक्षा का अनुयायी है और इसी शिक्षा का उपदेश लोगों को दे रहा है। कवात् के मन में शंका उत्पन्न होती है। उसका विचार है कि समाज से विषमता को हटाना कठिन ही नहीं असम्भव है। कवात् की शंका का समाधान करते हुये मज्दक कहता है कि संसार में सुख और शान्ति का यही एक मार्ग है कि मनुष्य के भीतर से मेरा-तेरा का भाव उठ जाये।

---

१ मधुर स्वप्न, पृ० ४९, ५३

सुख और शान्ति सभी को प्रिय हैं इसलिए यह कार्य कठिन नहीं है। कवात् के अगले प्रश्न का उत्तर मज्दक इस प्रकार देता है—'मेरा-तेरा' के भाव को समाप्त करने के लिए स्त्री-पुरुष के विवाह सम्बन्ध को समाप्त करना ही पर्याप्त नहीं है। स्त्री में मेरा-तेरा का भाव होना भी हानिकारक है। स्त्री में केन्द्रित मेरा-तेरा का भाव फिर पुत्र-पुत्रियों में केन्द्रित हो जायगा और फिर उनकी सन्तानों में। जगत-कल्याण के लिये मनुष्य अपनी शक्ति को तभी पूरी तरह लगा सकता है जब कि उसके पास अपनी सन्तान न हो। मित्र वर्मा अपने कथन में मज्दक के विचारों का समर्थन करता है। उसका विचार है कि मज्दक का लक्ष्य साम्यवाद समाज की स्थापना है। स्त्री-पुरुष विवाह सम्बन्ध की प्रथा को समाप्त करना तो एक साधन मात्र है। बात को समाप्त करते हुए मज्दक कहता है "मानव की प्रवृत्तियों को नीचे जाने से बचाना और उसकी सारी शक्ति को नवीन संसार के निर्माण में लगाना, यही हमारा उद्देश्य है।......"[१] वार्ता के अन्त में शाह कवात्, उसकी पत्नी सम्बिका तथा मित्रवर्मा मज्दक के विचारों का अनुमोदन करते हैं और मानव मात्र के सुख के लिए अपना सर्वस्व देने का प्रण करते हैं।

उक्त वार्तालाप में पच्चीस कथन हैं—शाह कवात् के दस, मज्दक के आठ, मित्रवर्मा के पाँच, सिया बख्श और सम्बिका के एक एक। कथोपकथन का मुख्य विषय है कि संसार में सुख और शांति स्वार्थपरता की भावना को समाप्त करने से स्थापित हो सकती है। स्वार्थपरता की समाप्ति का उपाय स्त्री-पुरुष के विवाह-सम्बन्ध की प्रथा की समाप्ति में है। ये राहुल जी के अपने विचार हैं। मज्दक के सभी कथनो में इन्हीं विचारों की पुनरावृत्ति है। अपने विचारों के समर्थन में मज्दक महात्मा बुद्ध, मानी, और प्लातोन आदि साम्यवादी नेताओं के विचार प्रस्तुत करते हैं। मित्रवर्मा मज्दक विचारों का अनुमोदन करता है। यहाँ सम्वाद-कला का स्वतन्त्र विकास नहीं है वरन् लेखक पात्रों के माध्यम से अपने विचारों का प्रतिपादन सम्वाद-शैली में करता है।

सुदास् (वोल्गा से गंगा) कहानी में सुदास् तथा उसके पिता पंचाल नरेश दिवोदास की वार्ता चार पृष्ठों में है।[२] बात-चीत का विषय है—गणतन्त्र की महत्ता तथा राजतंत्र की निकृष्टता। राजा दिवोदास राजतन्त्र का समर्थक है। सुदास् राज्य का उत्तराधिकारी होता हुआ भी गणतन्त्र के पक्ष में है। उसका मत है कि राजा चोर है, जन अधिकार का अपहारक है। राजाओं का धन वैभव अपना कमाया नहीं होता, यह सब अपहरण द्वारा प्राप्त किया जाता है। दिवोदास अपने पुत्र के विचारों को तर्क संगत जान कर उन्हें स्वीकार करता है। वह आशा प्रकट करता है कि जिस कार्य को वह अपने जीवन में नहीं कर सका उसको उसका पुत्र सुदास् पूर्ण करेगा। वह राजाओं की दस्युवृत्ति के उन्मूलन के लिये प्रयत्न करेगा।

---

[१] मधुर स्वप्न, पृ० ५२

[२] सुदास् (वोल्गा से गंगा), पृ० ११२-११५

यहाँ सम्वादों का उद्देश्य पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने अथवा कथा को अग्रसर करने की अपेक्षा राहुल जी के प्रिय विषय पर प्रकाश डालना अधिक उपयुक्त है। ऐसे कथोपकथनों की राहुल जी के उपन्यासों एवं अधिकांश कहानियों में प्रचुरता है।[1]

लम्बे कथोपकथन

राहुल जी ने लम्बे सम्वादों का विकास अपने जीवन-सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु किया है। उनके पात्रों के लम्बे कथन कथानक को विकसित करने तथा पात्रों के आन्तरिक रहस्यों का उद्घाटन करने में प्रायः सहायक नहीं है। उदाहरणस्वरूप,प्रमोद और मोहनलाल (जीने के लिए—उपन्यास) का कथोपकथन प्रस्तुत है। दोनों पात्र देश की स्वतन्त्रता के लिये क्रान्ति के पक्ष में हैं, पर क्रांति के स्वरूप के विषय में दोनों का मतभेद है। प्रमोद क्रांति में शस्त्रों के उपयोग के पक्ष में है। इनके विपरीत मोहन लाल आर्थिक क्रान्ति के पक्ष में है। वार्ता आरम्भ करते हुए प्रमोद कहता है—"आप तो मोहन दा, हमारे दल के उद्देश्य को पसन्द नहीं करते।"

(मोहनलाल)—"उद्देश्य नहीं, ढंग को पसन्द नहीं करता। देश की आजादी को कौन नहीं पसन्द करेगा ? लेकिन एक दो पिस्तौल या बम चला, लुक-छिप कर किसी को मार देना—जिसमें कभी-कभी निरपराध व्यक्ति भी निहत होते हैं—मेरी दृष्टि में उतना लाभदायक नहीं है।"

'तो क्या आजादी की लड़ाई में शस्त्र का कोई उपयोग ही नहीं ?"

"नहीं। शस्त्र का बहुत उपयोग है। शस्त्र की निर्बलता से जातियाँ परतन्त्र होती हैं और अस्त्र की ही शक्ति से खोई हुई आजादी को फिर से प्राप्त करती हैं। मैं अस्त्र के उपयोग की निरर्थकता को स्वीकार नहीं करता, लेकिन भाई, अब धनुष-वाण, तेग-तलवार का जमाना नहीं है। अब शस्त्र और शस्त्र-विज्ञान दूसरे विज्ञानों की तरह बहुत उन्नत हो चुके हैं। दस-पांच के छोटे-मोटे दल के द्वारा एक दो डाके और दो चार हत्यायें भले ही की जा सकती हैं, लेकिन दुनिया की एक सब से बड़ी जबरदस्त सैनिक शक्ति को हटाया नहीं जा सकता।'

"तो आप, हम लोगों को अस्थिर नींव कहते हैं ?"

"मुझे आशा है, तुम इसे इन्कार नहीं करोगे। लेकिन साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ, कि मैं तरुण मस्तिष्क की निर्बलता को स्वीकार नहीं करता। मेरा विश्लेषण कुछ दूसरा ही है। एक तरुण का दिमाग अधिक आजाद होता है। आदर्श के बारे में स्पष्ट सोचने की शक्ति शायद पीछे भी बनी रहे, लेकिन आदर्श को

---

[1] अन्य उदाहरणों के लिये कृपया देखिए—
(क) महात्मा बुद्ध और सिंह सेनापति की बोद्धमत विषयक वार्ता—सिंह सेनापति, पृ० २७२-२७५
(ख) देवराज और केशवसिंह के मध्य—"देश की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय एकता"—विषय पर वाद विवाद—जीने के लिए, पृ० २६३-२६८

कार्यरूप में परिणत करने के लिए, जितनी कुर्बानियों की आवश्यकता है, तरुण मस्तिष्क ही उनके लिए निर्भय होकर तैयार हो सकता है। मुश्किल यह है कि तरुणाई को बहुत दिनों के लिए रोका नहीं जा सकता। खासकर हिन्दुस्तान में, जहाँ कि हर एक नौजवान के लिए विवाह करना फर्ज है, और बहुतों के विवाह तो होश सम्भालने से पहले हो चुके रहते हैं। आप अपनी स्त्री को छोड़ नहीं सकते, तलाक है नहीं कि वह कोई दूसरा रास्ता ले। सन्तान पैदा करना आप रोक नहीं सकते। आपके माँ-बाप आपके बढ़ते परिवार की परवरिश हमेशा नहीं कर सकते। आखिर कितने दिनों तक आप उनकी उपेक्षा करेंगे? उपेक्षा न करने का मतलब है उनके भरण-पोषण की चिन्ता। और फिर, आपके पास समय और शक्ति बाकी कहाँ रह जाती है कि क्रान्ति के लिए भी कुछ दे सकें। दुनिया के और देशों में भी जवानी के क्रान्तिकारी, पीछे अपने पथ से विचलित होते देखे जाते हैं, लेकिन तो भी वहाँ बहुत काफी संख्या अपने कार्य पर दृढ़ रहती है। मैं कह रहा था कि मध्यवर्ग के शिक्षित तरुण को स्थायी क्रान्ति का आधार नहीं बनाया जा सकता। क्रान्ति उसके मुँह के चारों ओर प्रभा मण्डल बनाती है, प्रसिद्धि और सम्मान प्रदान करती है, और अक्सर पीछे दुनिया में उसे 'सफल' पुरुष बनने का अवसर दिलाती है। इस प्रकार वह आराम की जिन्दगी की ओर झुक जाता है। पहले वह क्रान्ति को आध्यात्मिक विषय कहकर मन को समझाना चाहता है, और पीछे उसे उसकी भी जरूरत नहीं रह जाती।"

"आपकी इस राय से किसी को इन्कार नहीं हो सकता। लेकिन आखिर इलाज? एक बार कार्यकर्त्ताओं को पाकर हम सचमुच ही कुछ सालों के लिए भी निश्चिन्त नहीं हो पाते। मैं यह नहीं कहता कि वे हमारा साथ छोड़कर विश्वास घात करने को तैयार हो जाते हैं। नहीं; किन्तु उनका क्रियात्मक सहयोग हमसे दूर हटने लगता है।"

"इस बात में यूरोप के क्रान्तिकारी अधिक अच्छी अवस्था में हैं। हमारे तरुणों के सामने दो कठिनाइयाँ आती हैं जिनमें से एक है स्थायी तौर से काम करने के लिए अपने शारीरिक खर्च के प्रबन्ध का अभाव, मैं यह मानता हूँ कि यह भी आसान काम नहीं है, तो भी एक योग्य उत्साही कार्यकर्त्ता के लिए अपने व्यक्तिगत साधारण खर्च का इन्तजाम करना उतना कठिन नहीं है। खासकर हमारे देश में, जहाँ पर साधु के नाम पर लाखों आदमी ऐसे ही गुजारा कर रहे हैं। लेकिन दूसरी समस्या ज्यादा कठिन है। पुरुष में स्त्री इच्छा और स्त्री में पुरुष की इच्छा स्वाभाविक बात है। हमारे देश में संयम और ब्रह्मचर्य का बहुत हल्ला है, लेकिन, उनका पालन कितना होता है, इसे हम सब खूब जानते हैं। अधिक से अधिक सिवाय एक दूसरे को धोखा देने के, इस बारे में हम और कुछ नहीं करते। हाँ, तो हमारे तरुणों में भी कभी-कभी इस काम-बुभुक्षा का होना स्वाभाविक है। और इसके लिए सिवा व्याह करने के कोई सम्मान-जनक रास्ता नहीं। व्याह का मतलब है सन्तान। सन्तान का मतलब है पारिवारिक बोझ का पड़ना। उस का मतलब है क्रान्ति के लिए समय

और शक्ति का दारिद्र्य । पश्चिम के क्रान्तिकारियों के सामने आर्थिक कठिनाई ही ज्यादा है। दूसरी कठिनाई उनके सामने उतनी नहीं है। इसका मतलब यह न समझो कि संयम की मैं बिल्कुल आवश्यकता समझता ही नहीं। क्रान्तिकारी को तो शोक, स्वाद, सब पर संयम रखना होगा। हाँ, यदि तरुणों की भाँति तरुणियों की संख्या भी काफी भाग ले तो मानसिक सदाचार कायम रखते हुये कोई रास्ता निकल आ सकता है।"

'आप कैसी बात कर रहे हैं? मालूम होता है—पता ही नहीं कि आप किस देश में बैठे हैं?"

"यही तो मैं कहने जा रहा था। मनोवृत्ति का सवाल जो मैंने उठाया था, उसी को मैं लेना चाहता था। हमारे क्रान्तिकारी एक तरफ तो आजादी, जन-सत्ता, सबके लिए उन्नति का खुला मार्ग चाहते हैं, दूसरी ओर अपने कार्य की सफलता में कृष्ण, काली, गीता और धर्म की सहायता की अनिवार्य आवश्यकता समझते हैं। हम चाहते हैं क्रान्ति को आध्यात्मिक रूप देना। इस मनोवृत्ति से मुझे सबसे ज्यादा चिढ़ है। क्रान्ति सार्वत्रिक उथल-पुथल है। उसे राजनैतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता। सार्वत्रिक न करने पर वह कभी सफल नहीं हो सकती। इसको हमको पहले ही निर्णय कर लेना है, कि हमारे क्रान्तिपथ का प्रदीप विज्ञान होने जा रहा है या धर्म। धर्म को मानने पर निश्चय ही हम सारे देश में एक क्रान्तिकारी दल कायम नहीं कर सकते। मुसलमान को क्या पड़ी है तुम्हारी काली और गीता से। और यदि वे कुरान और रसूल की दुहाई देने लगें तो तुम्हें उससे क्या मतलब। क्रान्ति के ऊपर धर्म की छाया भी पड़ी तो समझ लीजिए, आप अपने हाथों उसकी शक्ति छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। इस बारे में मेरे विचार आप लोगों को मालूम हैं। भारत की राष्ट्रीय एकता जात-पाँत और मजहबों की चिता पर होगी।"

"लेकिन, क्रान्ति के लिए क्या लामजहब होना जरूरी है?"

"जरूरी मैं नहीं कहता। मेरा तो कहना यह है कि क्रान्ति के भीतर मजहब को लाना नहीं चाहिये। मैं समझता हूँ कि मजहब के बन्धन से मुक्त होना सच्चे क्रान्तिकारी के लिए बड़े फायदे की चीज है, लेकिन, हर एक के लिए मैं इसे शर्त के तौर पर नहीं पेश करता। आवश्यकता यही है कि मजहब को वैयक्तिक विचार से अधिक महत्व नहीं मिलना चाहिये। देश की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास की मौके-बे-मौके जिस प्रकार दुहाई दी जाती है, वह भी हमारे कार्य में बाधा डालने वाली है। मनुष्य लाखों बरस के विकास के बाद आज यहाँ पहुँचा है। पहले उसके विकास की गति मन्द रही, लेकिन इधर वह तीव्र होती गई। मनुष्य के इतिहास के किन्हीं भी दो समयों में एक परिस्थिति नहीं रही। हमेशा समस्यायें नई उठीं और उनके हल भी नए निकालने पड़े। अपने भूत के प्रति गौरव और आवश्यकता से अधिक अनुराग हमारे लिए बड़ी खतरनाक चीज है। वह हमारी पुरानी बेवकूफियों के प्रति आदर का

भाव पेश कर देता है। आज जिन सामाजिक और धार्मिक खराबियों को हम देख रहे हैं, उनकी जड़ उसी भूत की श्रद्धा में निहित है।"

"तो आपका क्या मतलब है—क्या हम अतीत से बिलकुल सम्बन्ध विच्छेद कर लें? क्या यह सम्भव है?"

"बिल्कुल सम्बन्ध विच्छेद की बात मैंने कब कही? अतीत का प्रभाव तो वर्तमान में जारी रहेगा ही। हां, भूत की पूजा को मैं बहुत हानिकारक समझता हूँ। जहाँ हम ने वह पूजा शुरू की कि साथ ही हमने क्रान्ति के एक पंख को तोड़ दिया। ऐसी स्थिति में चिरकाल से चले आते धार्मिक और सामाजिक बोझ को लादे हुए हमें क्रान्ति के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ेगा।"

(प्रमोद)—"और भी कुछ"

(मोहनलाल) "सबसे जरूरी बात यह है कि हमारी क्रान्ति को किसी आर्थिक भित्ति पर अवलम्बित होना चाहिये। यदि क्रान्ति को जनता के लिए करना चाहते हैं तो बतावें, कि जनता को आर्थिक स्वतन्त्रता किस प्रकार मिलेगी? क्या आप चाहते हैं कि जिस परिणाम में आज अंग्रेज हमारा शासन और शोषण कर रहे हैं, वह हिन्दुस्तानियों के हाथ में आ जाय, या सबके शासन और शोषण को आप बिल्कुल बन्द करना चाहते हैं? जनता को आप अपनी ओर मिला नहीं सकते जब तक क्रान्ति उनके लिए न हो। हमारी क्रान्ति का ध्येय होना चाहिये हर तरह के शोषण को रोकना। आप सब लोग तो समाजवाद से घबराते हैं। आप उसे पश्चिम की चीज समझते हैं। उसका नाम लेना धर्म-प्राण भारत की शान के खिलाफ समझते हैं। क्रान्ति में भी योगियों और महात्माओं का वरदहस्त चाहते हैं।"

प्रस्तुत कथोपकथन पुस्तक के आठ पृष्ठों में है।[1] राहुल जी ने मोहनलाल के माध्यम से अपने विचारों का प्रकाशन किया है। देश-स्वतन्त्रता के लिए आर्थिक क्रांति की आवश्यकता से सम्बद्ध विषय पर विशद विवेचन के लिए इतने लम्बे कथोपकथन का विकास किया गया है। इसमें कुल कथन अट्ठाइस हैं—प्रमोद और मोहनलाल दोनों के चौदह-चौदह। प्रमोद के सभी कथन संक्षिप्त हैं और मोहनलाल के प्रायः सभी लम्बे। मोहनलाल का एक कथन बहुत लम्बा है। 'मुझे आशा है तुम इसे इन्कार नहीं करोगे (पृ० ५६-५७)—कथन में पुस्तक की पच्चीस पंक्तियां हैं।

कथोपकथन का आरम्भ करते हुये प्रमोद अपने साथी मोहनलाल से पूछता है कि क्या वह देश की स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति का उपयोग उचित नहीं समझता है। मोहनलाल उत्तर देता है कि वह शस्त्र के उपयोग की निरर्थकता को स्वीकार नहीं करता है किन्तु विज्ञान के युग में पुराने शस्त्रों का कोई महत्व नहीं है। समाज के नव निर्माण के लिए क्रान्ति की आवश्यकता है। हम क्रान्ति के लिए कृष्ण

---

[1] जीने के लिए, पृ० ५४-६१ (पुस्तक में यह वार्ता आठ पृष्ठों में है। यहाँ केवल कुछ कथन उद्धृत किये गये हैं)।

काली, गीता और धर्म की सहायता की अनिवार्य आवश्यकता समझते हैं। इस पर प्रमोद प्रश्न करता है कि क्या क्रान्ति के लिए आदमी को धर्म से नितांत विरक्त होना चाहिये। इस प्रश्न का उत्तर मोहनलाल देता है—क्रान्ति के लिए धर्म-निरपेक्षता अनिवार्य है। धर्म को वैयक्तिक विचार से अधिक महत्व नहीं मिलना चाहिये। अन्त में प्रमोद मोहनलाल से पूछता है कि क्रान्ति के लिए और किसी चीज की आवश्यकता है। उत्तर में मोहनलाल बताता है कि क्रान्ति, आर्थिक भित्ति पर अवलम्बित होनी चाहिये। क्रान्ति का ध्येय होना चाहिए —हर तरह के शोषण को रोकना। यहाँ समाज के विकास के लिए आर्थिक क्रान्ति से सम्बद्ध विषय का सांगोपांग विवेचन है। मोहनलाल के किसी लम्बे कथन के भाषण के यह अंश प्रतीत होते हैं। इनमें वार्तालाप की सजीवता एवं संक्षिप्तता का अभाव है। वस्तुतः शिल्प की दृष्टि से ये सम्वाद-जैसे लगते भी नहीं हैं। किसी ने क्या खूब कहा है कि उद्धरण-चिह्न मात्र लगा देने से ही कोई उक्ति सम्वाद नहीं हो जाती है।[1]

इस कथोपकथन के आरम्भ में राहुल जी ने संकेत दिया है कि वार्तालाप के स्थल पर रामेश्वर, प्रमोद, करीम और मोहनलाल—चार व्यक्ति उपस्थित हैं। वार्तालाप में भाग केवल मोहनलाल और प्रमोद ने लिया है। शेष दो व्यक्ति श्रोता मात्र हैं। कथोपकथन में न विषय-परिवर्तन है और न ही किसी नये वक्ता का समावेश। वार्तालाप के समय वक्ता हाव-भाव का प्रदर्शन भी नहीं करते हैं। कथनों में चुस्ती एवं हाजिरजवाबी का अभाव है। उनमें गति नहीं। कथोपकथन के अन्त में लिखा हुआ है—"वर्षा बन्द हो गई थी, जबकि बैठक बरखास्त हुई।"[2] कथोपकथन आरम्भ करते समय बूँदा-बाँदी हो रही थी, फिर मूसलाधार वर्षा होने लगी थी। जितनी देर वर्षा होती रही, बात-चीत चलती रही। वर्षा बन्द होने पर ही पात्रों ने बातचीत बन्द की, नहीं तो यह और लम्बी हो सकती थी। आठवें अध्याय में (जीने के लिए) इस कथोपकथन के अतिरिक्त और कोई विषय नहीं है। कथा पूर्णतया अवरुद्ध है। कथोपकथन पात्रों के चरित्र के विकास में सहायक नहीं है।

सफ़दर (सफ़दर कहानी—वोल्गा से गंगा) और उसके मित्र शंकर की देश की राजनीतिक स्थिति सम्बन्धी वार्ता बहुत लम्बी है। यह कथोपकथन पुस्तक के ग्यारह पृष्ठों में है।[3] कथोपकथन का आरम्भ करते हुए सफ़दर कहता है कि क्रान्ति या क्रान्तिकारी आन्दोलन का आधार कोई एक व्यक्ति नहीं होता। क्रान्ति जिस भारी परिवर्तन को लाती है वह किन्हीं एक या आधे दर्जन महान् व्यक्तियों के सामर्थ्य से बाहर की चीज है। इस विषय में शंकर की जिज्ञासा की तृप्ति के लिये सफ़दर कहता है—किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन की ताकत निर्भर करती है दो बातों पर—उसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा उदाहरणों से कितनी प्रेरणा मिल रही है

---

१ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २०५

२ जीने के लिये, पृ० ६१

3 सफ़दर (वोल्गा से गंगा), पृ० ३४७-३५७

और देश में सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी वर्ग उसमें कहाँ तक भाग ले रहा है। क्रान्ति की लड़ाई वही लड़ सकता है जिसके पास हारने के लिये कम से कम चीज हो। अगले कथन में (पृ० ३५४) सफ़दर रूस की क्रान्ति का विस्तृत ब्यौरा देता है। शंकर के प्रश्न पर कि क्या गान्धी क्रान्तिकारी नेता हैं, सफदर कहता है—"गान्धी की तमाम बातों और उनके तमाम विचारों को मैं क्रान्तिकारी नहीं मानता शंकर। क्रान्तिकारी शक्ति के स्रोत साधारण जनता का जो उन्होंने आह्वान किया है, मैं उतने अंश में उनके इस कार्य को क्रान्तिकारी कहता हूँ। उनकी धर्म की दुहाई—खिलाफत की खासकर—को मैं सरासर क्रान्ति-विरोधी चाल समझता हूँ।" कथोपकथन के अन्त में सफ़दर और शंकर दोनों क्रान्ति-आन्दोलन में भाग लेने का निश्चय करते हैं।

उक्त कथोपकथन में कुल सैंतालीस कथन हैं—सफ़दर के चौबीस और शंकर के तेईस। शंकर के सभी कथन संक्षिप्त हैं। वह वार्ता के मध्य केवल ऐसे वाक्य बोलता है—'लेकिन इसका भारत में अंग्रेजी की नीति-परिवर्तन से क्या सम्बन्ध है?', 'मैं सहमत हूँ', 'कल्पना सुन्दर है'। इसके विपरीत सफ़दर के कथन प्रायः सभी लम्बे हैं, जैसे, 'अच्छा तो आज इस जनता में जो उत्तेजना है, उसे जान रहे हो और दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से क्या प्रेरणा मिल रही है, इसकी ओर भी ध्यान दो। ....।" सफदर का यह कथन पुस्तक की अट्ठाईस पंक्तियों में है। इसने भाषण का रूप धारण कर लिया है। सफदर के दूसरे कथन भी प्रायः इतने लम्बे हैं। कथोपकथन के आरम्भ में राहुल जी लिखते हैं—'सकीना जल्दी से निकल गई। सफदर और शंकर के वार्तालाप ने गम्भीर रूप धारण किया।' इन शब्दों द्वारा उन्होंने सूचित कर दिया है कि वार्तालाप का विषय गम्भीर और लम्बा है। कथोपकथन के अन्त में ये शब्द हैं—'सकीना ने आकर खाने का पैगाम दिया, मजलिस बर्खास्त हुई।' यदि सकीना ने खाने की सूचना न दी होती तो कथोपकथन और लम्बा हो जाता। स्पष्ट है कि राहुल जी अपने प्रिय विषय के प्रतिपादन के लिये कथोपकथनों को जान बूझकर लम्बा करते हैं। लम्बे होने तथा गम्भीर चिन्तन से सम्बद्ध होने के कारण कथोपकथनों में शुष्कता आ गई है। पाठकों का ऐसे स्थलों पर चित्त ऊब जाता है। ऐसे स्थलों पर कथानक का विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे कथोपकथन पात्रों के चरित्र के विकास में भी सहायक नहीं हैं। राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों में उक्त प्रकार के लम्बे कथोपकथन मात्रा में प्रचुर हैं।[१]

---

[१] अन्य उदाहरणों के लिए कृपया देखिये—
(क) शाह कवात्, मित्र वर्मा, सियावख्श तथा अन्य साथियों की साम्यवादी विचारधारा पर वार्ता, पृ० १३१-१४०
(ख) नायक जय और महाकवि कालिदास के मध्य तत्कालीन राजनीतिक विषयों पर बातचीत, पृ० ३२९-३४५

कथोपकथनों में नाटकीयता का अभाव

नाटकीयता का सम्बन्ध नाट्य अथवा नाटक से है। नाटक दृश्य-काव्य है। दृश्य काव्य में दर्शक को वास्तविकता का आभास मिलता है। भाव तथा कार्य की भंगिमा या अभिनय द्वारा साक्षात प्रदर्शन में नाटक की नाटकीयता निहित है। श्रव्य काव्य में शब्दों द्वारा कल्पना को जाग्रत कर श्रोता या पाठक के मानस-पटल पर चित्र बनाये जाते हैं। अतः उपन्यास में नाटकीयता से तात्पर्य है वास्तविकता के आभास से। नाटकीय स्थल पर घटना का वर्णन मात्र न हो वरन् वहां घटना घटित होती जान पड़े, वार्तालाप तथा कार्य में सजीवता का बोध हो। जहां अमूर्त में मूर्त का आभास है, वास्तविक जीवन से होड़ लेने वाली स्वाभाविक गति है और जहाँ जड़ लेखनी में भी रंगमंच पर अभिनीत दृश्यों जैसी सजीवता उत्पन्न करने की क्षमता है वहीं नाटकीयता है।[१] राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों के लम्बे कथोपकथनों में नाटकीयता के उक्त गुणों का प्रायः अभाव है। उनमें वांछनीय गुण—संक्षिप्तता, पैनापन तथा कार्य के अनुसार गति—नहीं है। शुष्क विषयों के विवेचन से सम्बद्ध होने के कारण उनमें रोचकता का अभाव है, चुस्ती एवं हाजिर-जवाबी नहीं है। परिस्थिति के अनुसार, पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति में आवेग नहीं है। सम्वादों के साथ वक्ता के हावभाव का प्रकाशन नहीं किया गया है। उदाहरणस्वरूप देवराज और उसके साथियों की अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति विषयक वार्ता उल्लेखनीय है।[२] प्रथम विश्वयुद्ध में अपंग होने के पश्चात् देवराज लंदन में श्रीमती कर्नल ज्याफरे के घर में ठहरा हुआ है। वहाँ उसके मित्र उसे मिलने जाते हैं और समय-यापन हेतु, परस्पर वार्तालाप करते हैं। वार्ता आरम्भ करते हुए देवराज का मित्र बर्नार्ड कहता है कि इतिहास साक्षी है कि दूसरों को पराधीन करने वाली जातियां स्वयं अपनी भीतरी गन्दगी से बच नहीं सकी हैं। साम्राज्य कुछ व्यक्तियों और परिवारों को सुख और चैन की बन्शी बजाने देता है परन्तु जातीय नैतिक बल पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। बर्नार्ड के उक्त कथन का समर्थन करते हुए देवराज के अन्य साथी इस सम्बन्ध में टाम और एनी अपने अपने अनुभव सुनाते हैं। उनका विचार है कि भारतीयों के प्रति अशिष्टता दिखाने के कारण, अशिष्टता अंग्रेजी शासकों के स्वभाव का अंग बन चुकी है। टाम कहता है कि साम्राज्यवादी देश अपने श्रमिकों के साथ कभी न्याय नहीं कर सकता। एक अँग्रेज पूँजीपति, जिसके कारखाने हिन्दुस्तान में हैं—इंग्लैंड में अपने मजदूरों की शिकायत दूर करते समय अपने हिन्दुस्तानी कारखानों से तुलना करता रहेगा। इस पर देवराज कहता है कि भारत और इंग्लैंड के श्रम जीवियों का भाग्य एक सूत्र में बँधा हुआ है। इंग्लैंड के श्रमिकों को भारतीय श्रमिकों के संगठन और आन्दोलन में उतनी ही रुचि लेनी चाहिये जितनी कि अपने यहां वे लेते हैं। अपने कथनों में टाम, अगथा और जैनी देवराज के विचारों का समर्थन करते हैं।

---

१ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २०६-२०७ (पाद-टिप्पणी)

२ जोंक के लिए, पृ० १६८-१७३

उक्त वार्ता में पन्द्रह कथन हैं—टाम के पांच, ऐनी के तीन, बर्नार्ड, देवराज और अगथा के दो दो तथा जैनी का एक। गम्भीर विषय के विवेचन से सम्बद्ध होने के कारण पात्रों के कथनों में शुष्कता है। उनमें तथ्यों का निरूपण मात्र है तथा पाठकों को प्रभावित करने की क्षमता नहीं है। सभी पात्रों के कथन लम्बे हैं। कथनों में चुस्ती एवं गति नहीं है। कथोपकथन से सम्बद्ध परिच्छेद (चौबीसवां) का शीर्षक है—मित्र-गोष्ठी। राहुल जी ने इस अध्याय का पात्रों के वार्तालाप मात्र के लिए उपयोग किया है। पात्रों की बातचीत से कहानी का लेशमात्र विकास नहीं होता। मित्र गोष्ठी, पाठक की आँखों के सामने घटती हुई प्रतीत नहीं होती। पात्रों के विचारों को समझने के लिए पाठकों को विशेष श्रम अपेक्षित होता है। सम्वादों में सजीवता नहीं है। इन सभी कारणों से उक्त कथोपकथन में नाटकीयता का अभाव है।

सुमेर और रामबालक ओझा (सुमेर कहानी—वोल्गा से गंगा) की शोषकों की शोषण-वृत्ति विषयक बातचीत में नाटकीयता का अभाव है।[1] सुमेर का विचार है कि गांधी जी हरिजनों से इसलिये प्रेम करते हैं कि वे कभी हिन्दुओं से अलग न हो जायें। इसी उद्देश्य से उन्होंने पूना में आमरण अनशन किया था। इस सम्बन्ध में ओझा सुमेर से पूछता है कि क्या वह भगवान में आस्था नहीं रखता है। इस पर सुमेर उत्तर देता है—'......आज भी गाली-मार खाना, भूखे मरना ही, हमारे लिये भगवान की दया बतलाई जाती है। इतना होने पर भी जिस भगवान् के कान पर जूँ नहीं रेंगी, उसे माने हमारी बला।' (पृ० ३३७)। ओझा के शोषण सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देते हुए सुमेर कहता है कि गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों का भारत में जब चिह्न मात्र न रहेगा तभी भारत की जनता की आर्थिक समस्यायें दूर होंगी। साम्यवाद धर्म का विरोधी है—ओझा के इस कथन का खंडन करते हुये सुमेर उत्तर में कहता है कि साम्यवाद संकीर्णता का शत्रु है, धर्म का नहीं। धर्म के वास्तविक शत्रु शोषक लोग हैं। यह कथोपकथन साम्यवाद जैसे गम्भीर विषय से सम्बद्ध होने के कारण शुष्क है। सुमेर के कथन लम्बे हैं। भाषण के अंश जैसे लगते हैं। सम्वाद में गति और चुस्ती का अभाव है। बातचीत के समय पात्रों के हाव भाव का प्रकाशन नहीं है। इन सभी कारणों से वार्ता नाटकीय नहीं बन सकी है।

कथोपकथनों में भावानुरूपता का अभाव

राहुल जी के कथोपकथन प्रायः बुद्धिप्रदान हैं। इन में पात्र साम्यवाद, गणतंत्र, समाज सुधार जैसे गम्भीर विषयों पर तर्क-वितर्क करते हैं। उनका ध्यान अपने अपने विषय के प्रतिपादन पर रहता है अतः उनके कथोपकथन में प्रसंगानुसार तीव्रता, ओज, रूक्षता, सरसता एवं कोमलता नहीं है। प्रणय सम्बन्धी कथोपकथनों में भी पात्र बौद्धिक अधिक हैं, भावुक कम। उनकी बातचीत में प्रेम का आवेश एवं

---

[1] सुमेर (वोल्गा से गंगा), पृ० ३६७-३७३

उत्कृष्टता नहीं है। उदाहरणस्वरूप, नायक नरेन्द्र और उसकी प्रेमिका भद्रा (विस्मृत यात्री) की प्रणय सम्बन्धी वार्ता प्रस्तुत है—

(भद्रा) "सुना है, तुम भिक्षु बनना चाहते हो?"

(नरेन्द्र) "किसने कहा? बिलकुल गलत है। कभी भिक्षु बनने का ख्याल हृदय में रहा हो किन्तु जिस समय से इस हृदय की स्वामिनी भद्रा बनी तब से यह ख्याल न जाने कहाँ लुप्त हो गया।"

"मुझे तुम पर विश्वास है।"

"विश्वास करना चाहिए, भद्रा, मैं अपना स्वामी नहीं हूँ, इस जीवन को मैं ने तुम्हारे हाथ में दे दिया। अपने हृदय से मेरे हृदय की अवस्था सुन लो।"

"मुझे भी विश्वास नहीं होता। सभी लोग कह रहे थे कि अगले ही साल नरेन्द्र का चचा उसे संघाराम में ले जाने वाला है। सबके मुँह से ऐसी बातें सुन कर मेरे मन में चिन्ता उठनी स्वाभाविक थी।"

"भद्रा, यह सुन कर तुम्हें प्रसन्नता होनी चाहिए कि मेरे सम्बन्धी तुम्हें वधू देखने के लिये बड़े लालायित हैं। पिता भी अब अपना विचार बदल चुके हैं। चचा भदन्त जिन वर्मा यद्यपि समझते हैं कि मैंने जिसे इतने वर्षों तक पढ़ा-लिखा कर तैयार किया, उसका स्थान घर में नहीं बल्कि संघाराम में है, लेकिन उन्हें भी अब आशा कम रह गई, और अब वह मेरे अनुज को मेरे बदले में लेने की सोच रहे हैं।"[1]

उपर्युक्त कथोपकथन में प्रणय-सम्बन्धी उल्लास, आवेग एवं तीव्रता का अभाव है। पात्रों के द्वारा प्रणयानुकूल हाव-भाव प्रकाशन भी नहीं किया गया है। कथोपकथन में प्रणयसम्बन्धी भावानुरूपता के स्थान पर बौद्धिकता का प्रभाव अधिक है। बातचीत प्रेमी के प्रणय के प्रति प्रेमिका द्वारा आशंका का प्रकाशन तथा प्रेमी द्वारा उसका समाधान है। प्रेमिका के 'मुझे तुम पर विश्वास है' और प्रेमी को विश्वास करना चाहिये जैसे कथनों में भावानुरूपता का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया है। दोनों के मन में प्रणय-भावना की अपेक्षा आशंका अधिक है। वे प्रणय के प्रकाशन में संकोचशील हैं। भावों में परिस्थिति के अनुकूल आकुल आवेग एवं तीव्रता न होने के कारण सम्वाद प्रवाहपूर्ण और मार्मिक नहीं है।

राहुल जी के कथोपकथन प्रायः वाद-विवाद तथा गम्भीर विषयों के विवेचन से सम्बद्ध हैं। वाद-विवाद सम्बन्धी कथोपकथनों में नायक अथवा मुख्य पात्र अपने विचारों का प्रतिपादन करता है। अन्य पात्र उसका अनुमोदन करते हैं अथवा अपनी आशंकाओं के समाधान से शीघ्र शान्त हो जाते हैं। उनमें उत्तेजना एवं उग्रता जैसे भाव उत्पन्न नहीं होते हैं। वे शीघ्र मुख्यपात्र के विचारों का अनुगमन करने लगते हैं। क्रोध का कारण होने पर भी राहुल जी के पात्र आवेश में नहीं आते हैं। उदाहरण-

---

[1] विस्मृत यात्री, पृ० ४६-४७

स्वरूप ईरान सम्राट् शाह कवात् का पुत्र खुसरो (मधुर स्वप्न) क्रोधान्ध हो मज्दक के मुख पर थूकता है किन्तु मज्दक आवेश में नहीं आता है।[१] वह केवल इतना कहता है। वह शरीर तुम्हारे हाथ में है खुसरो, चाहे इस पर थूको या इन्हीं की तरह इसे भी गाड़कर वृक्ष बना दो, परन्तु सत्य की आवाज को सुनना होगा। (पृ० ३१०) स्पष्ट है कि मज्दक क्रोधावेश में उन्मत्त नहीं होता और न ही अपने अपमान का प्रतिकार करता है। मज्दक के कथन में स्पष्टता है पर भावानुरूप उत्तेजना एवं आवेश का अभाव है। राहुल जी के कथोपकथनों में हास्यतत्व का भी प्रायः अभाव है।

लोकभाषा का प्रयोग

विदेशी अथवा वर्ग विशेष के पात्रों के कथोपकथन को खड़ी बोली में लिखते समय उनमें सजीवता एवं स्वाभाविकता का पुट देने के लिए उन पात्रों की वास्तविक भाषा के कुछ शब्दों, मुहावरों या प्रचलित वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। राहुल जी ने अपने ग्रामीण पात्रों के कथोपकथनों की भाषा में लोकभाषा का पुट दिया है। इससे कथानक की एकरसता में वैचित्र्य एवं सजीवता आ गई है। राहुल जी ने हरियाना प्रान्त के पात्रों के कथोपकथन में उनकी लोक भाषा का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है। उदाहरण निमित्त, एक यात्री ब्राह्मण और एक ग्रामीण चौधरी (मंगल राम) का कथोपकथन प्रस्तुत है—

(यात्री ब्राह्मण)—"सुल्तान अलाउद्दीन ने पंचायत आप लोगों को दी…।"

(चौधरी मंगलराम)—"हाँ पंडत (पंडित) तेरे मुँह में घी-शक्कर। लेकिन पंडत। न जाने किसने हमारे सुल्तान का नाम अलाभदीन रख दिया। हम तो अपने गाँव में अब उसे लाभदीन कहते हैं।"

"चौधरी, तुम कोई नाम रक्खो। लेकिन, जानते हो, सुल्तान ने हिन्दुओं पर कितना जुल्म ढाया है।"

"हमारी अहीरियाँ तो चादर भी नहीं लेतीं, ऐसे ही छाती तानकर खेत-हार में रात-दिन घूमती फिरती हैं। उन्हें तो कोई उठा नहीं ले जाता।"

"इज्जतवाले घरों की इज्जत बिगाड़ते हैं।"

"तो पंडत ! हम बे-इज्जत वाले हैं, और कौन है सौरा इज्जतवाला।"

"तुम तो गाली देते हो चौधरी मंगलराम।"[२]

प्रस्तुत सम्वाद संक्षिप्त एवं चुस्त है। 'तो पंडत। हम बे-इज्जत वाले हैं, और कौन है सौरा इज्जतवाला' तथा अलाउद्दीन के लिए लाभदीन एवं अलाभदीन जैसे लोकभाषा से प्रभावित प्रयोगों के कारण कथोपकथन में सजीवता आ गई है। लोकभाषा से प्रभावित कथोपकथन 'जीने के लिए' उपन्यास में सुलभ हैं। देवराज

---

[१] मधुर स्वप्न, पृ० ३१०

[२] बाबा नूरदीन (वोल्गा से गंगा), पृ० २८१

और उसकी भाभी लक्ष्मी का लोकभाषा मिश्रित खड़ी बोली में पारिवारिक विषयों पर कथोपकथन स्वाभाविक एवं सजीव है।[1]

मुसलमान पात्रों की अस्वाभाविक भाषा

मुसलमान पात्रों के कथोपकथनों में शब्दों का असंतुलित प्रयोग है। इनके कथनों में ठेठ हिन्दी के शब्दों के साथ अरबी, फारसी के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस सम्बन्ध में जंगली मियाँ और मौलवी साहब (जीने के लिये) की वार्ता उल्लेखनीय है। वार्ता का विषय है उच्च वर्ग के मुसलमानों का निम्न वर्ग के मुसलमानों के प्रति दुर्व्यवहार।[2] जंगली मियाँ कहता है कि शरीफ कौम (जाति) के मुसलमान मोमिनों को अपमान की दृष्टि से देखते हैं। मौलवी साहेब जंगली मियाँ के उक्त विचारों का समर्थन करता है। प्रस्तुत कथोपकथन में जंगली मियां (मुसलमान-पात्र) एक ओर शरीफ (अरबी), कुरबानी (अरबी), कौम (अरबी), हिकारत (हकारत-अरबी) शब्दों का प्रयोग करता है और दूसरी ओर 'सम्बन्ध', 'सजग'—ठेठ हिन्दी शब्दों का प्रयोग करता है। मौलवी साहेब ने मुतफिक (अरबी), शुर्फा (शरीफ का बहुवचन—अरबी), लायक (अरबी)—शब्दों के साथ हिन्दी शब्दों—दुहाई और अछूत—का प्रयोग किया है। मौलवी साहेब ने उक्त शब्दों के अतिरिक्त अपने कथन में कौंसिल एवं एसेम्बली—अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

अकबर और अबुल फजल ('सुरैया' कहानी—वोल्गा से गंगा) के कथोपकथन में शाब्दिक असंतुलन है। समाज में प्रचलित बहु-पत्नी प्रथा की आलोचना करते हुये, अकबर कहता है—"फर्क है फजल। किन्तु हमें मंजिल कितनी दूर चलनी है? मैंने फिरंगी पादरियों से एक बार सुना, कि उनके मुल्क में बड़े से बड़ा बादशाह भी एक से अधिक औरत से ब्याह नहीं कर सकता। मुझे यह रवाज कितना पसन्द आया, इसे टोडर! तुमने उस वक्त मेरी बातों में सुना होगा यदि यह कहीं मैं कर सकता। किन्तु बादशाह बुराइयों के करने की जितनी स्वतन्त्रता रखते हैं, उतनी भलाइयों की नहीं, यह कैसी विडम्बना है।........."[3] इस कथन में शब्दों का प्रयोग असंतुलित है। अकबर एक ओर फ़र्क (अरबी), मंजिल (अरबी), पसन्द (फारसी), मुल्क (अरबी) शब्दों का प्रयोग करता है और दूसरी ओर वह स्वतन्त्रता, विडम्बना, रनिवास—ठेठ हिन्दी और संस्कृत शब्द प्रयुक्त करता है।

मुसलमान पात्रों के कथनों में उक्त प्रकार के शाब्दिक असंतुलन से उनके सम्वादों में भाषा सम्बन्धी विषमता आ गई है।

दिवोदास के सम्वाद

'दिवोदास' राहुल जी का अन्तिम उपन्यास (रचनाकाल, सन् १९६१) है।

---

[1] जीने के लिए, पृ० २२४-२२५
[2] वही, पृ० ३२६
[3] सुरैया (वोल्गा से गंगा), पृ० २९२

इसमें उसकी कथोपकथन-लेखन-कला का चरम रूप देखने को मिलता है। यह उपन्यास राहुल जी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा लघु और गठा हुआ है । इसमें १६६ पृष्ठ हैं। उपन्यास प्रवाहपूर्ण है। इसमें गम्भीर विषयों का प्रतिपादन एवं तर्क-वितर्क पूर्ण कथोपकथनों का अभाव है। इनसे कथानक और पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायता मिली है। पात्रों के कथन संक्षिप्त और सजीव हैं। उदाहरणस्वरूप पुरुकुत्सानी और उसकी ननद पौरवी की बातचीत प्रस्तुत है। भावज (पुरुकुत्सानी) अपनी किशोरी ननद (पौरवी) को सजाने में रुचि लेती है। पौरवी के पिंगल केशों को चार कपर्दों (वेणियों) में गूँथ कर दो पीछे और दो को कपोलों पर लटका दिया है। पौरवी अपनी बड़ी बड़ी नीली आँखों से, हर्षोत्फुल्ल हो, अपनी भाभी की ओर स्नेह से देख रही है। भाभी और भी स्नेह प्रतिदान करती हुई कहती है—"ननद, तू कितनी सुन्दर है?"

(ननद-पौरवी)—"भाभी, तुम किससे कम हो? तुम्हारे लावण्य का बखान तो सारे सप्तसिन्धु में हो रहा है।"

(भाभी-पुरुकुत्सानी)—"पर मैं तो पुत्रवती हो चुकी हूँ, तू तो अभी क्लोर है।"

(ननद-पौरवी)—"पुत्रवती होना तो बड़े सौभाग्य की बात है, फिर तुम्हें कशोजु जैसा पुत्र मिला है।"

"नहीं ननद, तू भी पुत्रवती होने ही वाली है।"

"तब मैं भी पुरानी हो जाऊँगी।"

"तेरी जैसी का सौन्दर्य इतनी जल्दी पुराना नहीं हो सकता। पैजवन (बध्यश्व) सचमुच बड़ा भाग्यशाली है, जो उर्वशी जैसी पत्नी उसे मिली।"[1]

उक्त कथोपकथन सरस है। उस में सहज प्रवाह है। बात-चीत कथा-विकास में सहायक है। पौरवी, तृत्सुओं के राजा बध्यश्व की पत्नी आपन्न-सत्वा है। यहाँ परोक्ष रूप से सूचना मिलती है कि उपन्यास के भावी नायक दिवोदास का जन्म होने वाला है। पुरुकुत्सानी एवं पौरवी के स्वभाव का भी परिचय मिलता है। दोनों का स्वभाव मृदुल एवं स्नेहपूर्ण है। दोनों लावण्यमयी हैं। वे एक दूसरी के लावण्य-वैभव पर हर्ष प्रकट करती हैं।

'दिवोदास' उपन्यास के कथोपकथनों की सफलता एवं सार्थकता का मुख्य रहस्य यह है कि इनका उपयोग राहुल जी ने कथानक को सरस बनाने के लिए किया है। इस उपन्यास में उन्होंने कथोपकथनों के माध्यम से अपने निश्चयों, सिद्धान्तों तथा कल्पनाओं का प्रकाशन नहीं किया है। 'दिवोदास' में कथोपकथनों का उपयोग कम हुआ है। जहाँ हुआ है, वहाँ पात्रों के कथन संक्षिप्त एवं सजीव हैं। संक्षिप्तता के कारण कथन कथानक के विकास में बाधक नहीं हैं, प्रत्युत इनसे उपन्यास की आगामी घटनाओं की सूचना मिलती है। इनसे पात्रों के स्वभाव का आभास मिलता है। कथनों की भाषा स्वाभाविक, पात्रानुकूल है।

---

[1] दिवोदास, पृ० २४

निष्कर्ष

राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों के कथोपकथनों के उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त उनकी कथोपकथन-लेखन-कला से सम्बद्ध निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में पात्रों के कथोपकथनों का उपयोग मुख्यत: कथानक के विकास एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए किया है। कथोपकथन बड़े और छोटे—दोनों प्रकार के हैं। लम्बे कथनों की अपेक्षा पात्रों के संक्षिप्त कथन कथाक्रम के विकास एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण में अधिक सहायक हुये हैं। राहुल जी ने, जहाँ कथोपकथनों को अपने विचारों के प्रकाशन का माध्यम बनाया है, वहाँ पात्रों के कथन लम्बे हो गये हैं। इनसे कथानक अवरुद्ध हो गया है। ऐसे कथोपकथन, वाद-विवाद-प्रतियोगिता का रूप धारण कर लेते हैं। इनसे पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायता नहीं मिली है।

गम्भीर विषयों के विवेचन से सम्बद्ध होने एवं तर्क-वितर्क पूर्ण शैली में विकसित होने के कारण, राहुल जी के अधिकांश कथोपकथन शुष्क हैं। ऐसे कथनों की भाषा तथा विचार पाठकों के लिए दुर्बोध हैं। बातचीत के समय परिस्थिति एवं भावों के अनुसार पात्रों के हाव-भाव का प्रकाशन नहीं हुआ है। लम्बे कथनों में नाटकीयता का प्राय: अभाव है। असंतुलित शब्दों के प्रयोग के कारण मुसलमान पात्रों की भाषा अस्वाभाविक है। लोकभाषा के स्पर्श से ग्रामीण पात्रों के कथन सजीव हो उठे हैं।

राहुल जी की सम्वाद-लेखन-कला उत्तरोत्तर विकसित हुई। 'जीने के लिए' उनका सर्वप्रथम उपन्यास है। उसके कथोपकथन अत्यधिक लम्बे एवं शुष्क हैं। उनमें नाटकीयता का अभाव है। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास में कथोपकथनों का प्रयोग बहुत कम किया गया है। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' एवं 'मधुर स्वप्न' में संक्षिप्त कथोपकथन अधिक हैं। इन उपन्यासों के कथोपकथनों में, पात्रों के कथन पुस्तक के पूरे-पूरे पृष्ठ में फैले हुये हैं। 'दिवोदास' राहुल जी का अन्तिम उपन्यास है। इसमें उनकी सम्वाद-कला सफल है। 'सतमी के बच्चे' एवं 'बहुरंगी मधुपुरी' नामक संग्रहों की कहानियाँ पात्रों के जीवन-वृत्त के रूप में हैं। इनमें कथोपकथन तत्व का प्राय: अभाव है। 'वोल्गा से गंगा' के पूर्वार्द्ध की कहानियों के कथोपकथन प्राय: संक्षिप्त हैं। गम्भीर विषयों के तर्क-वितर्क से सम्बद्ध होने के कारण इस संग्रह के उत्तरार्द्ध की कहानियों के कथोपकथन लम्बे एवं शुष्क हैं।

(ख) उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की भाषा

मनुष्य के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम भाषा है। भाषा, मानव की सामाजिकता को पुष्ट करती है। साधारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा, साहित्य की भाषा अधिक कलात्मक और प्रभावशाली होती है। इसके वाक्य सुगठित और शब्द सार्थक एवं व्याकरण सम्मत होते हैं। उपन्यास तथा कहानी साहित्य के दो अति लोकप्रिय रूप हैं। साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा इनकी भाषा सहज और सरल होती है। उपन्यास एवं कहानी की भाषा को पात्रानुकूल बनाने के

लिए तथा वातावरण विशेष के निर्माण के लिये उसमें प्रसंगानुसार अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। शब्द भले ही संस्कृत, अरबी, फारसी अथवा अंग्रेजी के हों किन्तु उनका प्रयाग स्वाभाविक होना चाहिये। शब्द, भावों या विचारों के अनुरूप होने चाहिए। सुबोधता एवं सरसता उपन्यास एवं कहानी की भाषा की मुख्य कसौटियाँ हैं।

राहुल जी की भाषा के विविध रूप

'सतमी के बच्चे' कहानी-संग्रह का रचना-काल सन् १९३५ और 'दिवोदास' उपन्यास का १९६१ है। छब्बीस वर्ष की इस दीर्घावधि में, राहुल जी ने तीन कहानी-संग्रहों (सतमी के बच्चे, वोल्गा से गंगा, बहुरंगी मधुपुरी) तथा छः उपन्यासों (जीने के लिए, सिंह सेनापति, जय यौधेय, मधुर स्वप्न, विस्मृत यात्री तथा दिवोदास) की रचना की। रचना-काल की लम्बी अवधि और राहुल जी के जीवन अनुभवों के निरन्तर विकसित होने के कारण उनकी रचनाओं की भाषा में विविधता का दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। उपन्यासों एवं कहानियों में इतिहास के विभिन्न कालों एवं देश-विदेश की परिस्थितियों के चित्रण के कारण, उनकी भाषा में विविधता आ गई है। इसका एक अन्य कारण यह है कि उनके पात्र सुशिक्षित, नागरिक, ग्रामीण, हिन्दू, मुसलमान, स्त्री, पुरुष—सभी प्रकार के हैं। उपन्यासों तथा कहानियों में राहुल जी की भाषा के मुख्यतः निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

(क) **सरल हिन्दी**—सरल हिन्दी में, किसी विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह नहीं रहता है वरन् शब्द की कसौटी उसकी भावगत उपयुक्तता होती है। उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की भाषा मुख्यतः सरल हिन्दी है। अपने जीवन-अनुभवों को पाठकों तक पहुँचाने के लिये राहुल जी ने सरल हिन्दी का उपयोग किया है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"समय बीता और महात्मा गान्धी का असहयोग आया। रामगोपाल के लिये परीक्षा का समय था। अन्य नौजवानों की तरह देश की स्वतन्त्रता के इस महान् संग्राम में वे कूद पड़ने को तैयार थे लेकिन उन्होंने अपने लिये एक लक्ष्य सालों पहले से बना रखा था। मित्रों को भी समझाने की आवश्यकता पड़ी—देश के भीतर असहयोग के लिये आदमियों की कमी नहीं हो सकती, लेकिन विदेश में जाकर भारतीयों की सेवा करने के लिये आदमियों का मिलना आसान नहीं। कुछ महीनों तक उनकी अवस्था डाँवाडोल रही, लेकिन फिर संभल गये।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में हिन्दी के ग्यारह शब्द हैं—असहयोग, परीक्षा, देश, स्वतन्त्रता, महान्, संग्राम, लक्ष्य आवश्यकता, देश, सेवा तथा अवस्था। ये शब्द सरल हैं और प्रायः बोलचाल की हिन्दी में प्रयुक्त किये जाते हैं। इस उद्धरण में सात शब्द फारसी अरबी के हैं—तैयार (अरबी), लेकिन (अरबी), साल (फारसी), आदमी (अरबी), कमी (फारसी)

---

[1] रामगोपाल (सतमी के बच्चे), पृ० ९९

आसान (फारसी), नौजवान (फारसी)। इन शब्दों का हिन्दी में प्रायः प्रयोग होता है। वाक्य छोटे भी हैं और बड़े भी। शब्दों के चयन तथा वाक्यों के गठन में, कोई विशेष आग्रह नहीं है। राहुल जी चाहते, तो उक्त फारसी अरबी के शब्दों के स्थान पर संस्कृत तत्सम शब्द प्रयुक्त कर सकते थे। वाक्यों को अधिक सुगठित बना सकते थे। भाषा को सरल रखने के लिये उन्होंने यहाँ साधारण बोलचाल जैसी भाषा का प्रयोग किया है। विशेष शब्दों के प्रयोग द्वारा उन्होंने भाषा को कठिन बनाने का प्रयास नहीं किया है। भाषा का यह सरल रूप राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा का मुख्य रूप है। भाषा के इस रूप के कारण उनकी रचनायें स्पष्ट और सुबोध हैं।

(ख) संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त हिन्दी—सुशिक्षित पात्रों के तर्क-वितर्क एवं उनके जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रकाशन के समय, राहुल जी ने प्रायः संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों की भाषा अधिक परिष्कृत एवं परिमार्जित है। इस प्रसंग में आचार्य के नायक जय (जय यौधेय) के प्रति कथन उल्लेखनीय है—"स्नेह बुरा नहीं है क्योंकि यह आदमी को उत्सर्ग करना सिखलाता है, संकीर्ण अपनत्व की सीमा को तोड़ने की शक्ति देता है, लेकिन हमें समझना चाहिए कि हम चलते हुये संसार के चलते हुये पथिक हैं, जिनमें संयोग वियोग अवश्यंभावी हैं। हाँ, ठीक है मैं पका फल हूँ, किसी वक्त यह वृन्त छोड़ सकता है। लेकिन वत्स! जो अश्वयंभावी है उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए, चिन्ता करनी चाहिये अपने उद्देश्य की। जीवन भर में आशा की दृष्टि से तुम्हारी ओर देखता रहूँगा। जीवन के बाद भी दीपक से दीपक जलाया जाता है।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में स्नेह, उत्सर्ग, संकीर्ण, शक्ति, अवश्यंभावी, वृन्त, वत्स, चिन्ता, उद्देश्य, दृष्टि, दीपक—संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। शब्दों के चयन में प्रयास है। संस्कृत के उक्त शब्द सुशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रायः प्रयुक्त किये जाते हैं। उद्धरण के वाक्य सुगठित हैं। प्रयास के कारण भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित बन गई है। अभिव्यक्ति में एक गरिमा आ गई है। भाषा में प्रवाह और नाटकीयता है। आदमी (अरबी), लेकिन (अरबी), वक्त (अरबी), बाद (अरबी)—शब्दों का इस उद्धरण में प्रयोग हुआ है। भाषा में बोलचाल की स्वाभाविकता बनी रहे, इसीलिए इन शब्दों को बदलने का प्रयास राहुल जी ने नहीं किया है। जहाँ उन्होंने संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ पर भाव ग्रहण के लिए साधारण योग्यता के पाठकों को विशेष परिश्रम अपेक्षित होता है। उदाहरणस्वरूप 'मधुर स्वप्न' उपन्यास में महापत द्वारा अनाहिता के प्रति प्रयुक्त निम्नलिखित शब्द उद्धृत किए जाते हैं—

"···तुम्हारा स्वाभाविक रक्त-अधर, कोमल अरुण कपोल किसी अधर-राग, किसी मुखचूर्ण की आवश्यकता नहीं रखता। तुम्हारे चापयष्टि सदृश भ्रुवों के लिए किसी बनाव सिंगार की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे विशाल मृग नयनों में किसी अंजन

[1] जय यौधेय पृ० ११६

का काम नहीं, तुम्हारे तरंगित स्वर्ण केशों में घुंघराली अंगूठियां केवल पुनरुक्त मात्र हैं।"[1] इस संदर्भ में, भ्रुवों की चापयष्टि से उपमा, मृग-नयन, रक्त-अधर, अधर-राग, मुखचूर्ण आदि प्रयोग साधारण पाठक के लिए कठिन हैं। तुम्हारे तरंगित स्वर्ण केशों में घुंघराली अंगूठियां केवल पुनरुक्त मात्र हैं।—वाक्यांश के भाव अस्पष्ट हैं। राहुल जी की भाषा में कठिन संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। ऐसे कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं—

अन्तेवासी	(पृष्ठ १४, सिं० से०)
अद्रोघवाच	(पृष्ठ ४२, दिवोदास)
अलिन्द	(पृष्ठ १७४, ज० यौ०)
आघ्राण	(पृष्ठ ४४, दिवोदास)
आप्यायन	(पृष्ठ १७४, ज० यौ०)
उपवान	(पृष्ठ १७४, ज० यौ०)
उपायन	(पृष्ठ १२३, ज०यौ०; १०६, सिं० से०)
ऋष्टि	(पृष्ठ ५८, दिवोदास)
औपश	(पृष्ठ ३७, दिवोदास)
कपर्द	(पृष्ठ ८२, दिवोदास)
कुल्या	(पृष्ठ ५३, दिवोदास)
चंक्रमण	(पृष्ठ ५५, वि० यात्री)
चीनांशुक	(पृष्ठ २२२, ज० यौ०)
चीवर	(पृष्ठ २२२, ज० यौ०)
त्सरु	(पृष्ठ ५८, दिवोदास)
दृषद्	(पृष्ठ ३, दिवोदास)
धन्व	(पृष्ठ ९२, दिवोदास)
पणन	(पृष्ठ ३७, दिवोदास)
परिष्वंग	(पृष्ठ ११७, ज० यौ०)
वत्सतरी	(पृष्ठ ६९, दिवोदास)
विष्टर	(पृष्ठ १७४, ज० यौ०)
शौल्किक	(पृष्ठ १०६, सिं० से०)
सुगतालय	(पृष्ठ १७४, ज० यौ०)
सूनु	(पृष्ठ ४२, दिवोदास)
सूरि	(पृष्ठ १३९, दिवोदास)

(ग) उर्दू मिश्रित हिन्दी—उर्दू खड़ी बोली का वह आधुनिक अथवा साहित्यिक रूप है, जो फ़ारसी लिपि में लिखा जाता है और जिसमें फ़ारसी-अरबी शब्दों

---

[1] मधुर स्वप्न, पृ० ७७

का बाहुल्य रहता है। कहा जा चुका है कि राहुल जी के मुसलमान पात्रों के कथोपकथनों की भाषा अस्वाभाविक है। कथोपकथनों में, ईरान के मुसलमान पात्रों (मधुर स्वप्न) द्वारा संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त हिन्दी का प्रयोग अस्वाभाविक प्रतीत होता है। 'जीने के लिए' उपन्यास तथा 'बाबा नूरदीन', 'सुरैया', 'सफ़दर' (वोल्गा से गंगा) नामक कहानियों के मुसलमान पात्रों की भाषा उर्दू है। अन्य पात्रों की भाषा में भी फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। राहुल जी ने स्वयं घटनाओं के वर्णन तथा पात्रों से सम्बद्ध परिचयात्मक टिप्पणियों में अरबी, फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। 'आखिर' (फ़ारसी—पृष्ठ २५, ब० मधु०),'खूब' (फ़ारसी—पृष्ठ ३२, ब० मधु०),'अक्सर' (अरबी—पृष्ठ २२०, जय यौ०), 'इज्जत' (अरबी—पृष्ठ १६० वि० यात्री) शब्द सुबोध हैं। बोलचाल में इन शब्दों का प्रयोग प्रायः किया जाता है। 'दरिन्दा' (फारसी —पृष्ठ ३३, ब० मधु०), 'दस्तावेज़' (फ़ारसी—पृष्ठ २८, ब० मधु०), 'इफरात' (अरबी—पृष्ठ ४१, सतमी के बच्चे), तरद्दुद' (अरबी—पृष्ठ २३५, ज० यौ०) आदि कुछ ऐसे फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग हुआ है जो साधारण योग्यता के पाठकों के लिए दुर्बोध हैं। राहुल जी द्वारा प्रयुक्त फ़ारसी-अरबी के प्रमुख शब्द इस प्रकार हैं।[1]

फ़ारसी शब्द

अन्दाजा (फ़ारसी—अन्दाज़ा)	(पृष्ठ २७२, ज० यौ०)
अन्देशा (फ़ारसी)	(पृष्ठ १३१, जीने के लिये)
अफ़सोस (फ़ारसी—अफ़सोस)	(पृष्ठ २०१, वि० यात्री; ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
आखिर (फारसी—आख़िर)	(पृष्ठ २५, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०, ३४१, मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा)
उम्मीद	(पृष्ठ १३६, दिवोदास, जीने के लिए)
खूब (फ़ारसी—ख़ूब)	(पृष्ठ ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
खैरियत (फ़ारसी—ख़ैरियत)	(पृष्ठ २३, वि० यात्री)
ख्याल (फारसी—ख़याल)	(पृष्ठ १६०, ज० यौ०; ३६६, सुमेर—वोल्गा से गंगा, १०८; दर्लसिंगार, स० ब०)

[1] फ़ारसी-अरबी शब्दों के निर्णय के लिए निम्नलिखित शब्द कोशों को आधार बनाया गया है—

(क) वृहत् हिन्दी कोश, तृतीय संस्करण, स० २०२० ज्ञानमण्डल लिमि०, वाराणसी

(ख) फ़ीरोज़-उल-लुगात उर्दू (जदीद), द्वितीय संस्करण सन् १९४६, प्रकाशक—फ़ीरोज़ सन्ज़, प्रिन्टर्ज़ एण्ड पब्लिशर्ज़, लाहौर

(ग) लुगाते-जदीद (उर्दू)—एम० सिकन्दर, न्यूताज आफ़िस, देहली, चतुर्थ संस्करण, सन् १९५३

ख्वाहिश	(पृष्ठ २३५, जीने के लिये)
जबर्दस्त (फ़ारसी—ज़बरदस्त)	(पृष्ठ ३६६, सुमेर—वोल्गा से गंगा)
जबानदराज (फ़ारसी—ज़बानदराज़)	(पृष्ठ २५, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
जिन्दगी	(पृष्ठ १५३, जीने के लिये)
तनखा (फ़ारसी—तनख्वाह)	(पृष्ठ २५, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
दरिन्दा	(पृष्ठ ३३, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
दस्तावेज (फ़ारसी—दस्तावेज़)	(पृष्ठ २८, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
नजदीक (फ़ारसी—नज़दीक)	(पृष्ठ ३३१, मंगलसिंह—वोल्गासे गंगा)
पसन्द	(पृष्ठ २३, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०, १८७, वि० यात्री)
बर्दाश्त (फ़ारसी—बरदाश्त)	(पृष्ठ २४३, ज० यौ०; १३० जीने के लिए)
बल्कि	(पृष्ठ ५२, दिवोदास)
मजदूर (फ़ारसी—मज़दूर)	(पृष्ठ ३३१, मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा; १७१, कमलसिंह—ब० मधु०)
रुख (फ़ारसी—रुख़)	(पृष्ठ ३४०, मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा)
हफ्ता (फ़ारसी—हफ़ता)	(पृष्ठ १३१—जीने के लिये)

अरबी शब्द

अक्सर (अरबी—अकसर)	(पृष्ठ २२०—ज० यौ०)
आदमी	(पृष्ठ २३, वि० यात्री)
आलीशान	(पृष्ठ १७, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
इज्जत (अरबी—इज्ज़त)	(पृष्ठ १६०—वि० यात्री)
इन्तजाम (अरबी—इन्तज़ाम)	(पृष्ठ १०८—सिं० से०)
इफरात (अरबी—इफ़रात)	(पृष्ठ ४१, पुजारी—सतमी के बच्चे)
इस्तेमाल	(पृष्ठ १२१—ज० यौ०)
कत्लेआम (अरबी—कत्लेआम)	(पृष्ठ ३४०, मंगलसिंह—वोल्गासे गंगा)
कायम (अरबी—क़ायम)	(पृष्ठ ६६, ज० यौ०; ३३० वोल्गा से गंगा)
कुर्बानी (अरबी—कुरबानी)	(पृष्ठ १३०, जीने के लिये)
खतरा (अरबी—खतरा)	(पृष्ठ १२३, ज० यौ०)
गनीमत (अरबी—ग़नीमत)	(पृष्ठ ३८, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
जरूरत (अरबी—ज़रूरत)	(पृष्ठ २३४, ज० यौ०)
जुर्म	(पृष्ठ २८, ब० मधु०)
जुल्म (अरबी—ज़ुल्म)	(पृष्ठ ३३०, मंगलसिंह—वो० से गंगा)

तरद्दुद	(पृष्ठ ४२, जीने के लिये; २३५, ज० यौ०)
दिक्कत (अरबी—दिक्कत)	(पृष्ठ १६०, ज० यौ०)
नजारा (अरबी—नज़ारा)	(पृष्ठ ३४१, मंगलसिंह—वो०से गंगा)
नाबालिग	(पृष्ठ ३९, जीने के लिये)
फायदा (अरबी—फ़ायदा)	(पृष्ठ ६, सतमी के बच्चे; १२९, ज० यौ०)
फ़िक्र, फिकर (अरबी—फ़िक्र)	(पृष्ठ १३०; ज० यौ० ३२, कु० दुरजय—ब० मधु०)
फुर्सत (अरबी—फ़ुरसत)	(पृष्ठ ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
मददगार	(पृष्ठ १३५, गोलू—ब० मधु०)
मजबूत (अरबी—मज़बूत)	(पृष्ठ २३५, ज० यौ०)
मजबूर	(पृष्ठ ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
महरूम	(पृष्ठ २४०, जीने के लिये)
मुकाम (अरबी—मकाम)	(पृष्ठ ३४०, मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा)
मुकाबला, मुकाबिला (अरबी—मुक़ाबला)	(पृष्ठ २३, वि० यात्री, १३६, दिवोदास)
मुलाकात	(पृष्ठ १५३, जीने के लिए)
मुशक्कत (अरबी—मशक्क़त)	(पृष्ठ२४५, मास्टर जी—ब०मधु०)
मुश्किल	(पृष्ठ ३८, जीने के लिये; १९६, वि० या०)
मुश्तहक (अरबी—मुस्तहक़)	(पृष्ठ ३६१, सफदर—वो० से गंगा)
यकीन (अरबी—यक़ीन)	(पृष्ठ ३६८, सुमेर—वो० से गंगा)
वक्त (अरबी—वक्त)	(पृष्ठ १५३, जीने के लिये)
वजह	(पृष्ठ १८६, वि० यात्री)
शरीक	(पृष्ठ ८८, राजवली—सतमी के बच्चे)
शामिल	(पृष्ठ २२, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
शौकीन (अरबी—शौकीन)	(पृष्ठ १७, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
हरम	(पृष्ठ २८, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
हिफ़ाजत (अरबी—हिफ़ाज़त)	(पृष्ठ २८, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
हिम्मत	(पृष्ठ २३४, ज० यौ०)

ग्रामीण शब्दों का प्रयोग

ग्रामीण पात्रों के वार्तालाप को खड़ी बोली में लिखते समय, उपन्यासकार एवं कहानीकार, पात्रों की वास्तविक भाषा के कुछ शब्दों का प्रयोग करते हैं। इन

के प्रयोग से ग्रामीण पात्रों की भाषा स्वाभाविक एवं सजीव बन जाती है। 'जीने के लिए' उपन्यास में तथा 'वोल्गा से गंगा' संग्रह की 'बाबा नूरदीन' और 'रेखा भगत' कहानियों में ग्रामीण पात्रों की भाषा में, स्थानीय बोली का प्रभाव है। 'सतमी के बच्चे' संग्रह की कहानियों में ग्रामीण वातावरण के चित्रण में राहुल जी ने यत्र-तत्र ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया है। जिन ग्रामीण शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है उनमें से कुछ ये हैं—

अपढ़	(पृष्ठ ५६, महाप्रभु—ब० मधु०)
अबेर	(पृष्ठ १६, जीने के लिये)
ओसारा	(पृष्ठ १२, २० जीने के लिये)
कलेऊ	(पृष्ठ २२, जीने के लिये)
खांचा	(पृष्ठ ११, जीने के लिये)
गत	(पृष्ठ २४१, जीने के लिये)
गभरू	(पृष्ठ २२, जीने के लिये)
गमछी	(पृष्ठ ३१, जीने के लिये)
गोखा	(पृष्ठ २०, जीने के लिये)
घबड़ाना	(पृष्ठ ३१८, जीने के लिये)
चचरा	(पृष्ठ ३३, जीने के लिये)
चहैती	(पृष्ठ २६, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
चांचर	(पृष्ठ १, सतमी के बच्चे)
चीन्ह	(पृष्ठ ८५, अंगिरा—वोल्गा से गंगा)
चौरा	(पृष्ठ १६, डीह बाबा—सतमी के बच्चे)
जड़ैया	(पृष्ठ ४, सतमी के बच्चे)
जनम	(पृष्ठ २७१, जीने के लिये)
भगत	(पृष्ठ २७१, जीने के लिये)
भिनसार	(पृष्ठ ३०, दिवोदास)
मजूर	(पृष्ठ १६३, राउत—ब० मधु०)
सुपढ़	(पृष्ठ ५६, महाप्रभु—ब० मधु०)
पनिऔवा	(पृष्ठ ४, सतमी के बच्चे)
पिछुआ	(पृष्ठ २, सतमी के बच्चे)
पीहर	(पृष्ठ ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
बोहनी	(पृष्ठ १४, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
रछपाल	(पृष्ठ १६, डीह बाबा—सतमी के बच्चे)
साइत	(पृष्ठ ४०, पुजारी—सतमी के बच्चे)
साखर्ची	(पृष्ठ ३४, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
सासरा	(पृष्ठ ७४, लिप्स्टिक—ब० मधु०)

स्वनिर्मित शब्दों का प्रयोग

उपन्यासों एवं कहानियों में कुछ ऐसे शब्द दृष्टिगोचर होते हैं, जिनका निर्माण राहुल जी ने संस्कृत तत्सम शब्दों अथवा तद्भव के आधार पर किया है। कुछ ऐसे शब्द दृष्टव्य हैं—

घमतप्नी (पृष्ठ १४०, दिवोदास)

घाम (धूप) तापने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

दीपयष्टि (पृष्ठ १४४, दुर्मुख—वोल्गा से गंगा)

यह शब्द 'मशाल' के पर्यायवाची के रूप में व्यवहृत हुआ है।

धूमनेत्रक (पृष्ठ ८५, अंगिरा—वो० से गंगा)

'चिमनी' के स्थान पर प्रयुक्त किया गया है।

प्रतिसंस्कार (पृष्ठ ८४, अंगिरा—वोल्गा से गंगा)

'मरम्मत' शब्द के लिए प्रयोग में लाया गया है।

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग

राहुल जी ने पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण के चित्रण में तथा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पात्रों के कथोपकथन में यत्र-तत्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द जन साधारण के प्रयोग के हैं, विशेष कठिन नहीं हैं। अंग्रेजी पढ़े लिखे तथा नगरों में रहने वाले लोग, बोलचाल की भाषा के प्राय: उन अंग्रेजी शब्दों को व्यवहार में लाते हैं। 'बहुरंगी मधुपुरी' की अधिकांश कहानियों का सम्बन्ध पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण के चित्रण से है। इन कहानियों के पात्रों की बातचीत में तथा राहुल जी ने अपनी भाषा में कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने जिन शब्दों का अधिक प्रयोग किया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

एजेन्ट (पृष्ठ ४०, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
कंट्रोल (पृष्ठ १०३, रायबहादुर—ब० मधु०)
कमीशन (पृष्ठ ४०, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
ग्रेड (पृष्ठ २४, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
गारन्टी (पृष्ठ २९, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
चार्ज (पृष्ठ २७, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
टेम्परेचर (पृष्ठ ३९, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
डिग्री (पृष्ठ १५, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
ड्यूटी (पृष्ठ १३१, जीने के लिये)
परमिट (पृष्ठ ३९, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
पाकेट (पृष्ठ १३०, जीने के लिये)
पुडिंग (पृष्ठ ३४६, सफ़दर—वोल्गा से गंगा)
पेंशन (पृष्ठ ३०, कु० दुरंजय—ब० मधु०)

फंक्शन	(पृष्ठ ३४, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
फार्म	(पृष्ठ ३७, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
फैशन	(पृष्ठ ४४, मेम साहब—ब० मधु०)
सीजन	(पृष्ठ १५, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
होटल	(पृष्ठ २१, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
हैंडबेग	(पृष्ठ ७५, लिप्स्टिक—ब० मधु०)

राहुल जी ने अंग्रेजी के कतिपय कठिन शब्दों का प्रयोग किया है—

एक्सेन्ट	(पृष्ठ २७५, काठ का साहब—ब० मधु०)
कैसल	(पृष्ठ ८६, ठाकुर जी—ब० मधु०)
कोर्टमार्शल	(पृष्ठ १३०, जीने के लिये)
गार्जियन	(पृष्ठ ३६७, सुमेर—वोल्गा से गंगा)
टावर	(पृष्ठ ३२२, मंगलसिंह—वोल्गा से गंगा)
डेक	(पृष्ठ ११४, जीने के लिये)
डोज (अंग्रेजी—डोज़)	(पृष्ठ ३४०, मंगलसिंह—बोल्गा से गंगा)
पैंट्री	(पृष्ठ ४६, मेम साहब—ब० मधु०)
पैशन	(पृष्ठ २२५, पेड़ बाबा—ब० मधु०)

राहुल जी ने अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखने वाले पात्रों से यत्र-तत्र कुछ अंग्रेज़ी वाक्य अथवा वाक्यांशों का भी प्रयोग कराया है—

अप-टु-डेट	(पृष्ठ ४५, मेम साहब—ब० मधु०)
'ओ, आई एम सारी।'	(पृष्ठ ५०, मेम साहब—ब० मधु०)
क्रूड टैकनीक	(पृष्ठ २२४, पेड़ बाबा—ब० मधु०)
'व्हाट नान् सेन्स।'	(पृष्ठ ७५, लिप्स्टिक—ब० मधु०)

व्याकरण सम्बन्धी असंगतियाँ

व्याकरण द्वारा भाषा के शुद्ध शब्दों, उनके रूपों, प्रयोगों आदि का ज्ञान होता है। व्याकरण भाषा के रूप को नियंत्रित करता है। साहित्यिक भाषा का व्याकरण-सम्मत होना अनिवार्य है। राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा में कतिपय व्याकरण सम्बन्धी असंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इनके कारण वाक्यों का गठन शिथिल हो गया है तथा भाषा के चमत्कार को आघात पहुँचा है। कुछ असंगतियाँ इस प्रकार हैं—

(क) लिंग सम्बन्धी असंगतियाँ—राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा में लिंग सम्बन्धी निम्नांकित असंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं—

'व्यक्तियाँ मरेंगी, लेकिन जाति अमर रहेगी'। (पृष्ठ १०७, जीने के लिये)

हिन्दी में 'व्यक्ति' शब्द पुल्लिग है किन्तु राहुल जी ने यहाँ इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है।

'क्या करें, अब तो ढोल गले में पड़ चुकी थी।' (पृष्ठ ३२, कु० दुरंजय—ब० मधु०)

ढोल शब्द हिन्दी में पुल्लिग है किन्तु प्रस्तुत वाक्य में इस शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया गया है।

'·········तर्ज़ बड़ा सुन्दर था।' (पृष्ठ १२—जीने के लिये)

तर्ज़ (अरबी) शब्द अरबी भाषा में पुल्लिग है किन्तु इसका प्रयोग हिन्दी में स्त्रीलिंग के रूप में किया जाता है। यहाँ यह शब्द पुल्लिग प्रयुक्त किया गया है।

(ख) विपरीतार्थक शब्दों से सम्बद्ध असंगतियाँ

'उसे उन्होंने नकली नहीं बल्कि सकली बंगला बनाया था।' (पृष्ठ १२, 'बूढ़े लाला'—ब० मधु०)

'सकली' शब्द को 'नकली' के विपरीतार्थक रूप में प्रयुक्त किया गया है, जोकि अप्रचलित और असंगत है।

'कुछ सालों पहले तक पहाड़ के लोग अपनी ईमानदारी के लिये बहुत प्रसिद्ध ही नहीं, बल्कि दुःख्यात भी थे। (पृष्ठ ३, 'बूढ़े लाला'—ब० मधु०) यहाँ कुख्यात के स्थान पर 'दुःख्यात' प्रयुक्त किया गया है।

(ग) अप्रचलित शब्द युग्म

राहुल जी ने अपनी कथा-कृतियों में कतिपय अप्रचलित एवं स्वनिर्मित शब्द-युग्मों का प्रयोग किया है। जैसे—

अमोघ-वमोघ	(पृष्ठ ३६२, सफ़दर—वोल्गा से गंगा)
खर्च-वर्च	(पृष्ठ १०१, घुरबिन—सतमी के बच्चे)
सचरौरी-मिन्ती	(पृष्ठ १४२, गोलू—ब० मधु०)
पीने-पाने	(पृष्ठ १४१, गोलू—ब० मधु०)
भूखों-दूखों, भूखे-दूखे	(पृष्ठ ३४, मधुर स्वप्न; १०८, गुरुजी—ब० मधु०)
रंग-चंग	(पृष्ठ ७५, ७८, लिप्स्टिक—ब० मधु०)
विश्वास-उश्वास	(पृष्ठ ७५, ज० यौ०)

दिवोदास की भाषा

दिवोदास (रचनाकाल सन् १९६१ ई०) राहुल जी का अन्तिम उपन्यास है। इसमें उनकी भाषा का चरम रूप है। भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। तत्सम शब्दों की प्रधानता के कारण इसका रूप परिमार्जित एवं परिष्कृत है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"व्यायाम समाप्त हुआ। कुछ विश्राम कर पुरुकुत्स विशाल अग्निशाला में पहुँचा। ऋत्विज—जिनमें सफ़ेद दाढ़ी-मूँछ वाले कितने ही वृद्ध ऋषि भी थे—अग्नि की ओर से स्तुति करने लगे। घृत और जौ का होम होने लगा। पुरुकुत्स स्वयं अग्नि के पास कुशासन पर बैठा। चारों तरफ़ मिट्टी और ताँबे के कलशों में सोम (भंग) भर कर रखा हुआ था। अग्नि को सोम अर्पित किया गया। देवताओं को अर्पित किये बिना कुछ भी खाना आर्य पाप समझते। अग्नि के बाद इन्द्र का भी आवाहन

होता। इन्द्र के पौरुष के साम गाये गये। प्रातः सवन इस तरह समाप्त हुआ, जबकि हवन के बाद सत्तू के साथ उपस्थित आर्य नर-नारियों ने अग्निशाला में सोमपान किया। यह कोई विशेष दिन नहीं था, दिन के काम पड़े रहने के कारण इस समय सोमपान को अतिमात्रा में बढ़ाया नहीं जा सकता था।"[१] प्रस्तुत उद्धरण में—व्यायाम, विश्राम, विशाल, वृद्ध, घृत, अग्नि, स्तुति, उपस्थित, विशेष, अतिमात्रा—संस्कृत के दस ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में केवल सुशिक्षित व्यक्ति करते हैं। उद्धरण के आठ संस्कृत तत्सम शब्द—अग्निशाला, ऋत्विज, होम, कुशासन, सोम, कलश, आवाहन, सवन—अपेक्षाकृत कम प्रचलित हैं। इनका अर्थ साधारण पाठकों को प्रसंगानुसार करना पड़ता है। इस उद्धरण में सफेद (फारसी), और (फारसी), बाद (अरबी), तथा तरह (अरबी) शब्द प्रयुक्त हुये हैं। उक्त शब्दावली से स्पष्ट है कि राहुल जी ने प्रयास द्वारा भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित किया है। शब्दों का प्रयोग प्रसंगानुकूल है। फारसी-अरबी के उक्त शब्दों का प्रयोग, उन्होंने भाषा को क्लिष्ट न बनने देने के लिये किया है। वाक्य छोटे और बड़े दोनों प्रकार के हैं। वाक्य सुगठित हैं। भाषा में प्रवाह है।

'दिवोदास' में संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। स्रोत्या (छोटी नदी, पृ० २), श्मश्रु (दाढ़ी, पृ०८), दम (घर, पृष्ठ ५३), कुल्या (नहर, पृष्ठ ५३) उदव्रज (पानी का गोठ, पृष्ठ १४१), कपर्द (वेणी, पृष्ठ ८२) संस्कृत शब्दों का अर्थ साधारण पाठकों के लिए क्लिष्ट एवं दुर्बोध है। जहां ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है वहां शब्दार्थ ग्रहण करने के लिए साधारण पाठको को विशेष प्रयास, अपेक्षित है।

'दिवोदास' उपन्यास में आफत (अरबी, पृष्ठ ५९), मुश्किल (अरबी, पृष्ठ १२२), बल्कि (फारसी, पृष्ठ ५२), पसन्द (फारसी, पृष्ठ ११२) जैसे फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों के स्थान पर संस्कृत अथवा हिन्दी के सरल शब्द प्रयुक्त किए जा सकते थे। भाषा को बोलचाल के समीप लाने की दृष्टि से ऐसा किया गया मालूम होता है। इन शब्दों का प्रयोग राहुल जी ने अपने अन्य उपन्यासों एव कहानियों में भी किया है। लगता है, ये शब्द उनकी भाषा का अंग बन गये हैं।

'दिवोदास' की भाषा में ग्रामीण शब्दों का प्रायः अभाव है। भाषा प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल है। पात्रों की भाषा अपेक्षाकृत सरल है। वातावरण के चित्रण तथा परिचयात्मक टिप्पणियों में राहुल जी ने संस्कृत के कठिन शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। भाषा प्रवाहमयी है।

निष्कर्ष

उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की भाषा के विविध रूप मिलते हैं। इन रचनाओं में उनकी भाषा मुख्यतः सरल हिन्दी है। घटनाओं एवं वातावरण के साधारण वर्णन में तथा अपठित एवं अर्धशिक्षित पात्रों के कथोपकथनों में उन्होंने

---

[१] दिवोदास, पृष्ठ ६

सरल हिन्दी का उपयोग किया है। उनके सुशिक्षित पात्रों की भाषा प्रायः संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त है। जहाँ राहुल जी ने भाषा के रूप को अधिक परिमार्जित एवं अलंकृत बनाना चाहा है वहाँ उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। कहीं कहीं कठिन एवं अप्रचलित संस्कृत शब्द प्रयुक्त हुये हैं। ऐसे स्थलों की भाषा साधारण पाठकों के लिये दुर्बोध बन गई है।

उर्दू का प्रयोग राहुल जी ने मुसलमान पात्रों तक ही सीमित नहीं रखा है। उन्होंने अन्य पात्रों से भी फारसी-अरबी के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग कराया है। राहुल जी ने अपने सभी उपन्यासों तथा कहानियों में घटनाओं के वर्णन तथा विश्लेषणात्मक टिप्पणियों में फारसी-अरबी के शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण के चित्रण में उन्होंने कतिपय अँग्रेजी शब्द प्रयुक्त किये हैं

उपन्यासों एवं कहानियों का भाषा की दृष्टि से विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि राहुल जी के भाषा गठन में उत्तरोत्तर विकास होता गया है। 'जीने के लिए' राहुल जी का सर्वप्रथम उपन्यास है। इसकी भाषा विशेष परिमार्जित नहीं है। उसमें फारसी-अरबी के शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। साथ ही ग्रामीण शब्द भी प्रचुर रूप में व्यवहृत हुए हैं। मुसलमान पात्रों की भाषा अस्वाभाविक है। शब्दों के उपयुक्त चयन के लिए अपेक्षित प्रयास नहीं किया गया है। एक वर्ष के काल में रचित 'सिंह सेनापति' एवं 'जय यौधेय'—दोनों उपन्यासों की भाषा परिमार्जित एवं परिष्कृत है। इनमें संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है किन्तु भाषा क्लिष्ट नहीं है। 'मधुर स्वप्न' की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रधानता है। संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों के कारण भाषा कहीं कहीं साधारण पाठकों के लिये कठिन बन गई है। यवन पात्रों के मुख से संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग अस्वाभाविक लगता है। विस्मृत यात्री' की भाषा में 'मधुर स्वप्न' की भाषा जैसी क्लिष्टता नहीं है। फारसी-अरबी के शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। इस उपन्यास में पात्रों के कथोपकथन बहुत कम हैं इसलिये भाषा में एकरूपता है। संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। भाषा परिमार्जित एवं प्रांजल है।

'सतमी के बच्चे' (रचनाकाल सन् १९३५ ई०) राहुल जी का प्रथम कहानी संग्रह है। इसकी भाषा सरल हिन्दी है। अधिकांश कहानियों का सम्बन्ध ग्रामीण वातावरण से है। भाषा में ग्रामीण शब्दों का यत्किंचित प्रयोग हुआ है। फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु ये कठिन नहीं हैं। इनका प्रयोग बोलचाल की हिन्दी में प्रायः किया जाता है। 'वोल्गा से गंगा' कहानी-संग्रह का रचनाकाल सन् १९४४ ई० है। इसी काल में उन्होंने 'सिंह सेनापति' एवं 'जय यौधेय' उपन्यासों की रचना की थी। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों की भाषा इन दोनों उपन्यासों की भाषा के समान परिमार्जित है। इस संग्रह के पूर्वार्द्ध की रचनाओं में संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रधानता है। उत्तरार्द्ध की कहानियों में वातावरण के अनुसार फारसी-

अरबी शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'बहुरंगी मधुपुरी' कहानी संग्रह का रचना-काल सन् १९५३ ई० है। इस संग्रह की भाषा 'वोल्गा से गंगा' की कहानियों की भाषा की भाँति परिमार्जित एवं परिष्कृत नहीं है। इसमें ग्रामीण शब्दों तथा फारसी-अरबी शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इस संग्रह की कहानियों का सम्बन्ध पाश्चात्य सभ्यता द्वारा प्रभावित लोगों के जीवन से है। इनमें अंग्रेजी शब्द प्रसंगवश पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुये हैं। इन कहानियों के पात्र साधारण योग्यता के अथवा अशिक्षित हैं। इसी लिये राहुल जी ने इस संग्रह की भाषा को परिमार्जित करने का विशेष प्रयास नहीं किया है।

'दिवोदास' उपन्यास राहुल जी की अन्तिम कथाकृति है। उसकी भाषा अन्य उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित एवं परिष्कृत है। इस उपन्यास में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्राधान्य है। संस्कृत के अप्रचलित एवं कठिन शब्दों के कारण कहीं कहीं भाषा दुर्बोध है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द प्रयुक्त हुये हैं किन्तु ये साधारण बोलचाल के हैं।

(ग) उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की लेखन-शैली

साहित्यकार, साधारण मानव की अपेक्षा, अधिक भावुक एवं विचारशील होता है। वह अपने अनुभवों एवं हृदयगत अनुभूतियों को पाठकों तक पहुँचाकर, उन्हें अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इस दृष्टि से साहित्य के दो पक्ष हैं—अनुभूति-पक्ष तथा अभिव्यक्ति-पक्ष। अनुभूति पक्ष को भाव पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष को कला पक्ष कहा जाता है। शैली तत्व का सम्बन्ध, मुख्यतः साहित्य के अभिव्यक्ति-पक्ष से है। भावाभिव्यक्ति का उत्तम माध्यम भाषा है और भाषा के प्रयोग की रीति अथवा विधि शैली है। जन-जीवन के समीप होने के कारण, उपन्यास एवं कहानी जन-मन-रंजन की वस्तु अधिक है। जीवन-आदर्शों को सर्वसाधारण पाठकों तक पहुँचाने के लिए कथाकार को विषय-वस्तु का बोध-गम्य होना अनिवार्य है। इस दृष्टि से कथा की शैली का मुख्य गुण प्रसाद गुण है। सुनते ही जिनका अर्थ प्रतीत हो जाय, ऐसे सरल और सुबोध शब्द 'प्रसाद' के व्यंजक होते हैं।[१] कथा की भाषा में प्रयुक्त शब्द, सुगम तथा सरल होने चाहिये। समासयुक्त, क्लिष्ट तथा अप्रचलित शब्द प्रसाद गुण को हानि पहुँचाते हैं। भाषा को सुबोध और प्रसादमय बनाने में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग वांछनीय है। प्रसाद गुण के साथ, शैली में ओज और माधुर्य का विषयानुकूल समावेश स्वाभाविक एवं अपेक्षित है। माधुर्य गुण में संयुक्ताक्षरों का अभाव, सानुस्वार वर्णों का प्रयोग तथा मृदु समासों का व्यवहार होता है।[२] ओज गुण के लिये शैली में चुस्ती, संक्षिप्तता एवं भावानुकूल संचित शब्दों

---

१ साहित्यदर्पण 'विमला' हिन्दी व्याख्या सहित (विमला टीका के रचयिता श्री पं० शालिग्राम, शास्त्री), पृ० २६६

२ बृहत् हिन्दी कोश—ज्ञान मण्डल लिमि० वाराणसी, पृ० १०६७

की आवश्यकता होती है। गुणों के अतिरिक्त कथा की शैली प्रवाहयुक्त होनी चाहिये। भाषा में प्रवाह के लिए आवश्यक है कि वाक्य सुगठित हो और उनका पारिस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट एवं पुष्ट हो, क्योंकि उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के पटु प्रयोग से भावाभिव्यक्ति सचित्र एवं सजीव हो जाती है।

राहुल जी की लेखन शैली में वर्णन की प्रधानता

कथा साहित्य में राहुल जी की लेखन शैली मुख्यतः वर्णनात्मक है। उन्होंने छः में से तीन उपन्यास—'जीने के लिये', 'मधुर स्वप्न' तथा 'दिवोदास'—वर्णनात्मक शैली में लिखे हैं। 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय' और 'विस्मृत यात्री' उपन्यासों की शैली आत्मकथात्मक है। 'सतमी के बच्चे', 'वोल्गा से गंगा' तथा 'बहुरंगी मधुपुरी' की इक्यावन कहानियों में दो कहानियों—सुपर्ण यौधेय एवं दुर्मुख—को छोड़, शेष सभी वर्णनात्मक शैली में रचित हैं। जिन उपन्यासों की शैली आत्मकथात्मक है, उनमें भी वर्णन की प्रधानता है। नायक यात्रा-प्रेमी और साहसी हैं। वे अपनी यात्राओं एवं साहसपूर्ण घटनाओं का वर्णन करते चलते हैं। राहुल जी की वर्णनात्मक शैली का परिचय घटनाओं, पात्रों एवं वातावरण के चित्रण में मिलता है।

(क) **घटना-चित्र**—घटना राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों का मूलाधार है। इस के विशद वर्णन के लिये जितना अवकाश उपन्याम में होता है, उतना कहानी में नहीं। राहुल जी के उपन्यासों में ही नहीं कहानियों में भी घटनाओं का चित्रण सांकेतिक की अपेक्षा स्थूल, वर्णनात्मक अथवा अभिधात्मक अधिक है। कहानी में किसी बात को सांकेतिक रूप में न कह कर, उसका पूर्ण व्यौरा प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणस्वरूप, ग्रीष्म ऋतु में, मधुपुरी की शीतल, मन्द, सुगन्ध, बयार, वहाँ की प्राकृतिक शोभा तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से वहाँ आने वाले सैलानियों के कारण चहल-पहल का वर्णन (हाय बुढ़ापा—ब० मधु०) ढाई पृष्ठों में किया गया है। उसका कुछ अंश नीचे देखिए :—

"वड़ा सीजन महीने डेढ़ महीने का होता है, लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि उसके बाद मधुपुरी सूनी हो जाती है। पंजाब के सैलानी तो वस्तुतः जुलाई में ही आते हैं। इसमें शक नहीं कि गर्मियों में तापमान जितना ऊँचा उत्तर प्रदेश में देखा जाता है, उतना भारतीय पंजाब में नहीं। बनारस, बाँदा, आजमगढ़, लखनऊ के लोग जब ११५-११६ डिग्री की गर्मी में लू से झुलसते हैं, तो अमृतसर क्या राजपूताने के भी जयपुर-जोधपुर ११० से नीचे ही रहते हैं। कितने ही दिनों तो बाँदा, बनारस हिन्द पाकिस्तान के सबसे गरम स्थानों, बिलोचिस्तान के सीबी, नासबेला आदि से होड़ लगाते हैं, यद्यपि उन्हें अन्त में परास्त होना पड़ता है। यह पांच सात डिग्री गर्मी की कमी ही है, जिसके कारण पंजाबी सैलानी जीवन के यौवन पर होने के समय मधुपुरी नहीं पहुँचते। बरसात में यद्यपि टेम्परेचर उतना ऊँचा नहीं होता, लेकिन उनको शिकायत होती है ऊमस, पसीने और उनके कारण सारे शरीर को अमहोरी—सरसों भर की फुंसियों का ढाँकना। इसे आप अमीरों का चोंचला भी कह

सकते हैं। जब लू बर्दाश्त कर ली, तो ऊमस से डरने की क्या जरूरत ? जो भी हो जुलाई अगस्त में पंजाबी सैलानी ही मधुपुरी में अधिक दिखाई देते हैं जिसका यह अर्थ नहीं कि इस समय फिर सीजन जैसी चहल-पहल हो उठती है। वह नहीं होती, यह तो इसी से मालूम है कि इस समय आपको सीजन में हजार रुपये में मिलने वाली कोठी दो सौ रुपये में मिल सकती है। हाँ, इतना जरूर है कि मधुपुरी इनके आने के कारण अपने सूनेपन से बच जाती है। सितम्बर में जब ये लोग अपने घरों को लौटने लगते हैं तो बिहार बंगाल वालों की बारी आती है।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में लेखक का उद्देश्य यह बताना है कि पंजाब सैलानी सैर के लिये जुलाई में मधुपुरी पहुँचते हैं। इस विषय का संकेत मात्र न कर तेरह वाक्यों में उल्लेख किया गया है। गरमी ऐसी है मानो आग बरसती है—यह वाक्य संक्षिप्त एवं अनुभूति प्रधान है। ऐसा एक कथन गर्मी का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। राहुल जी के उक्त संपूर्ण उद्धरण में ऐसे मार्मिक चित्र का अभाव है। उत्तर प्रदेश, पजाब तथा राजपूताने के तापमान की तुलना द्वारा गर्मी का जो चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है उसमें मार्मिकता उत्पन्न नहीं हो सकी है। विषय को मर्मस्पर्शी बनाने की अपेक्षा लेखक ने उसकी नाप जोख अधिक की है। व्याख्या—जैसा प्रभाव उत्पन्न करने के प्रयत्न करने में शैली नीरस बन गई है। विषय का चित्र पाठकों की कल्पना में उभरने नहीं पाता।

संक्षिप्तता तथा मार्मिकता के अभाव में उक्त उद्धरण मे परिगणन शैली का आभास मिलता है। पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं राजपूताने के ग्रीष्म ऋतु की चर्चा को पर्याप्त न समझ बनारस, बाँदा, आजमगढ़, लखनऊ, अमृतसर, जयपुर-जोधपुर आदि स्थानों के तापमान का पृथक् उल्लेख किया है। एक ही बात को बार-बार दोहराया गया है। इस उद्धरण के—'पजाब के सैलानी तो वस्तुतः जुलाई में ही आते है' तथा 'जुलाई-अगस्त में पंजाबी सैलानी ही मधुपुरी में अधिक दिखाई देते हैं'—वाक्यों के भाव एक जैसे हैं। वाक्यों के भाव को स्पष्ट करने के लिये 'लेकिन उसका यह मतलब नहीं', 'इसमें शक नहीं', 'जो भी हो', 'जिसका यह अर्थ नहीं','यह तो इसी से मालूम है', 'हाँ, इतना जरूर है', वाक्यांशों का प्रयोग किया गया है। इन वाक्यांशों से विषय अस्पष्ट तथा शैली शिथिल हो गई है। वर्णन-प्रधानता के कारण घटना चित्र अस्पष्ट है तथा कथानक की गति अवरुद्ध है।

(ख) **पात्र-चित्र**—घटनाओं की भाँति पात्रों के चरित्र-चित्रण में राहुल जी ने वर्णन को प्रधानता दी है। उनकी दृष्टि पात्रों के आन्तरिक चरित्र की अपेक्षा वाह्य चरित्र पर अधिक रही है। वाह्य चरित्र का चित्र प्रस्तुत करते समय वे पात्रों के आकार-प्रकार, वेश-भूषा का विशद चित्रण करते हैं। पात्र के समय किसी गुण-दोष का जहाँ संकेतमात्र पर्याप्त है, वहाँ वे कई पृष्ठों में उसका वर्णन करते हैं। इस प्रसंग में मीनाक्षी (मीनाक्षी—ब० मधु०) की विशाल आँखों का विशद चित्रण उल्लेखनीय है। मीनाक्षी की विशाल आँखों की चर्चा पुस्तक के साढ़े तीन पृष्ठों में की गई है। यहाँ उसका कुछ अंश दिया जाता है—

---

[1] हाय बुढ़ापा (ब० मधु०), पृष्ठ १५

"............मीनाक्षी उनके लिये अनुपयुक्त नाम नहीं है, बल्कि पिछले हजार वर्षों में हिमालय से कुमारी तक, आसाम से राजस्थान तक फैले इस विस्तृत महादेश में यदि किसी के लिये मीनाक्षी शब्द का ठीक से उपयोग किया जा सकता तो इन्हीं के लिये। इतनी बड़ी आँखें देखने के लिए आपको जैन हस्तलिखित पुस्तकों के पन्नों को पलटना पड़ेगा, न ऐसे किसी देवता की झाँकी करनी पड़ेगी, जिसके चेहरे की अपेक्षा कहीं अधिक बड़े आकार की आँखें ऊपर से चिपका दी गई हैं। सचमुच जीते जागते, चलते-फिरते, मनुष्य में ऊपर से बड़ी आँख का चिपकाया जाना असम्भव है, लेकिन असम्भव बात मीनाक्षी के लिये सम्भव हो गई है।.........

"मीनाक्षी के साथ भी २०वीं शताब्दी तोताचश्मी, अर्थात् उन्हें प्रेमवंचिता करे, यह सरासर अन्याय है। ऐसी अनमोल आँखों का ग्राहक न पैदा हो, इससे बढ़कर पुरुष की कृतघ्नता और क्या हो सकती है? क्या राजकुल में किसी भी कवि-हृदय या कविता-पारखी राजकुमार को पैदा करने की शक्ति नहीं है? यदि एक-एक दोहे और एक-एक श्लोक पर पुराने राजा लाखों अशर्फियाँ देते थे, उनके आधा राजपाट बकसने की भी बात सुनी जाती है, तो मीनाक्षी की सचमुच मीन जैसी—मीन में भी सिंघी, रोहू या चिल्हवा जैसी साधारण मछलियाँ नहीं, बल्कि ठीक शफरी जैसी आँखों पर मरने वाले किसी को पैदा न करके ब्रह्मा, सचमुच ही तूने अपने को पाषाण हृदय साबित किया।....... .....और यदि कोई सीखी-समझी लोडी मीनाक्षी की आँखों की प्रशंसा मे बिहारी के कुछ दोहों को उद्धृत करती, तो उस पर झूठ बोलने का इलजाम भी लगाया नहीं जा सकता था।.........।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में लेखक का उद्देश्य, मीनाक्षी की आँखों की विशालता बताना है। इस गुण का संकेतमात्र पर्याप्त हो सकता था, किन्तु राहुल जी ने आँखों का विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया है। आँखों की विशालता एवं सुन्दरता का वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों की सहायता से अधिक हृदयग्राही एवं मार्मिक बनाया जा सकता था। 'इतनी बड़ी आँखें देखने के लिए आपको जैन हस्तलिखित पुस्तकों के पन्नों को उलटना पड़ेगा', तथा 'क्या राजकुल में किसी भी कवि-हृदय या कविता-पारखी राजकुमार को पैदा करने की शक्ति नहीं है?'—आदि वाक्यों द्वारा राहुल जी ने आँखों का जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है उक्त उद्धरण में वह वर्णन मात्र बनकर रह गया है। चित्र में मार्मिकता लाने के लिये आवश्यक है कि लेखक, पात्र के स्वरूप को पूर्णतया हृदयंगम कर ले और रूप को संक्षेप में, प्रभावशाली शब्दों द्वारा पाठकों तक पहुँचाये ताकि उनकी कल्पना उत्तेजित होकर उस रूप को ग्रहण कर ले। आँखों के उक्त चित्र में गहराई और सूक्ष्मता की अपेक्षा व्यापकता एवं स्थूलता का तत्व अधिक है। इसमें पाठक के अनुभूति पक्ष को छूने की क्षमता नहीं है। उद्धरण के सभी वाक्य लम्बे हैं। 'यदि एक-एक दोहे और एक-एक श्लोक पर पुराने राजा

---

[1] मीनाक्षी (ब० मधु०), पृ० १२३-१२६

लाखों अशर्फियाँ देते थे,............' वाक्य पुस्तक की पाँच पंक्तियों में है। वाक्यों में शब्दों की अनावश्यक बहुलता के कारण साधारण पाठकों को सार-ग्रहण करने में कठिनाई होती है। 'यदि एक-एक दोहे और एक-एक श्लोक पर पुराने राजा लाखों अशर्फियां देते थे.........' वाक्य अति बोझिल है और इसके भावों में अस्पष्टता है। आँखों के चित्रण में, परिगणनशैली का आभास है। आंखों की विशालता की चर्चा के प्रसंग सिन्धी, रोहू, चिलहवा और शफरी जैसी मछलियों की आँखों की चर्चा की गई है।

(ग) **वातावरण-चित्र**—राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में वातावरण सम्बन्धी अति विस्तृत चित्र प्रस्तुत किये हैं। सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के वर्णन को कथानक का अंग न बनाकर वे उसका पृथक चित्रण करते हैं। ऐसे स्थलों पर कथा-प्रवाह अवरुद्ध और शैली शिथिल हो जाती है। उदाहरण स्वरूप नरेन्द्रयश ('विस्मृत यात्री' उपन्यास) अपने परिवार के व्यक्तियों का परिचय देते समय, उद्यान की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन करता है। वह चार पृष्ठों में फैला हुआ है।[1] यहाँ उसका कुछ अंश इस प्रकार है। राजनीतिक परिस्थिति की चर्चा करते हुये नरेन्द्र यह कहता है—"हमारे बहुत से पहाड़ी लोग तो बल्कि यह जानते ही नहीं, कि मिहिरकुल कौन है, तोरमान कौन था, या दुनिया में और दूसरे कौन-कौन राजा हैं। उद्यान का राजा ही हमारे लिये सब कुछ है। हम उद्यान-राजधानी में तथागत की जयन्ती के उत्सव में जाते और राजा-रानी को भक्ति-भाव से भगवान की पूजा का तथा भिक्षु-संघ को आहार-वस्त्र देते देखते, हमें वही सब कुछ मालूम होता। राजा के पास प्रतिष्ठित आसन पर बैठे एक सैनिक सामन्त के बारे में किसी ने बतलाया, तभी मुझे पहले पहल मालूम हुआ, कि हमारे राजा के भी ऊपर मिहिरकुल है, जो कश्मीर में अपनी राजधानी में रहता है, जिसकी मुद्रा हमारे यहाँ व्यवहार में आती है और जिसके सामन्त-प्रतिनिधि की आज्ञा हमारे राजा को भी शिरोधार्य माननी पड़ती है।"[2] प्रस्तुत उद्धरण में उद्यान की राजनीतिक परिस्थिति के चित्रण को कथानक के अंग के रूप में प्रस्तुत न कर उसका अलग से चित्रण हुआ है। कथानक से सम्बद्ध न होने के कारण, उक्त चित्रण थोपा हुआ सा लगता है। इसके कथानक की गति में अवरोध तथा शैली में शिथिलता आ गई है। 'राजा के पास प्रतिष्ठित आसन पर बैठे एक सैनिक-सामन्त के बारे में किसी ने बतलाया, तभी मुझे पहले पहल मालूम हुआ, कि हमारे राजा के भी ऊपर मिहिर-कुल है, जो कश्मीर में अपनी राजधानी में रहता है... .....' वाक्य लम्बा है और बोझिल है। वर्णन सरस नहीं है।

---

[1] विस्मृत यात्री, पृ० ९-१२

[2] विस्मृत यात्री, पृ० १२

राहुल जी ने अपनी कहानियों में भी वातावरण का चित्रण कथानक को रोक कर अलग से किया है। असुरों के नगर पुष्कलावती ('पुरुधान' कहानी—वोल्गा से गंगा) की शोभा एवं आर्यों तथा असुरों की सभ्यता का वर्णन चार पृष्ठों में किया गया है।[1] असुरों के नगर पुष्कलावती की शोभा के सम्बन्ध में लिखा गया है कि पुष्कलावती स्वात नदी के तट पर स्थित है। असुरों का राजा पुष्कलावती से दूर सिन्धु तट के किसी नगर में रहता है। पुष्कलावती का स्थानीय अफसर नाटा, मोटा, भारी और आलसी है, सुरा के मारे उसकी मोटी पपनियाँ सदा मुँदी रहती हैं। आर्य पुष्कलावती की सुन्दरता को स्वीकार करते हैं किन्तु उन्हें अपने नगर मंगलपुर की याद आती रहती है। उनका विचार है कि असुरों का हाथ लगने से सभी चीजें कलुषित हो गई हैं। आर्य अपने को असुरों से अधिक बलवान और सभ्य मानते हैं। असुरों के राजा एवं सामन्तों के जीवन का एक मात्र उद्देश्य भोग-विलास है।

उक्त वातावरण चित्रण कथानक से स्वतन्त्र है। यह कथानक के विकास अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण में किसी प्रकार सहायक नहीं है। "किन्हीं-किन्हीं असुर तरुणियों के सौन्दर्य को नाक, केश, कद की शिकायत रखते थे—वे मानने के लिये तैयार थे, किन्तु यह कभी स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, कि देवदारों से आच्छादित पर्वत-मेखला के भीतर काष्ट की चित्र-विचित्र अट्टालिकाओं से सुसज्जित, स्वच्छ गृहपंक्तियों वाला मंगलपुर किसी तरह भी पुष्कलावती से कम है।"[2]—जैसे वाक्य लम्बे हैं ही, शैली में शिथिलता है। वर्णन शुष्क है। यहाँ सांकेतिक एवं सजीव चित्रण के स्थान पर स्थूल एवं तथ्यात्मक कथन मात्र है। वातावरण चित्रण, चित्रण न रह कर वर्णनात्मक निबन्ध बन गया है। सब कुछ बता देने की प्रवृत्ति के कारण राहुल जी ने पाठकों की कल्पना के लिये शेप कुछ नहीं छोड़ा है। तथ्यों का अभिधात्मक रूप में वर्णन मात्र कर दिया गया है।

(घ) भावात्मक चित्र—घटनाओं, पात्रों एवं वातावरण सम्बन्धी चित्रों में, वर्णन प्रधानता के कारण, राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों में भावात्मक चित्र बहुत कम हैं। उनके भावात्मक चित्रों में मार्मिकता की अपेक्षा वर्णन की प्रधानता है। स्थूल वर्णन के कारण भावात्मक स्थलों में राहुल जी की शैली, मर्मस्पर्शी नहीं बन सकी है। भावात्मक चित्र अनुभूति-प्रधान नहीं हैं। उनमें पाठकों के अनुभूति-तत्व को स्पर्श करने की क्षमता नहीं है। उदाहरणस्वरूप, प्रभा के प्राणोत्सर्ग से दुःखित अश्वघोष ('प्रभा' कहानी—वोल्गा से गंगा) की दशा से सम्बद्ध भावात्मक चित्र प्रस्तुत है—

'कई बार आँखों से आँसुओं को पोंछकर अश्वघोष ने पत्र को समाप्त किया। उसके बाद पत्र उसके हाथ से गिर गया। वह खुद चारपाई पर बैठ गया। उसका

---

[1] पुरुधान (वोल्गा से गंगा), पृ० ७५-७८

[2] वही, पृ० ७६

हृदय सुन्न हो रहा था। हृदय की गति के रुकने की वह तन्मय हो प्रतीक्षा कर रहा था। वह मिट्टी की मूर्ति की भाँति शून्य आँखों से ताकता रहा। कितनी ही देर तक इन्तजार करने के बाद प्रभा के पिता-माता आए। उसकी उस अवस्था को देख वह बहुत शंकित हो गये। फिर पास में पड़े पत्र को उन्होंने पढ़ा। मां के मुँह से चीत्कार निकली और वह धरती पर गिर पड़ी। दत्तमित्र नीरव अश्रुधारा बहाने लगे। अश्वघोष वैसी ही टकटकी लगाये देखता रहा। प्रभा के मां-बाप देर तक उसकी यह अवस्था देख चुपचाप चले गये। शाम हुई, रात आई, किन्तु वह वैसे ही बैठा रहा। उसके आँसू सूख गये और हृदय को काठ मार गया था। बड़ी रात गये वह वैसे ही बैठे-बैठे ऊँघकर लेट गया।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में अश्वघोष की दुःखित अवस्था का चित्रण मार्मिक होने के स्थान पर वर्णन प्रधान है। 'हृदय की गति के रुकने की वह तन्मय हो प्रतीक्षा कर रहा था, तथा'.........वह वैसे ही बैठे बैठे ऊँघकर लेट गया'—आदि कथन अनुभूति प्रधान नहीं हैं। इनमें पाठकों को अनुभूति तत्व को छूने की क्षमता का अभाव है। उक्त उद्धरण में अश्वघोष के शोकसन्तप्त हृदय की व्यग्रता एवं उथल-पुथल के चित्रण के स्थान पर उसकी बाह्य चेष्टाओं—टकटकी लगाकर देखना, आँसुओं का सूखना, बैठे बैठे ऊँघकर लेटना—का व्यौरा अधिक है। यहाँ काल के बीतने और क्रियाओं का सविस्तार वर्णन है। शोक की भावना और उससे ग्रस्त अश्वघोष की अनुभूतियों के अंकन का प्रयत्न नहीं है। वर्णन-चित्र का प्रभाव छितर गया है, उसमें तीव्रता नहीं आ पाई है। लेखक पाठकों के मन में शोक-सन्तप्त अश्वघोष के प्रति सहानुभूति जाग्रत नहीं कर पाया है।

(ङ) **व्यंग्यात्मक चित्र**—राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों में सामाजिक तथा राजनीतिक कुरीतियों के व्यंग्यात्मक चित्र पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं किन्तु उनमें व्यंग्य की अपेक्षा अभिधात्मक वर्णन परबल है। व्यंग्य में चुस्ती और तीखापन नही है। कुरीतियों की चर्चा करते हुये राहुल जी का ध्यान कुरीतियों के व्यंग्यात्मक चित्रण की अपेक्षा उनके स्वरूप की व्याख्या तथा उनके समाज पर प्रभाव की ओर अधिक रहा है। अन्तर्वर्गीय विवाह सम्बन्धों के विषय में, लोगों के संकीर्ण विचारों की आलोचना करते हुये वे लिखते हैं—'अवश्य आनेवाला ज़माना आयेगा लेकिन कब आयेगा ?' उस वक्त आने पर क्या हुआ 'जब चिड़ियाँ चुग गई खेत', 'का वर्षा जब कृषी सुखाने।' मीनाक्षी के लिये उससे क्या आशा हो सकती है ? आज तो उसका क्षेत्र नंगे हों या भूखे, सामन्तों की श्रेणी तक ही सीमित है। सेठों और नौकरशाहों के विस्तृत क्षेत्र तक आधुनिकतम होते भी वह अपने पैरों को नहीं रख सकती। वह मन में सिर्फ यही ख्याल रख सकती है, कि मेरी श्रेणी की दूसरी तरुणियाँ कदम आगे बढ़ाकर उस युग को जल्दी लायें। अपने को आगे बढ़ाने की हिम्मत न रखकर वह अपनी आधुनिकता पर बट्टा लगा रही है। इसमें सन्देह

---

[1] प्रभा (वोल्गा से गंगा), पृ० २०८-२०९

नहीं। मीनाक्षी की इस दयनीय और दुविधा भरी स्थिति को देखकर कलिम्पोंग-जेल के वार्डर बलिया जिले के तिवारी याद आते हैं जो ५० के करीब पहुँच रहे थे और अब तक कुँवारे ही थे। उन्हें आशा नहीं रह गई थी, कि ब्याह कभी भी हो सकेगा। बड़े दयनीय स्वर में बेचारे कहते थे 'आखिर सगैया (विधवा-विवाह) होई, लेकिन... तिवारी के मुआ के। अगर तिवारी जी से कहा जाता, कि आप ही क्यों न किसी ब्राह्मणी बालविधवा का हाथ पकड़ते, तो उन्हें भी मीनाक्षी की तरह ही आगे कदम बढ़ाने में डर लगता। वह चाहते थे, दूसरे पहल करके रास्ता बनायें, तब मैं उस पर कदम रक्खूँगा।"[1]

इस उद्धरण में राहुल जी का उद्देश्य समाज में प्रचलित विवाह सम्बन्धी कुप्रथाओं पर व्यंग्य करना है। इस लक्ष्य से उन्होंने मीनाक्षी और तिवारी जी के दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। मीनाक्षी सामन्त वर्ग की अविवाहित तरुणी है। उस के विचार संकीर्ण हैं। उसमें साहस नहीं है कि वह अपने सामन्त वर्ग से इतर किसी वर्ग से अपने लिये उपयुक्त वर चुन सके। वह चाहती है कि इस विषय में पहल दूसरों की ओर से हो। दूसरा उदाहरण तिवारी जी का है। उनकी आयु पचास वर्ष है। विवाह न हो सकने के कारण वे निराश हैं। वे बालविधवा से विवाह करने को तत्पर हैं किन्तु उन्हें समाज की कटु आलोचनाओं का डर है। वे चाहते हैं कि पहले अन्य लोग ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करें। इन दोनों उदाहरणों में व्यंग्य की अपेक्षा कुरीतियों का वर्णन अधिक है। 'जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत' तथा 'का वर्षा जब कृषी सुखाने'—लोकोक्तियों के कारण वर्णन में तीखापन है। शेष उद्धरण कथन मात्र है। कुरीतियों की सोदाहरण व्याख्या के कारण व्यंग्य मर्मस्पर्शी होने की अपेक्षा चित्रात्मक अधिक हो गया है।

शैली में शिथिलता

लेखन-शैली में प्रवाह के लिये यह वांछनीय है कि वाक्य संक्षिप्त हों, उनमें अनावश्यक शब्द न हों। वाक्यों की योजना में प्रवाह हो, वे स्वाभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध हों। घटना, पात्र, तथा वातावरण के चित्रण सतर्कता एवं प्रयास के अभाव के कारण राहुल जी की शैली प्रायः शिथिल है। कथा-प्रवाह ठहरा हुआ जान पड़ता है। विषय की पुनरावृत्ति के कारण भावाभिव्यक्ति में शिथिलता आ गई है। इस प्रसंग में राहुल जी की 'फैशन' (मेम साहब, कहानी—ब० मधु०) सम्बन्धी निम्नांकित टिप्पणी प्रस्तुत है—

"किसी फैशन को अन्धाधुन्ध स्वीकार करना खतरे की बात है। यूरोप में बहुत पहले फैशन की दूकानें और बाजार खुल गये थे। वहाँ डाक्टरों की तरह फैशन विशेषज्ञ एक-एक व्यक्ति को देखकर उसके रूप-रंग, मोटापन, पतलापन आदि के अनुसार फैशन का नुस्खा लिखते थे। यह बहुत मँहगा नुस्खा था, इसमें शक नहीं,

---

[1] मीनाक्षी (ब० मधु०), पृष्ठ १३१

जिससे आजकल का सिनेमा का नुस्खा कहीं सस्ता है : देशी विदेशी सिनेमा—तारिकाओं की वेश-भूषा, चलन-मटकन को देखो और आप भी उसका अनुकरण करने लगो। ऐसा अन्धानुकरण सौन्दर्य बढ़ाने का कारण न होकर कितनी ही बार उसको घटाने का काम देता है। लेकिन फैशन में मस्त महिलाओं को इसकी क्या परवाह ? हर एक महिला अपने को स्वयं सौन्दर्यपारखी मानती है। आखिर लम्बे शीशे में वह अपने को पूरी तौर से देखते हुए सजाती भी तो है, अगर कोई नुक्स हो तो क्या वह उसे नहीं समझ सकती ? 'आप-रुचि भोजन पर-रुचि सिंगार' कहने वालों ने झक मारा है। आज तो पररुचि भोजन हो सकता है, किन्तु सिंगार आप रुचि ही होनी चाहिये।'[1] कहानी की मुख्य स्त्री-पात्र मेम साहब की फैशन में विशेष रुचि है। वह अपने बनाव शृंगार पर अति उदारता से व्यय करती है। कथानक को यहीं रोककर राहुल जी ने फैशन पर उपर्युक्त उद्धरण लिखा है। प्रत्यक्षरूप से इस उद्धरण का कथानक से सम्बन्ध नहीं है। विवरण मोह के कारण उन्होंने फैशन पर निबन्धात्मक टिप्पणी लिख दी है। इस स्थल पर कथा प्रवाह अवरुद्ध है। 'इसमें शक नहीं···लेकिन फैशन में मस्त महिलाओं को इसकी क्या परवाह ?···अगर कोई नुक्स हो तो क्या वह उसको नहीं समझ सकती ?'—जैसे वाक्य एवं वाक्यांश उद्धरण में अनावश्यक प्रतीत होते हैं। शैली को शिथिलता से बचाने के लिये लेखक की ओर से सतर्कता एवं प्रयास से काम नहीं लिया गया है।

लम्बे वाक्यों में प्रवाह के अभाव के कारण राहुल जी की लेखन-शैली शिथिल बन गई है। वर्णनात्मक स्थलो पर राहुल जी के वाक्य प्रायः लम्बे हैं। अनावश्यक शब्दों के समावेश के कारण वाक्य-गठन शिथिल है। लम्बे वाक्यों के वाक्यांश प्रायः परस्पर असम्बद्ध हैं। कहीं-कहीं वाक्य अंग्रेजी वाक्यों का अनुवाद-सा लगते हैं। उदाहरण निमित्त, 'बूढ़े लाला' (ब० मधु) नामक कहानी से एक ऐसा वाक्य प्रस्तुत है। अंग्रेजों के भारत से जाने का प्रभाव मधुपुरी की किराये पर चढ़ने वाली कोठियों पर भी पड़ा है। इसी प्रसंग का एक वाक्य इस प्रकार है—

"यदि मार्टिन होटल की तरह वह भी मधुपुरी के किसी कोने में खड़े होता, तो आज से दस वर्ष पहले तक तो वह जरूर ही लकोदक रहता, चाहे दूसरे महायुद्ध के बाद के इन पिछले वर्षों में खासकर अंग्रेजों के चले जाने के बाद, मधुपुरी के ऊपर जो साढ़े-साती शनि-दृष्टि पड़ रही है, उसका शिकार हुए बिना वह भी न रहता।"[2] यह वाक्य अत्यधिक लम्बा है। इसमें छः वाक्यांश हैं। वाक्यांश स्वभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। वाक्य के सुगठित न होने के कारण इसका भाव अस्पष्ट है। 'लको-दक' शब्द अप्रचलित है और इसका अर्थ अस्पष्ट है। यदि यह वाक्य इस प्रकार होता—'मार्टिन होटल की भाँति मधुपुरी में स्थित होने पर यह (बंगला) दस

---

१ मेम साहब (ब० मधु०), पृ० ४४

२ बूढ़े लाला, (ब० मधु०), पृ० २

वर्ष पूर्व तक वैभवयुक्त रहता किन्तु अंग्रेजों के पश्चात् इसकी स्थिति अवश्य गिरती।' तो कथानक में कहीं अधिक खपता। उक्त वाक्य को इतना लम्बा रखने के स्थान पर छोटे छोटे दो वाक्यों में रखा जाता तो वाक्ययोजना में प्रवाह आ सकता था।

शिथिल वाक्य का एक अन्य उदाहरण लीजिये। प्रणय-प्रसंग में देवराज अपनी प्रेमिका जैनी ('जीने के लिये' उपन्यास) को कहता है—"मैं समझता हूँ, हम दोनों एक दूसरे के पूरक होंगे, लेकिन प्रेम के नाम से जो अंधेर खाता मचा हुआ है, जितने अरमान और आदर्श प्रेम की वेदी पर बलि चढ़े हैं, जितने होनहार तरुण-तरुणियाँ अपने पथ से विचलित हुई हैं, क्रान्ति की आग में तपे जितने वज्र हृदय प्रेम के फूलों के वाण से चूर्ण हो गये हैं, उनको देखते हुए मेरी धारणा थी—धारणा क्या वह प्रतिज्ञा की हद तक पहुँच चुकी थी—कि मैं किसी से प्रेम न करूँगा।"[१] प्रस्तुत वाक्य विशेष दीर्घ है। 'मैं समझता हूँ, हम दोनों एक दूसरे के पूरक होंगे'—वाक्यांश स्वत: एक वाक्य है किन्तु राहुल जी ने इसमें सात वाक्यांश और जोड़ दिये हैं। इस उद्धरण के 'क्रान्ति की आग में तपे जितने वज्रहृदय प्रेम के फूलों के वाण से चूर्ण-चूर्ण हो गये हैं,' तथा 'धारणा क्या वह प्रतिज्ञा की हद तक पहुँच चुकी थी'—अनावश्यक वाक्यांशों के कारण वाक्य-गठन शिथिल हो गया है। यहाँ वाक्य के अर्थ में अस्पष्टता आगई है तथा प्रणय प्रसंग के कथन में भावना की अपेक्षा नाटकीयता अधिक है। कथन में भाषण का-सा ओज आ गया है।

विशेषणों का प्रचुर प्रयोग

राहुल जी ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेषणों का प्रचुर प्रयोग किया है। कहीं कहीं उन्होंने विशेषणों की इतनी भरमार की है कि वाक्य बोझिल बन गये हैं। ईरान सम्राट् शाह कवात् की पत्नी के नखशिख ('मधुर स्वप्न' उपन्यास) का वर्णन करते हुये राहुल जी ने एक वाक्य में अधिकाधिक विशेषणों का प्रयोग किया है। वाक्य इस प्रकार है—"क्षीण कटि, उन्नत वक्ष, शंख-सदृश ग्रीवा, तनु-अंग, तनु-अंगुली, हिमश्वेत-शरीर-वर्ण, आरक्त कपोल, बादाम समान लोचन, कोमल सुवर्णरेखा सम भ्रूलता, दीर्घ पद्मनेत्र, श्वेत तथा समान दन्त, कृष्णाभरक्त-दीर्घ-केश जूड़ा के रूप में निबद्ध तथा सामने द्विधा विभक्त था।"[२] प्रस्तुत वाक्य में विभिन्न विशेष्यों के लिए क्षीण, उन्नत, तनु, आरक्त, कोमल, दीर्घ, श्वेत, समान तथा कृष्णाभरक्त विशेषण एक साथ प्रयुक्त किये गये हैं। विशेषणों का चयन, सतर्कता से किया गया है, किन्तु उनका सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सका है। अत्यधिक विशेषणों के प्रयोग से शरीर के अवयवों का सौन्दर्य दब गया है। सौन्दर्य का चित्र प्रभावशाली नही बन सका है।

विशेषणों के प्रचुर प्रयोग का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है। समुद्रगुप्त के अन्त:पुर की नारियों के सौन्दर्य (जय यौधेय) का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

---

१ जीने के लिये, पृ० १६१

२ मधुर स्वप्न, पृ० १२

'यौधेय राजा के अन्तःपुर में हजार से ऊपर नारियाँ थीं, और एक से एक सुन्दर—कितनी ही स्वर्णकेशी गोरी यवनियाँ, कितनी ही नीलकेशी अरुण-मिश्रित-धवलवर्णा पारसीकियाँ, कितनी ही गान्धारियाँ, सौराष्ट्रियाँ, पार्वतियाँ आदि मौजूद थीं तो भी समुद्रगुप्त के दिल में सबसे अधिक स्नेह और उससे भी अधिक सम्मान अज्जुका के ही प्रति था।"[1] प्रस्तुत उद्धरण में, नारियों के सौन्दर्य वर्णन में विविध विशेषणों का प्रयोग किया गया है। 'यवनियाँ' विशेष्य के 'स्वर्णकेशी' तथा 'गोरी' और 'पारसीकियाँ' विशेष्य के 'नीलकेशी' तथा 'अरुण-मिश्रित-धवल-वर्णा' विशेषण प्रयुक्त हुये हैं। विभिन्न विशेषणों के प्रयोग से विशेष्यों के सौन्दर्य का चमत्कारपूर्ण चित्र खींचने का प्रयत्न किया गया है।

उपमाओं का प्रयोग

वर्णन को सचमत्कार बनाने के लिये, अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। राहुल जी ने वर्णनों को सजीव बनाने के लिये, उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग किया है। उन्होंने जिन उपमानों का समावेश किया है वे प्रायः कम प्रयुक्त होते हैं। उपमान मार्मिक होने की अपेक्षा स्थूल अधिक हैं। इसीलिए विशेष प्रभावशाली नहीं बन सके हैं।

"क्षीर जैसे श्वेत श्मश्रु (दाढ़ी) वाले पुरोहित अब तक मन्त्रणा में भाग नहीं ले रहे थे, (पृ० ८, दिवोदास) —वाक्य में श्मश्रु की उपमा क्षीर से की गई है। श्वेतता के वर्णन में प्रायः हिम को उपमान बनाया जाता है। 'क्षीर' का उपमान रूप में प्रयोग अप्रचलित एवं कम प्रभावशाली है।

"जैसे लोहू और पीब बहते-बहते कोढ़ी का घाव सुन्न पड़ जाता है, वैसे ही शैशव से घात-प्रत्याघात सहते-सहते राजबली का दिल सुन्न हो गया था।" (पृ० ८६, राजबली—सतमी के बच्चे) 'कोढ़ी के सुन्न घाव' का उपमान रूप में प्रयोग घृणित है।

"कहते कहते सुरैया की आँखों में नर्गिस में शबनम् की तरह आँसू भर आये।" (पृष्ठ २९८, सुरैया—वोल्गा से गंगा) 'नर्गिस में शबनम्' का हिन्दी साहित्य में उपमान रूप में प्रयोग अप्रचलित है।

कहीं कहीं राहुल जी ने शब्दों को उपमान बनाने की अपेक्षा, वाक्य के पूर्वार्द्ध को उपमेय और उत्तरार्द्ध को उपमान बनाया है। उदाहरणार्थ यह वाक्य प्रस्तुत है—"नवान-दुस्त के दिल में अकस्मात् न जाने कौन भाव उत्पन्न हुआ कि उसके मुख से चिन्ता की छाया हटकर उस पर उसी तरह हर्षोल्लास छा गया जिस तरह बादलों से ढके सूर्य की किरणें जरासा छिद्र पाते ही प्रखर प्रकाश फैलाने लगती

---

[1] जय यौधेय, पृ० ९

हैं।"[१] इस वाक्य में 'उस पर उसी तरह हर्षोल्लास छा गया'—वाक्यांश उपमेय और 'जिस तरह बादलों से ढके सूर्य की किरणें जरा सा छिद्र पाते ही प्रखर प्रकाश फैलाने लगती हैं'—वाक्यांश उपमान है।

मुहावरों का प्रयोग

'मुहावरा' अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है—'लाक्षणिक या क्वचित् व्यंग्यार्थ में रूढ़ वाक्य या वाक्यांश का प्रयोग।'[२] मुहावरों के प्रयोग से लेखन-शैली में अर्थ का चमत्कार आ जाता है और भाषा प्रभावमयी बन जाती है। सुगम मुहावरे, भाषा की सरसता को बढ़ाने और उसको सजीव बनाने में सहायक होते हैं। राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में इनका पर्याप्त प्रयोग किया है। कुछ ये हैं—

आँखें चार होना	(पृष्ठ २९५, जीने के लिये)
आग बबूला होना	(पृष्ठ १३०, जीने के लिये)
आग लगना	(पृष्ठ ९५, दिवोदास)
आस्तीन का सांप	(पृष्ठ १९, हाय बुढ़ापा—ब० मधु०)
उल्लू बनाना	(पृष्ठ ३९, कु० दुरंजय—बहुरंगी मधुपुरी)
काई की तरह हटना	(पृष्ठ ११६, जीने के लिये)
कान काटना	(पृष्ठ २३८, ज० यौ०)
काया-पलट करना	(पृष्ठ ११०, दिवोदास)
खेत आना	(पृष्ठ ७१, सिंह से०)
गूलर के फूल	(पृष्ठ ५३, महाप्रभु—ब० मधु०)
जले पर नमक छिड़कना	(पृष्ठ ३६९, सुमेर—वोल्गा से गंगा)
त्यौरी बदलना	(पृष्ठ ३५, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
दाँत खट्टे करना	(पृष्ठ १२८, जीने के लिये)
दूज का चांद	(पृष्ठ ३२४, जीने के लिये)
नाक भौं सिकोड़ना	(पृष्ठ ७४, लिपिस्टिक—ब० मधु०)
पांचो घी में होना	(पृष्ठ २२६, पेड़ बाबा—ब० मधु०)
प्राण हवा होना	(पृष्ठ ३५, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
पेट पर पत्थर बाँधना	(पृष्ठ २७१, जीने के लिये)
बाजी मारना	(पृष्ठ ३९, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
फूटी आँखों न देखना	(पृष्ठ ३०४, मधुर स्वप्न; ३७८, वि० यात्री)
भंडा फोड़ होना	(पृष्ठ ३३०, जीने के लिये)

[१] मधुर स्वप्न, पृ० २०७

[२] वृहत् हिन्दी कोश—सम्पादक-कालिका प्रसाद तथा अन्य, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ १०९५

मरता क्या न करता (पृष्ठ ९५, दिवोदास)
मुट्ठी गर्म करना (पृष्ठ ३५, कु० दुरंजय—ब० मधु०)
युद्ध में काम आना (पृष्ठ १४२, जीने के लिये)
रंग में भंग होना (पृष्ठ २३८, सुलतान—ब० मधु०)
लोहा लेना (पृष्ठ २२६, सिं० से०)
लोहा मानना (पृष्ठ २३८, २४८ मधुर स्वप्न)
हाथ में करना (पृष्ठ १४४, मधुर स्वप्न)
हृदय दो टूक होना (पृष्ठ ३१५, जीने के लिये)

लोकोक्तियों का प्रयोग

मौखिक लोक-साहित्य में लोकोक्तियों का भी वरिष्ठ स्थान है। लोकोक्ति में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इसे ग्रामीण जनता का नीति-शास्त्र कहा जाता है। लोकोक्ति के माध्यम द्वारा, जीवन के सत्य बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त होते हैं। सांसारिक व्यवहार-पटुता तथा सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों मे मिलता है, वैसा अन्यत्र नहीं।[1] कथन को विशेष प्रभावपूर्ण बनाने तथा भाषा में सौन्दर्य उत्पन्न करने के हेतु, राहुल जी ने उपन्यासों एवं कहानियों में लोकोक्तियों का सुन्दर समावेश किया है। हिन्दी लोकोक्तियों के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त की हैं। कहीं कहीं ग्रामीण एवं फारसी लोकोक्तियां भी देखने को मिलती हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) हिन्दी लोकोक्तियाँ—

अब पछताय होत क्या (का) जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत (पृष्ठ २६२, जीने के लिये; १०७ (रायबहादुर—ब० मधु०)
कभी गाड़ी नाव पर तो कभी नाव गाड़ी पर (पृ० ४२, मेम साहब—ब० मधु०)
काला अक्षर भैंस बराबर (पृष्ठ १८७, डोरा—ब० मध०)
दमड़ी की हंडिया गई कुत्ते की जात पहचानी गई (पृष्ठ ३२४, जीने के लिये)
मरता क्या न करता (पृष्ठ ९५, दिवोदास)
सब धान बाईस पसेरी (पृष्ठ ७८, लिप्स्टिक—ब० मधु०)
हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और (पृष्ठ ३२२, जीने के लिये)

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि। ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृ० ६९२-६९३

(ख) संस्कृत लोकोक्तियाँ—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुम न भवति (पृष्ठ १९८—डोरा ब० मधु)

बुभुक्षितः किं न करोति पापम् (पृष्ठ १४७, रूपी—ब० मधु०)

मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना (पृष्ठ २५०, जीने के लिये)

व्यापारे वसति लक्ष्मीः (पृष्ठ १२७, मीनाक्षी—ब० मधु०)

(ग) ग्रामीण लोकोक्तियाँ—

पूस जाड़ा न माघ जाड़ा, जब्बे हवा तब्बे जाड़ा (पृष्ठ २१६, पेड़ बाब)—ब० मधु०)

घोखन्त विद्या खनन्त पानी (पृष्ठ ११०, गुरुजी—ब० मधु०)

घर फूटा गंवार लुटा (पृष्ठ २८४, जीने के लिये)

(घ) फारसी लोकोक्तियाँ —

जर (जर) वरसरे फौलाद (फौलाद निही नर्म शवद्) (पृष्ठ ८६, ठाकुर जी—ब० मधु०)

देर आयद् दुरुस्त आयद् (पृष्ठ २५७, चंपो—ब० मधु०)

सूक्तियों का प्रयोग

मुहावरों तथा लोकोक्तियों की भाँति सूक्तियों का प्रयोग, अर्थ को प्रभावशाली तथा भाषा को चमत्कारपूर्ण बनाने के लक्ष्य से किया जाता है। सूक्तियों के प्रयोग से भाषा में सरसता एवं सजीवता उत्पन्न होती है। मुहावरों से अभिप्राय है लाक्षणिक अथवा क्वचित् व्यंग्यार्थ में रूढ़ वाक्य अथवा वाक्यांश। इनमें जीवन के सत्य बड़ी कुशलता से प्रकट होते हैं। इन दोनों में अन्तर यह है कि लोकोक्तियों का सम्बन्ध मुख्यतः लोक-जीवन से होता है। इनको ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र कहा जाता है। ये साहित्य की अपेक्षा लोक जीवन के अधिक समीप होती हैं। इनके परिमार्जित रूप को साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। सूक्तियों में साहित्य तथा लोक-अनुभव का सम्मिश्रण होता है। सूक्तियाँ नीतिपरक होती हैं। इनमें कवियों, लेखकों तथा विद्वज्जनों के जीवन-अनुभवों का सार चेतावनी के रूप में अभिव्यक्त होता है। लोकोक्तियों का प्रयोग कथन को अधिक कलात्मक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के उद्देश्य से किया जाता है और सूक्तियों का प्रयोग कथन को नीतिपरक बनाने के लिये किया जाता है। इसी उद्देश्य से, राहुल जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में सूक्तियों का प्रयोग किया है। उन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत की सूक्तियाँ भी प्रयुक्त की हैं। यहाँ उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) हिन्दी सूक्तियाँ

का वर्षा जब कृषी सुखाने (पृष्ठ १३१, मीनाक्षी—ब० मधु०)

तुलसी कर पर कर घरो, कर-तर कर न घरो	(पृष्ठ ७७, लिप्स्टिक—ब० मधु०)
जिमि दसनन में जीभ बेचारी	(पृष्ठ २४१, जीने के लिये)
बीती ताहि बिसारि दे	(पृष्ठ १०३, राय बहादुर—ब० मधु०; ३३४, जीने के लिये)

(ख) संस्कृत सूक्तियाँ

ऋणं कृत्वा घृतम् पिवेत्	(पृष्ठ २२१, पेड़ बाबा—ब० मधु०)
द्रव्येण सर्वे वशः	(पृष्ठ ८५, ठाकुर जी—ब० मधु०)
सलज्जा गणिका नष्टा	(पृष्ठ १५१, रूपी—ब० मधु०)
सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति	(पृष्ठ ९६, रायबहादुर—ब० मधु०)

निष्कर्ष

उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की लेखन-शैली, मुख्यतः वर्णनात्मक है। घटनाओं, पात्रों तथा वातावरण के चित्रण में, उनके वर्णन सूक्ष्म एवं संक्षिप्त होने की अपेक्षा स्थूल तथा विस्तृत होते हैं। वे किसी बात को सांकेतिक रूप में न कहकर, उसका पूरा ब्योरा प्रस्तुत करते हैं। उनके वातावरण विषयक चित्र प्रायः ऐसे ही हैं। कथा-प्रवाह को रोककर, राहुल जी वातावरण के दीर्घ चित्र सँजोने में जुट जाते हैं। भावात्मक एवं व्यंग्यात्मक चित्रों में, उन्होंने व्यंजना की अपेक्षा अभिधा से काम लिया है। ऐसे स्थलों पर सांकेतिकता के स्थान पर इतिवृत्त अधिक है। वर्णन की दीर्घता के कारण राहुल जी की शैली प्रायः शिथिल है। वर्णनात्मक स्थलों पर वाक्य प्रायः लम्बे हैं। अधिक लम्बे वाक्यों में वाक्यांश परस्पर असम्बद्ध हैं। शैली में जैसी चुस्ती एवं सजीवता होनी चाहिये, वैसी राहुल जी के कथा-साहित्य में प्रायः कम देखने को मिलती है।

भाषा में चमत्कार तथा अर्थ में प्रभाव उत्पन्न करने के लिये, राहुल जी ने उपमाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों का प्रयोग किया है। हिन्दी लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के अतिरिक्त संस्कृत लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ भी व्यवहृत हुई हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेषणों का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

सभी उपन्यासों एवं कहानियों में राहुल जी की लेखनशैली, प्रायः एक-सी रही है। सतमी के बच्चे (रचनाकाल सन् १९३५ ई०) कहानी संग्रह राहुल जी की प्रथम कथा कृति है और दिवोदास (रचनाकाल सन् १९६१ ई०) उपन्यास अन्तिम। इन दोनों कृतियों तथा इस अवधि के बीच लिखी गई अन्य कथा-कृतियों में राहुल जी की शैली वर्णन प्रधान है। दिवोदास उपन्यास को छोड़, शेष सभी कथा-कृतियों की शैली, वर्णन प्रधान है।

राहुल जी का जीवन अति व्यस्त था। राजनीतिक आन्दोलनों तथा देश-विदेश की यात्राओं में व्यस्त रहने के कारण, उन्हें अपनी रचनाओं के कलापक्ष की

ओर ध्यान देने का पर्याप्त अवसर ही नहीं मिलता था। उनका, प्रायः यह नियम था कि रात्रि को सोने से पूर्व वे सोलह पृष्ठों की सामग्री, बोलकर किसी से लिखाया करते थे।[1] वे कलापक्ष की ओर ध्यान देने की अपेक्षा, विषय-प्रतिपादन पर अधिक ध्यान देते थे। उन्हें अपनी रचनाओं को दोहराने तक का समय न मिलता था। कथा-कृतियों में ग्रामीण शब्दों, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के मिलने का कारण यह है कि वे साधारण पाठकों के लिए की गई रचनाओं की भाषा में कृत्रिमता को अच्छा नहीं समझते थे। ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध रचनाओं को वे अधिकाधिक स्वाभाविक बनाना चाहते थे।[2] 'सतमी के बच्चे' कहानी-संग्रह तथा 'जीने के लिये' उपन्यास में घटनाओं का सम्बन्ध जहाँ ग्रामीण वातावरण से है। भाषा स्वाभाविक बोलचाल की है। ग्रामीण मुहावरों एवं लोकोक्तियों का आवश्यकतानुकूल प्रयोग किया गया है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियों के पात्रों का चयन, राहुल जी ने मधुपुरी के सामान्य जीवन से किया है। इस संग्रह की कहानियों में उनका उद्देश्य पाठकों को मधुपुरी के सामान्य जीवन से परिचित करना है। इसीलिए उन्होंने इस संग्रह की भाषा को जन-साधारण के जीवन के समीप रखने का प्रयत्न किया है।

राहुल जी ने जहाँ सुशिक्षित पात्रों द्वारा गम्भीर विषयों का प्रतिपादन कराया है वहाँ, वे अपनी कथा-कृतियों के शैली-पक्ष की ओर सतर्क रहे हैं। सिंह सेनापति, जय यौधेय, मधुर स्वप्न, विस्मृत यात्री एवं वोल्गा से गंगा कथा-कृतियों की भाषा परिमार्जित एवं संयत है। अन्तिम कथाकृति 'दिवोदास' में राहुल जी की लेखनशैली का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। इसमें घटनाओं, पात्रों एवं वातावरण के चित्रण में इतिवृत्ति वर्णन के स्थान पर सांकेतिकता का तत्त्व अधिक मिलता है। उपन्यास के वाक्यों में ओज एवं सजीवता है, वाक्य सुगठित हैं।

---

१ सुप्रसिद्ध लेखक डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के व्यक्तिगत संस्मरण के आधार पर। इन पंक्तियों के लेखक ने यह तथ्य-चयन कमलेश जी से वार्तालाप द्वारा प्राप्त किया।

२ 'आज' (दैनिक पत्र) वाराणसी के राहुल-स्मृति अंक, दिनांक २८ अप्रैल, १९६३ ई० में प्रकाशित डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के लेख के आधार पर।

सप्तम अध्याय

उपसंहार : राहुल जी का कथा-साहित्य

कथाकार, उपन्यास एवं कहानी-कला द्वारा मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है। वह समाज की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण मात्र नहीं करता, प्रत्युत जीवन-सत्य का उद्घाटन भी करता है। अपने आदर्श समाज की स्थापना के निमित्त वह एक मार्ग प्रशस्त करता है। राहुल जी मानवतावादी कलाकार हैं। उनका साहित्य-सृजन सोद्देश्य एव आदर्शमूलक है। उनकी कला, कला के लिये नहीं, वरन् जीवन के लिये है—साम्यवादी जीवन की स्थापना के लिये है। उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम द्वारा, उन्होंने जीवन के विविध पक्षों का गहन चिन्तन किया है। गत अध्यायों में, राहुल जी के उपन्यासों एवं कहानियों का कथा-तत्वों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। यहाँ, उपसंहार रूप में, उनकी उपन्यास एवं कहानी-कला का सार प्रस्तुत है।

राहुल जी की उपन्यास-कला

उपन्यासकार मानव के वैयक्तिक अस्तित्व तथा उसके सामाजिक जीवन को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करता है। उपन्यास के माध्यम द्वारा राहुल जी ने विभिन्न कालों एवं देशों की सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यक्तियों का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों के कथानकों में विविधता है किन्तु समान बीजों के आधार पर विकसित प्रासंगिक कथाओं को भी उपन्यासों में स्थान मिला है। प्रत्येक उपन्यास में, नायक अथवा किसी मुख्य पात्र के यात्रा, वीरता, साहस तथा प्रणय-विषयक प्रसंग उपलब्ध हैं। उपन्यासों के कथानक सादा हैं। वे प्रासंगिक एवं उप-कथाओं के भार से आक्रान्त नहीं हैं। विवरण-मोह के कारण, राहुल जी ने, उपन्यासों में कतिपय दीर्घ प्रसंगों का समावेश किया है। इनसे कथा का प्रवाह शिथिल हो गया है। उपन्यासों में प्राय: कथा पूर्णतया विकसित होकर चरम सीमा के पश्चात् विश्राम लेती है किन्तु राहुल जी के उपन्यासों में ऐसा नहीं हुआ है।

ऐतिहासिक सम्राटों और कतिपय अन्य पात्रों को छोड़, राहुल जी के शेष सभी पात्र कल्पित हैं। अपनी कुशल कल्पना शक्ति एवं विशेष अनुभव के आधार पर राहुल जी ने कल्पना-जन्य पात्रों को सजीव बना दिया है। उनके अधिकांश पात्र राजनीति तथा इतिहास की परिधि तक सीमित हैं। पात्रों के गुणों में विविधता नहीं है। वे एक साँचे में ढले हुए प्रतीत होते हैं। उनके चरित्र प्राय: स्थिर हैं और उनमें आन्तरिक संघर्ष का अभाव है। राहुल जी की दृष्टि, पात्रों के बाह्य चरित्र तक सीमित रही है। चरित्र-चित्रण के लिये उन्होंने विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय दोनों

प्रकार की विधियों को अपनाया है। उनके अधिकांश पात्र सजग हैं और उनकी गति-विधि से घटनाएँ जन्म लेती हैं।

राहुल जी ने उपन्यासों में पात्रों के कथोपकथनों का उपयोग प्रधानतः कथानक और पात्रों के चरित्र-विकास के निमित्त किया है। जहाँ कथोपकथनों का उपयोग लेखक के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिये हुआ है, कथोपकथन प्रायः लम्बे हैं। ऐसे स्थलों पर कथानक और पात्रों की गति स्तब्ध हो गई है। लोकभाषा के स्पर्श से ग्रामीण पात्रों के कथनों में स्वाभाविकता और सजीवता आ गई है। कथोपकथन जहाँ सहज हैं, उनमें गठन है और वे कथानक तथा पात्रों के चरित्र के विकास में सहायक हैं।

राहुल जी के उपन्यासों का सम्बन्ध अनेक देशों तथा ऐतिहासिक युगों से है। उनके उपन्यासों से प्राचीन एवं अर्वाचीन भारत, सिंहल, प्राचीन ईरान और चीन की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त होता है। कथा में स्थान तथा काल के वातावरण का विकास प्रायः स्वतंत्र रूप से किया गया है। वातावरण का विशद चित्रण अनेक स्थलों पर कथानक के प्रवाह को रोक कर किया गया है। प्रकृति के चित्रण के अन्तर्गत राहुल जी का ध्यान प्रकृति के रसात्मक चित्रण की अपेक्षा प्रकृति के उपकरणों के परिगणन की ओर अधिक रहा है। उनके प्रकृति-चित्र रसात्मक कम और इतिवृत्तात्मक अधिक हैं।

उपन्यासों में राहुल जी की भाषा के विविध रूप मिलते हैं। उनकी भाषा मुख्यतः सरल हिन्दी है। सरल हिन्दी में उन्होंने हिन्दी तथा फ़ारसी-अरबी के चलते हुये शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार की भाषा को उन्होंने सजाने-सँवारने का प्रायः विशेष प्रयास नहीं किया है। जहाँ उन्होंने ऐसा प्रयास किया है, वहाँ भाषा संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त प्रयुक्त हुई है। संस्कृत के अप्रचलित एवं कठिन शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा कहीं कहीं साधारण पाठकों के लिए दुर्बोध हो गई है। मुसलमान पात्रों की भाषा कहीं कहीं अस्वाभाविक है। उसमें फारसी अरबी के शब्दों के साथ संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है।

उपन्यासों में राहुल जी की लेखन शैली वर्णनप्रधान है। घटना, पात्र एवं वातावरण के चित्रण में सूक्ष्म सांकेतिकता के स्थान पर स्थूल इतिवृत अधिक है। वर्णन प्रधानता तथा लम्बे वाक्यों के कारण राहुल जी की लेखन शैली प्रायः शिथिल सी हो गई है। अभिव्यक्ति में व्यंजना की अपेक्षा अभिधा से अधिक काम लिया गया है। हिन्दी मुहावरों, लोकोक्तियों तथा सूक्तियों के अतिरिक्त संस्कृत लोकोक्तियों एवं सूक्तियों का प्रयोग किया गया है।

राहुल जी ने उपन्यास कला का उपयोग निश्चित उद्देश्यों की अभिव्यक्ति हेतु किया है। उन्होंने उपन्यासों के नायकों एवं मुख्य पात्रों को अपने विचारों का प्रतिनिधि तथा व्याख्याता बनाया है। राहुल जी साम्यवादी समाज की स्थापना के पक्ष में हैं। समाज के नव-निर्माण के निमित्त उसमें व्याप्त सामाजिक एवं आर्थिक

विषमताओं का उन्मूलन, वे अनिवार्य समझते हैं। वे प्रत्येक मानव को सुखी देखना चाहते हैं। राहुल जी अनीश्वरवादी हैं। उनका मत है कि मानव, अपने विकास के लिए ईश्वर पर नहीं, प्रत्युत निज बाहुबल पर विश्वास करे। उन्होंने अपने इस दृष्टिकोण को घटनाओं तथा पात्रों की वार्ता में छितरा दिया है। जीवन-सिद्धान्तों का विशद प्रतिपादन अनेक स्थलों पर कथा-विकास में बाधक बन गया है।

'जीने के लिये' (रचनाकाल सन् १९४० ई०) राहुल जी का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर, सन् १९३९ ई० तक के भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का चित्र है। उपन्यास नायक देवराज के जीवन संघर्ष की घटनाओं से सम्बद्ध है। नायक देवराज में राहुल जी के संघर्षशील व्यक्तित्व का आभास मिलता है। उपन्यास में देश की स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध भारतीय जनता द्वारा किये गये आन्दोलनों का चित्रण है। सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं से रहित साम्यवादी समाज की स्थापना की आवश्यकता का संकेत किया गया है।

'सिंह सेनापति' (रचनाकाल सन् १९४४ ई०) उपन्यास का सम्बन्ध, ईसा पूर्व ५०० के भारत की राजनीतिक घटनाओं से है। उपन्यास की मुख्य-कथा, लिच्छवि-कुमार सिंह के पार्श्वों और मागधों के विरुद्ध युद्ध में पराक्रम तथा वैशाली गणराज्य में सेवाकार्य की है। राहुल जी के व्यक्तित्व पर महात्मा बुद्ध और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों की छाप है। उनका व्यक्तित्व उपन्यास के नायक सिंह के चरित्र में प्रतिमूर्त हुआ है। उपन्यास का उद्देश्य अतीत भारत के जीवन में उन तत्वों को खोजना है, जिनके द्वारा मार्क्सवादी जीवन का समर्थन सम्भव है।

राहुल जी के 'जय यौधेय' (रचनाकाल सन् १९४४ ई०) उपन्यास की मुख्य कथा चतुर्थ शताब्दी ईसवी के यौधेय कुमार जय की यात्राओं, उसके पराक्रम और यौधेयगण के प्रति उसकी सेवाओं से सम्बद्ध है। उपन्यास में साम्राज्यवादी तथा गणतंत्रात्मक शासन-पद्धतियों का संघर्ष दिखाया गया है। यौधेय गणतंत्रीय शासन प्रणाली के गुणों पर प्रकाश डालने के साथ परलोकवाद और राजतंत्र प्रणाली का दोष-दर्शन कराया गया है तथा व्याज से वर्तमानजीवन में मानवमात्र के हित के लिए कार्य-रत रहने का संदेश दिया गया है।

'मधुर स्वप्न' (रचनाकाल सन् १९४९ ई०) की कथा का सम्बन्ध, ईरान सम्राट शाह कवात् की साम्यवादी प्रवृत्ति और उसके जीवन-संघर्ष से है। इस उपन्यास से सन् ४९२ ई० से ५२९ ई० तक की, ईरान प्रदेश की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का परिचय मिलता है। इसका उद्देश्य प्राचीन ईरान के जीवन द्वारा मार्क्सवादी सिद्धान्तों का समर्थन कराना है। मज्दकियों के साम्यवादी विचारों के माध्यम द्वारा राहुल जी ने अपने विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति की है। मज्दकियों का साम्यवादी समाज की स्थापना का 'मधुर स्वप्न' राहुल जी का अपना मधुर स्वप्न है। यहां विश्व की समस्त समस्याओं का मूल कारण वैयक्तिक स्वार्थपरता को

बताया गया है। संसार में सुख और शान्ति का केवल एक मार्ग है कि मनुष्य के मन से 'मेरा-तेरा' का भाव समाप्त हो जाये।

'विस्मृत यात्री' (रचनाकाल सन् १९५४ ई०) उपन्यास में छठी शताब्दी ईसवी के सत्यान्वेषी पुरुष नरेन्द्रयश की यात्राओं तथा उसकी बौद्ध-धर्म-प्रसार सम्बन्धी गतिविधियों का चित्रण है। नरेन्द्रयश राहुल जी की मार्क्सवादी विचारधारा का पोषक है। उसका मत है कि सामाजिक असंगतियाँ एवं आर्थिक विषमताएँ मानव-जीवन को दुःखमय बनाती हैं। इनसे इसे मुक्त कराने के लिये साम्यवादी समाज की स्थापना होनी चाहिये। जन-जागरण एवं समाज-संगठन साम्यवादी समाज की स्थापना के लिये अनिवार्य हैं। आर्थिक शोषण की समाप्ति पर ही लोकहित सम्भव है। इस उपन्यास में लोकहित के लिये वैयक्तिक संघर्ष का अनुमोदन किया गया है।

'दिवोदास' (रचनाकाल सन् १९६१ ई०) राहुल जी का अन्तिम उपन्यास है। इसमें बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी ईसा पूर्व के सप्तसिन्धु (पंजाब) के आर्यों तथा असुरों के मध्य संघर्षों का उल्लेख है। राजा दिवोदास के नेतृत्व में आर्य, असुरों पर विजय प्राप्त करते हैं। ऋग्वेदिक आर्यों की सभ्यता का चित्रण उपन्यास का लक्ष्य है। आर्य लोग स्वार्थपरायण जीवन को पापमय एवं घृणित मानते हैं। वे सत्यवादी, उदार, निर्भय और स्वावलम्बी हैं। 'दिवोदास' में राहुल जी की उपन्यास-कला का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। यह उनके अन्य उपन्यासों की अपेक्षा लघुतम एवं अधिक गठा हुआ है। इसका कथानक प्रवाहपूर्ण है। गम्भीर विषयों के प्रतिपादन एवं तर्क-वितर्क पूर्ण कथोपकथनों के आग्रह के अभाव में उपन्यास की गति तीव्र है। पात्रों के कथन, संक्षिप्त एवं सजीव हैं। उपन्यास की शैली वर्णनप्रधान होते हुए भी उसमें अनावश्यक विस्तार नहीं है। भाषा संस्कृत तत्सम शब्दों से युक्त है तथा कतिपय अव्यवहृत संस्कृत शब्दों का प्रयोग मिलता है।

राहुल जी की कहानी-कला

उपन्यासों की भाँति राहुल जी की कहानियों के कथानकों में विविधता है। कहानियों द्वारा उन्होंने समाज के विभिन्न पक्षों की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। कहानियों की घटनायें प्रायः परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। कथा-प्रवाह को रोककर, राहुल जी पात्रों के विभिन्न गुणों की पुष्टि में, अन्य घटनाओं का संयोजन करते हैं। उनकी कहानियों में संघर्ष तथा चरम स्थिति नहीं है। कहानियाँ, स्थिति के रहस्योद्घाटन के उपरान्त समाप्त न हो कर, पुनः आगे बढ़ती हैं। कहानियों के अन्त प्रायः इतने विस्तार से स्पष्ट किये गये हैं कि पाठकों की कल्पना के लिये कुछ शेष नहीं रहता। वातावरण-वर्णन की विशदता के कारण कहानियों का कलेवर बोझिल हो गया है। उनकी कहानियाँ प्रायः इतिवृत्तात्मक हैं। जीवन जैसा बीत रहा है उसकी तद्रूपता उनमें जान पड़ती है।

कहानियों के अधिकांश पात्र, राहुल जी के अपने जीवन-अनुभव तथा

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्मित हैं। उनके पात्रों की चयन-परिधि सीमित है। राहुल जी ने केवल उन्हीं पात्रों को चुना है, जो उनके विचारों के प्रकाशन में सहायक हैं। पात्रों के गुणों में परस्पर प्राय: समानता है वे 'अच्छे' अथवा 'बुरे' के सांचे में ढले प्रतीत होते हैं। पात्रों की आन्तरिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। कहानियों में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। एक कहानी में प्रधानता केवल एक पात्र को मिली है। पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिये प्रत्यक्ष एवं नाटकीय दोनों प्रणालियों का अवलम्बन किया गया है।

उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में राहुल जी ने पात्रों के कथोपकथन का उपयोग कम किया है। 'सतमी के बच्चे' तथा 'बहुरंगी मधुपुरी' संग्रहों की कहानियाँ पात्रों के जीवन वृत्त के रूप में है। उनमें कथोपकथन तत्व का प्राय: अभाव है। 'वोल्गा से गंगा' के पूर्वार्द्ध की कहानियों के कथोपकथन प्राय: संक्षिप्त हैं। इस संग्रह के उत्तरार्द्ध की कहानियों के कथोपकथन अपेक्षाकृत लम्बे एवं नीरस हैं। संक्षिप्त एवं चुस्त कथोपकथनों के कारण कहानियों के कथानक एवं पात्रों के चरित्र के विकास में सहायता मिली है। पात्रों के लम्बे कथोपकथनों में नाटकीयता का अभाव है। मुसलमान पात्रों के कथोपकथनों में फारसी-अरबी तथा संस्कृत के शब्दों का असंतुलित प्रयोग है। ग्रामीण पात्रों के कथनों में लोकभाषा का तथा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पात्रों की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

राहुल जी की कहानियों में कथा की अपेक्षा वातावरण तत्व की प्रधानता है। इनसे प्राचीन, मध्यकालीन तथा अर्वाचीन भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों का ज्ञान होता है। कहानियों में समाज के वर्ग विशेष का चित्रण नहीं है, उनमें समाज के सामान्य जीवन के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। सामाजिक वातावरण की अपेक्षा प्राकृतिक वातावरण का चित्रण कम हुआ है। कई कहानियों में वसन्त ऋतु के चित्र अधिक हृदय-ग्राही एवं सरस हैं।

भाषा की दृष्टि से, राहुल जी की उपन्यास-कला और कहानी-कला में विशेष अन्तर नहीं है। 'सतमी के बच्चे' और 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियों की भाषा मुख्यत: सरल हिन्दी है। इनमें हिन्दी तथा फारसी-अरबी के प्रचलित एवं सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'वोल्गा से गंगा' संग्रह की कहानियों की भाषा अधिक परिमार्जित है। इस संग्रह की पूर्वार्द्ध की कहानियों में संस्कृत तत्सम शब्दों तथा उत्तरार्द्ध की कहानियों में फारसी-अरबी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। संस्कृत तथा फारसी-अरबी के कतिपय कठिन शब्द भी व्यवहृत हुये हैं।

राहुल जी की कहानियों की लेखन-शैली वर्णन-प्रधान है। उनमें घटनाओं, पात्रों तथा वातावरण के वर्णन विशद हैं। लम्बे वाक्यों के कारण लेखन-शैली में शिथिलता आ गई है। लोकोक्तियो एवं मुहावरों का कहानियों में पर्याप्त प्रयोग किया गया है। 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियों में इनका प्रयोग सर्वाधिक किया गया है। उनमें संस्कृत लोकोक्तियों एवं सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है।

राहुल जी चिन्तनशील कथाकार हैं। उनकी कहानियों का उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन मात्र नहीं है। उन्होंने अपने जीवन-दृष्टिकोण को कहानियों द्वारा अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों से मानव-जाति के क्रमिक विकास का परिचय मिलता है। राहुल जी के अनुसार इस युग में मानवता के सबसे बड़े शत्रु दो हैं—सामाजिक और आर्थिक विषमता। साम्यवाद की स्थापना से इन विषमताओं का उन्मूलन एवं संसार की सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। राहुल जी समाज के नव निर्माण के हेतु सामाजिक कुरीतियों का उच्छेदन अनिवार्य समझते हैं। उन्होंने अपनी अधिकांश कहानियों में उद्देश्य की सूक्ष्म व्यंजना करने की अपेक्षा उसको अभिधात्मक रूप में पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है।

'सतमी के बच्चे' (रचनाकाल सन् १९४४ ई०) राहुल जी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इसमें दस कहानियां हैं। 'स्मृतिज्ञानकीर्ति' ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी के भारतीय पण्डित स्मृतिज्ञानकीर्ति की जीवन-झांकी है। शेष नौ कहानियों में राहुल जी ने अपने तत्कालीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियों द्वारा उत्पीडित सम्पर्क में आए व्यक्तियों के चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस संग्रह की समस्त कहानियां चित्रण-प्रधान हैं। इनमें पात्रों के चरित्र-चित्रण को गौण और परिस्थितियों के चित्रण को प्रमुखता दी गई है। प्रायः सभी कहानियों के वातावरण में आर्थिक विवशता की घुटन है।

'वोल्गा से गंगा' (रचनाकाल सन् १९४४ ई०) राहुल जी का द्वितीय कहानी संग्रह है। संग्रह की बीस कहानियों के माध्यम द्वारा, भारतीय आर्यों की आदिकाल से वर्तमान काल तक की सभ्यता के विकास का दिग्दर्शन कराया गया है। कहानियां चित्रण-प्रधान है। इनमें पात्रो के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा परिस्थितियों के चित्रण पर अधिक बल दिया गया है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ कोरी कल्पना नहीं हैं। इनमें जिन सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अंकन है वे इतिहास तथा साहित्य में उपलब्ध तथ्यों के अनुकूल है। कहानियों की घटनायें प्रायः राहुल जी की कल्पना का परिणाम हैं। संग्रह की प्रथम छः कहानियों से स्पष्ट है कि मानव, अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त प्रकृति पर पूर्णतः आश्रित है। अगली सात कहानियों में प्रजातन्त्र व्यवस्था के महत्व तथा राजतन्त्र व्यवस्था के अभावों का स्पष्टीकरण है। चौदहवीं, पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं कहानी में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के परस्पर वैमनस्य तथा मानव-मानव के प्रेम व अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। अन्तिम चार कहानियों में साम्यवाद को भारत एवं विश्व की समस्त समस्याओं के समाधान रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'बहुरंगी मधुपुरी' (रचनाकाल सन् १९५३ ई०) राहुल जी का तृतीय एवं अन्तिम कहानी संग्रह है। संग्रह में इक्कीस कहानियां हैं। इनका लक्ष्य सन् १९४७ ई० से पूर्व तथा उसके बाद की मधुपुरी की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना है। ये चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ हैं। इस संग्रह की समस्त

कहानियाँ राहुल जी के मधुपुरी (मसूरी) सम्बन्धी जीवन-अनुभव का परिणाम हैं। कहानियों में मधुपुरी के जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्र हैं। इनका मूल विषय मधुपुरी की आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण है।

हिन्दी कथा-साहित्य और राहुल जी

हिन्दी कथा-साहित्य का प्रारम्भ, मुंशी इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' से माना जाता है। इनका रचना-काल संवत् १८६० के आसपास है। श्रीनिवासदास (सं० १६०२-१६४४) के 'परीक्षा गुरु' को प्रथम हिन्दी उपन्यास कहा जाता है। इसमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति अधिक है। बा० देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्मी और श्री गोपालराय गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखे। हिन्दी कथा-साहित्य की प्रारम्भिक रचनायें लोकरुचि के अनुसार की गईं। उस समय लोकरुचि कुतूहल और तिलस्म-रहस्यों की ओर अधिक थी। पाठकों की रुचि के अनुसार उस समय के लेखन का एक मात्र उद्देश्य था, कुतूहल-तृप्ति द्वारा पाठकों का मनोरंजन। उस समय की रचनाओं में, कुतूहल की तृप्ति के साथ घटना और भावुकता का बाहुल्य है। घटनाओं में वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य है। कहीं-कहीं उपदेशात्मकता का पुट है। इस समय के उपन्यासों और कहानियों में कथातत्व की प्रधानता है और अन्य सभी तत्व गौण हैं। उनकी शैली वर्णनप्रधान है। भाषा सरल और बोलचाल के समीप है।

मुंशी प्रेमचन्द जी (सं० १६३७-१६६३) से हिन्दी कथा-साहित्य का नया युग आरम्भ होता है। उन्होंने चरित्र-चित्रण और उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास लिखने की परम्परा आरम्भ की। उस समय के उपन्यासों एवं कहानियों में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के चरित्र तत्व पर अधिक बल है, कल्पना के साथ उनमें, बुद्धि-तत्व का पुट है। उनके लेखन का उद्देश्य, पाठकों का मनोरंजन मात्र नहीं, अपितु समाज की समस्याओं का विश्लेषण करना है। मुंशी प्रेमचन्द जी के उपन्यास आदर्शोन्मुख और यथार्थवादी हैं। उनके पात्र वास्तविकता तक सीमित नहीं हैं, वे आदर्श जीवन की उपलब्धि के प्रति प्रयत्नशील हैं। उनके पात्र, व्यापक जीवन से चुने गये हैं। जयशंकर प्रसाद जी (सं० १६४६-१६६४) ने केवल दो उपन्यास लिखे हैं—तितली और कंकाल। प्रसाद जी के उपन्यासों में प्रेमचन्द जी के उपन्यासों की अपेक्षा भावना का उत्कर्ष अधिक है। प्रसाद जी की भाषा संस्कृत गर्भित और एकरस है किन्तु प्रेम-चन्द जी की भाषा पात्रों के अनुकूल बदलती है और सुबोध है। वृन्दावनलाल वर्मा ने 'गढ़कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी' आदि ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी जगत को दिये हैं। उनके उपन्यासों में, ऐतिहासिकता के साथ स्थानीय गौरव और प्रकृति चित्रण की विशेषता है।

प्रेमचन्द युग के बाद के उपन्यासों की वृत्ति अन्तर्मुखी है। इन उपन्यासो में समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक स्थान मिला है। उपन्यास में घटनाएँ चरि और मानसिक उथल-पुथल के उद्घाटन में सहायता करने के लिए होती है। इस

श्रेणी के उपन्यासकारों में जैनेन्द्र जी अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी ने मनोविश्लेषण सम्बन्धी उपन्यास लिखे हैं इस श्रेणी के उपन्यासों में पात्रों के आन्तरिक रहस्यों का उद्‌घाटन किया जाता है।

वैयक्तिक विश्लेषण सम्बन्धी उपन्यासों के अतिरिक्त, इस काल में सामाजिक समस्याओं पर आधारित जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उनमें मार्क्सवादी उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं। इस श्रेणी के उपन्यासों में व्यक्ति के विश्लेषण के साथ समाज-धारा का गहन चित्रण भी रहता है। मार्क्सवाद से प्रभावित उपन्यासकारों में यशपाल और राहुल जी विशेष प्रसिद्ध हुये हैं। यशपाल जी ने अपने उपन्यासों में वर्तमान वातावरण में, सामाजिक आन्दोलनों के साथ, मार्क्सवाद का प्रतिपादन किया है किन्तु राहुल जी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत मार्क्सवादी सिद्धान्तों का उद्‌घाटन किया है। 'सिंह सेनापति' उपन्यास में उन्होंने प्राचीन भारत (५०० ई० पू०) में साम्यवादी तत्वों को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। 'जय यौधेय' उपन्यास में यौधेयों (चतुर्थ शताब्दी ईसवी) के साम्यवादी जीवन का चित्रण हैं। 'विस्मृत यात्री' उपन्यास का सम्बन्ध छठी शताब्दी ईसवी के भारत एवं चीन की घटनाओं से है। इसमें साम्यवादी जीवन के लिए सामाजिक असंगतियों और आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन को अनिवार्य बताया गया है। 'मधुर स्वप्न' में, पाँचवीं छठी शताब्दी ईसवी के ईरान के मज्दकियों के साम्यवादी आन्दोलन से सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख है। 'जीने के लिये' उपन्यास में, बीसवीं शताब्दी का भारत की राजनीतिक घटनाओं का समावेश है। इस उपन्यास में सामाजिक कुरीतियों से रहित साम्यवादी समाज की स्थापना की ओर संकेत है।

राहुल जी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में, इतिहास को नवीन दृष्टिकोण से देखा है। राहुल जी वर्तमान को महत्व देते हैं, अतीत को नहीं। अतीत को, वे प्रेरणा का स्रोत अवश्य मानते हैं। भारतीयों को उनकी प्राचीन संस्कृति से परिचित करने के लिये, उन्होंने इतिहास को अपने उपन्यासों का आधार बनाया है। उपन्यासों के माध्यम से, उन्होंने प्राचीन और नवीन आदर्शों में सामंजस्य स्थापित किया है। उन्होंने प्राचीन भारत के गणतंत्रीय जीवन का चित्रण किया है। साम्यवादी विचार-धारा के समर्थन में लिच्छवियों (५०० ई० पू०) और यौधेयों (चतुर्थ शताब्दी ई०) के साम्यवादी जीवन का अंकन किया है। ऐतिहासिक तथ्यों को उन्होंने इतिहासानुकूल कल्पना के आधार पर निजी जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त करने के लिये प्रस्तुत किया है।

राहुल जी ने लुप्तप्राय ऐतिहासिक तथ्यों को अपने उपन्यासों एवं कहानियों द्वारा प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। इतिहास में अणुरूप में उपलब्ध तथ्यों को उपन्यासों एवं कहानियों का रूप दिया है। उपन्यासों के निर्माण में उन्होंने कोरी कल्पना से काम नहीं लिया है। उन्होंने इतिहास में प्रकीर्ण कथा-सूत्रों को अपनी कल्पना द्वारा सूत्रबद्ध अवश्य किया है। इतिहास से राहुल जी ने उन पात्रों को संचित किया है जो उनके विचारों के वाहक और प्रतिनिधि हैं। इतिहास के तथ्यों को सरस

बनाने के लिये उन्होंने उपन्यासों में यात्रा एवं प्रसंगों का समावेश किया है। उपन्यासों एवं कहानियों द्वारा उन्होंने पाठकों की रुचि को अतीत की ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयास किया है।

राहुल जी की कथाकृतियों में भाषा, भाव एवं कला का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। साम्यवाद एवं गणतन्त्र जैसे गम्भीर विषयों का सरल एवं सुबोध भाषा में प्रतिपादन उनके अगाध पाण्डित्य को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है। उनका सम्पूर्ण जीवन नवीन समाज की कल्पना कर, उसे साकार बनाने में व्यतीत हुआ है। उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम द्वारा, उन्होंने साम्यवादी समाज की स्थापना का सन्देश दिया है। राहुल जी, मानवतावादी कलाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनायें, मानव-मात्र के हित के लिये की हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, राहुल जी ने, सत्तर वर्ष की आयु में हिन्दी साहित्य को कथा-साहित्य के रूप में अथवा अन्य कृतियों के रूप में जो कुछ दिया वह पृष्ठों की दृष्टि से विपुल और नई दिशा तथा नव्य एवं भव्य पथ की दृष्टि से अद्‌भुत एवं महान् है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी साहित्य के ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय की असाधारण सर्जनात्मक प्रतिभा के प्रतीक हैं।

परिशिष्ट १

श्रीमती कमला सांकृत्यायन के कुछ पत्र

(१)

राहुल निवास,
दार्जिलिंग।
२४-७-६३

प्रिय प्रभाशंकर भाई,

१९ जुलाई का पत्र मिला। आपके पास महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की सम्पूर्ण कृतियों की सूची का होना नितान्त आवश्यक है। इसी विचार से मैं आपको सूची पत्र भेज रही हूँ।[१] आपके प्रश्नों का समाधान भी इससे हो जायगा।

आगे भी पत्र लिखते रहें।

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन

(२)

राहुल निवास,
दार्जिलिंग।
२५-११-६३

प्रिय मिश्र जी,

आपके दोनों पत्र यथासमय मिल गए। इस बीच मैंने देहली के प्रकाशक से पत्र-व्यवहार किया किन्तु प्रकाशक महोदय ने हमारे एक भी पत्र का उत्तर नहीं दिया। एक अन्य लेखक मित्र को आग्रहपूर्वक लिखा कि वे जाकर 'जीवनी' (३) के बारे में पता लगावें। अभी मालूम हुआ कि पाण्डुलिपि प्रेस में गई है और उसे कम्पोज भी कर चुके हैं, पुस्तक अब शीघ्र ही छपने लगेगी।

पंडित जी की पुस्तकों की जो सूची मैंने आपके पास भेजी है उसे आप बिल्कुल प्रमाणित मानें, हाँ, उसमें अन्य आठ पुस्तकें जोड़ लें। २००-३०० की बात तो किंवदन्ती है।

शेष पुनः पत्र मिलने पर।

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन

---

[१] इस पत्र के साथ प्राप्त पुस्तक-सूची के लिये कृपया देखिये—प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ० ४९-५३

(३)

कमला सांकृत्यायन
एम० ए०, पी-एच० डी०,
साहित्य-रत्न ।

राहुल निवास
२१, कचहरी रोड,
दार्जिलिंग (पश्चिमी बंगाल)
२५-६-६४

श्री प्रभाशंकर भाई,

आपका पत्र मिला । मैंने दिल्ली से आपको पत्रोत्तर दिया था, वह कैसे नहीं मिला ? आपके प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) 'चीन में क्या देखा'—का प्रकाशन-काल सन् १९५९ ई० है । इसके प्रकाशक हैं—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली ।

(२) 'चीन में कम्यून'—पुस्तक सन् १९५९ ई० में प्रकाशित हो चुकी है । इसके प्रकाशक हैं—पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

(३) पुस्तक 'माओ-चे-तुंग' के प्रकाशक हैं—किताब महल, इलाहाबाद ।

(४) 'आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा' और 'सिंहल भाषा'—दो रचनायें साहित्य सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं ।

(५) राहुल जी के साथ मेरा सम्बन्ध सन् १९५९ ई० में हुआ । प्रथम दर्शन कालिम्पोंग में ११ अप्रैल, १९४९ ई० को हुए थे । फिर दोनों में प्रेम हो गया । मैं अपने परिवार के समक्ष उनसे विवाह नहीं कर सकती थी क्योंकि हमारा समाज रूढ़िवादी है । अतः सम्बन्ध होने के डेढ़ वर्ष बाद २३ दिसम्बर, १९५० ई० को मसूरी में हमारा विवाह सम्पन्न हुआ ।

(६) मैं आपके विचारों से बिल्कुल सहमत हूँ । पंडित जी के मुख से, कभी बेहोशी में भी भगवान् का नाम नहीं निकला ।

(७) 'पद्मभूषण' की उपाधि-प्राप्त करने के लिए राहुल जी की ओर से समारोह में कोई उपस्थित नहीं था क्योंकि समारोह उनकी मृत्यु के बाद हुआ । मेडल एवं सनद पार्सल द्वारा यहाँ प्राप्त हुये ।

(८) राहुल जी के रूसीपुत्र के साथ मेरा पत्र-व्यवहार कम ही चलता है । पत्र उसकी माँ लिखती है ।

(९) हाँ, पहले वे इतनी (३६) भाषायें जानते थे किन्तु बाद में काम न पड़ने से वे कितनी ही को भूल गए थे । सन् १९५७ ई० में मैंने एक बार गिना था । १६ भाषाओं को वे भली प्रकार पढ़ते, लिखते व समझते थे ।

भवदीया,
कमला सांकृत्यायन

(४)

राहुल-संग्रहालय
'राहुल निवास'
२१, कचहरी रोड
दार्जिलिंग (पं० बंगाल)
१७ अगस्त, १९६५

श्री प्रभाशंकर जी,

आपका १२ अगस्त का पत्र कल ही मिला। आपके सारे प्रश्नों का उत्तर यदि पर्याप्त विस्तार के साथ दिया जाय तो यह पत्र, पत्र न रह कर एक छोटा सा शोध-निबंध ही बन जा सकता है। अतः, विस्तार के साथ उत्तर देना इस समय तो मेरे लिए संभव न होगा। हाँ, छोटी-मोटी बातें ही, अपनी जानकारी के अनुसार आपके सामने प्रस्तुत हैं—

(१) 'जीवनयात्रा' के केवल दो भाग अब तक प्रकाशित हुए हैं। एक बार मैं आपको लिख ही चुकी हूँ कि 'जीवनयात्रा भाग-३ अभी तक अप्रकाशित है और जिसकी पाण्डुलिपि मेरे पास ही है। इस तीसरे भाग में १९४० से १९५६ तक का जीवन चरित्र है।

(२) 'दिवोदास' किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास मौलिक है और ऋग्वेद कालीन संस्कृति पर आधारित है।

(३) 'तिब्बती संस्कृत कोश' अभी तक अप्रकाशित है और उसकी पाण्डुलिपि भी मेरे पास ही है। हाँ 'तिब्बती-हिन्दी कोश' 'साहित्य अकादमी' की ओर से प्रकाशित हो रहा है। इस कोश का अभी केवल तृतीयांश ही छपा है।

(४) 'शादी' उपन्यास हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पिशाचमोचन, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। इसकी अभी तक मेरे पास भी प्रतियाँ नहीं पहुँची हैं। प्रकाशक के अंतिम पत्र से ज्ञात हुआ है कि उपन्यास छप गया है। विज्ञापित भी हो रहा है और वे उसे अगस्त में वितरित करने जा रहे हैं। आप अब प्रकाशक से यह उपन्यास प्राप्त कर सकते हैं।

(५) 'नेपाल' और 'हिमाचल-प्रदेश' दोनों पुस्तकें अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं और दोनों की पाण्डुलिपियाँ मेरे पास ही हैं।

(६) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस का पता है—

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड,
रानी झाँसी रोड,
झण्डेवाला इस्टेट, नयी दिल्ली।

(७) 'तुलसी रामायण संक्षेप' केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग के लिए लिखी गई थी। प्रकाशित हुई या नहीं इसकी मुझे स्वयं भी जानकारी नहीं है। मैं पूछताछ कर रही हूँ।

(८) नयी पुस्तकों में मैं 'शादी' के बारे में लिख ही चुकी हूँ। राहुल जी के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी पुस्तकों के अन्य भाषाओं में तो अनेक अनुवाद हो चुके हैं किन्तु हिन्दी में केवल और एक ही पुस्तक आयी है—'पालि साहित्य का इतिहास'। प्रकाशक है—हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।

(९) मेरी जानकारी के अनुसार राहुल जी के जीवन तथा कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर इस समय १० विद्यार्थी शोधकार्य कर रहे हैं। इनमें से एक दार्जिलिंग के ही एक कालेज में प्राध्यापक, श्री सुबोधचन्द्र सक्सेना लखनऊ विश्वविद्यालय से अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर चुके हैं।

(१०) 'जय यौधेय' पूर्णतः ऐतिहासिक उपन्यास है। राहुल जी ने अपने प्राक्कथन में स्पष्ट लिखा है, कि "यद्यपि इस उपन्यास के शरीर में ऐतिहासिक सामग्री ने अस्थिपंजर का काम किया है, किन्तु माँस मैंने अपनी कल्पना से पूरा किया है।" 'यौधेय' तो ऐतिहासिक नाम है ही मैं समझती हूँ 'जय' काल्पनिक ही है। इस सम्बन्ध में अपना निश्चित मत मैं आपको छानबीन के बाद ही लिखूँगी।

(११) राहुल जी की सम्पूर्ण कृतियों के बारे में अनेकों ने अनेक अनुमान लगाये हैं। इधर मैंने 'राहुल-साहित्य' शीर्षक से एक निबन्ध लिखा है जिनमें उनकी सम्पूर्ण कृतियों का लेखाजोखा है। इसमें मैंने राहुल साहित्य की सम्पूर्ण सूची दी है। साथ ही कौन-सी कृति किस वर्ष लिखी गयी, किस प्रकाशक ने छापी और कितनी भाषाओं में अनूदित हुई, इन सारी बातों का विवरण दिया है। एक से अधिक खण्डों वाली कृति को एक ही कृति मानकर मैं सम्पूर्ण ग्रन्थों की संख्या १२८ ही मानती हूँ। यह लेख 'सम्मेलन पत्रिका' के आगामी अंक में प्रकाशित हो रहा है। इसकी प्रतिलिपि मैंने 'राहुल स्मृति' ग्रंथ के लिए कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डा० ब्रह्मानन्द जी को भेज दी है। आप वहाँ से इस लेख का उपयोग कर सकते हैं।

(१२) आपका, मैं समझती हूँ, सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है : १९४४ के बाद राहुल जी ने किन देशों की यात्राएँ कीं और कौन से सन् में। इनमें से २५ मास की जानकारी तो आपको इसमें पच्चीस मास पुस्तक में हीं मिल जायेगी। इस पुस्तक को जीवन यात्रा का एक खण्ड ही मानना चाहिए, क्योंकि जीवन यात्रा के किसी अन्य खण्ड में यह विवरण नहीं आया है। मैं आपको लिख ही चुकी हूँ कि १९४७ से ५६ तक की यात्रा 'जीवनयात्रा, खण्ड ३' में है और अब तक यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है। क्योंकि आपने केवल विदेश यात्राओं की जानकारी पूछी है, इसलिए यह बताना कोई कठिन बात नही है।

नेपाल यात्रा	१९५३, १९५६ और १९५८।
चीन यात्रा	१९५९। चार महीने रहे।
श्रीलंका यात्रा (निवास)	१९५८-६१। डेढ़ वर्ष।
सोवियत रूस यात्रा	१९६२ ६३। सात महीने रहे।

मैंने अपनी जानकारी के अनुसार आपको जो सूचनाएँ दी हैं, मैं समझती हूँ, वे आपके लिए काम ही आयेंगी।

आशा है आप सानन्द होंगे।

मंगलाकांक्षिणी,
कमला सांकृत्यायन

(५)

दार्जिलिंग
१८-६-६५

श्री मिश्र जी,

आपके दोनों पत्र यथा समय मिल गये। मेरे लिए कठिनाई तो यह है कि मैंने 'राहुल साहित्य' वाले लेख की दो ही प्रतियाँ टाइप की थी, जिसमें एक 'स्मृति-ग्रन्थ' को भेज दी और दूसरी 'सम्मेलन-पत्रिका' को। अब समयाभाव के कारण दुबारा लिखना मेरे लिये असम्भव है। वैसे मैंने आपको पहले जो सूची भेजी थी उसमें बहुत परिवर्तन नहीं किया गया। केवल जो ग्रंथ एक से अधिक खण्ड में हैं उन्हें एक ही ग्रन्थ माना गया है, इस तरह संख्या कम हो जाती है। 'राहुल निबंधावली' और 'राहुल पत्रावली' को भी जोड़ दिया गया है जो अभी अप्रकाशित हैं। शेष बदस्तूर हैं। इसलिये आप अपना काम स्थगित न रखें। पूरा कर ही लें तो अच्छा है।

..............................मेरे पास और तो क्या है, स्व० पण्डित जी की बहुमूल्य वस्तुएँ अर्थात् उनकी डायरियाँ, हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ, अप्रकाशित ग्रन्थ तथा चिट्ठी-पत्री आदि हैं। उनको यहाँ रखना नहीं चाहती। सोच रही हूँ इन्हें प्रयाग पहुँचा दूँ, क्योंकि हिन्दी की भावी पीढ़ी के लिये यह उपयोगी सिद्ध होंगी।

आशा है आप सानन्द होगे।

मंगलाकांक्षिणी,
कमला सांकृत्यायन
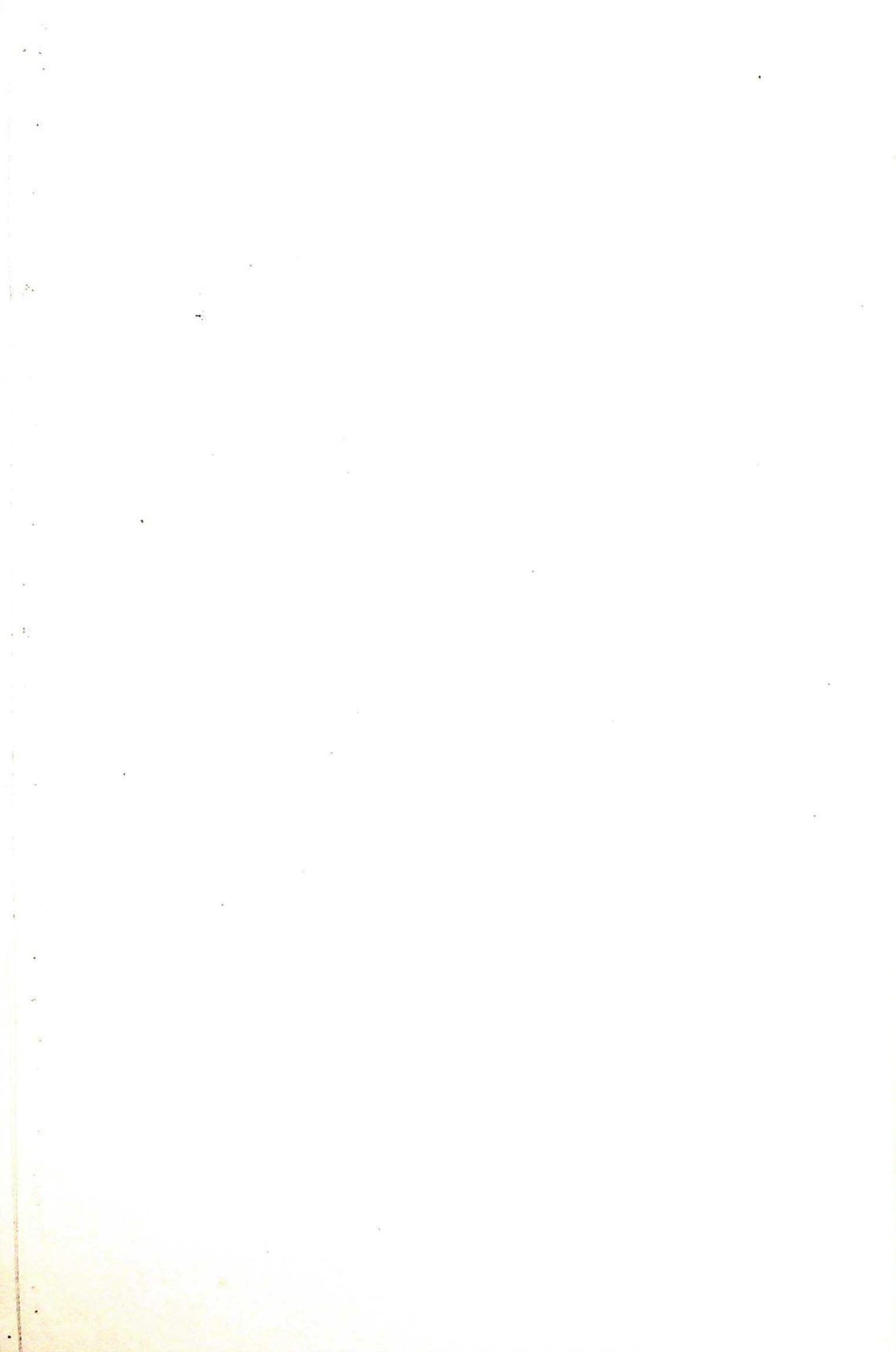
परिशिष्ट २

सहायक ग्रंथ-सूची

(क) श्री राहुल सांकृत्यायन के कहानी-संग्रह एवं उपन्यास—

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त राहुल जी के कहानी-संग्रहों एवं उपन्यासों की प्रकाशक तथा संस्करण सहित सूची—

कहानी-संग्रह

क्रम सं०	कहानी-संग्रह	संस्करण, सन्	प्रकाशक
(१)	सतमी के बच्चे	१९५५, चतुर्थ संस्करण	किताब महल, इलाहाबाद
(२)	वोल्गा से गंगा	१९६०	किताब महल, इलाहाबाद।
(३)	बहुरंगी मधुपुरी	१९५४	राहुल प्रकाशन, हैपी वेली, मसूरी

उपन्यास

क्रम सं०	उपन्यास	संस्करण, सन्	प्रकाशक
(१)	जीने के लिए	१९५९	किताब महल, इलाहाबाद
(२)	सिंह सेनापति	१९६१	,,
(३)	जय यौधेय	१९५६	,,
(४)	विस्मृत यात्री	१९५५	,,
(५)	मधुर स्वप्न	१९५०, प्रथम संस्करण	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता
(६)	दिवोदास	शकाब्दी १८८४ प्रथम आवृत्ति	किताब महल, इलाहाबाद

(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

ग्रन्थ	लेखक
आदर्शालोचन	प्रो० टेकचन्द व वेदपाल
उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा	डा० शशिभूषण सिंहल
उपन्यास तत्व एवं रूप विधान	श्री नारायण अग्निहोत्री
ऋग्वेदिक आर्य	राहुल सांकृत्यायन
ऋग्वेद भाष्यम् (अष्ट भागातमकम)	श्रीमद्दयानन्द स्वामी
ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार	डा० गोपीनाथ तिवारी

ग्रन्थ	लेखक
कहानी कला और हिन्दी कहानियों का विकास	डा० छविनाथ त्रिपाठी
कहानी दर्शन	श्री भालचन्द्र गोस्वामी प्रखर
कांग्रेस का इतिहास : खण्ड ३	डा० पट्टाभि सीतारामय्या
काव्य के रूप	बा० गुलाबराय
कुछ विचार	मुंशी प्रेमचन्द
घुमक्कड़ शास्त्र	राहुल सांकृत्यायन
चिन्तामणि : भाग १	पं० रामचन्द्र शुक्ल
चीनी बौद्ध धर्म का इतिहास	डा० चाउ सिआंग कुआंग
ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद
प्रेमचन्द : एक अध्ययन	राजेश्वर गुरु
बाईसवीं सदी	राहुल सांकृत्यायन
बौद्ध धर्म-दर्शन	आचार्य नरेन्द्र देव
भागो नहीं, दुनिया को बदलो	राहुल सांकृत्यायन
भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन व संविधान का विकास	योगेन्द्र मलिक व आर० एल० भाटिया
मेरी जीवन-यात्रा : भाग १	राहुल सांकृत्यायन
मेरी जीवन यात्रा : भाग २	राहुल सांकृत्यायन
राजस्थानी रनिवास	राहुल सांकृत्यायन
विचार और अनुभूति	डा० नगेन्द्र
विचार और विवेचन	डा० नगेन्द्र
वैज्ञानिक भौतिकवाद	राहुल सांकृत्यायन
वैदिक इण्डेक्स : भाग १	मूल लेखक—मैकडानेल व कीथ अनुवादक—रामकुमार राय
साहित्य-दर्पण	विमला हिन्दी व्याख्या सहित (विमला टीका के रचयिता श्री पं० शालग्राम, शास्त्री)
साहित्यालोचन	डा० श्यामसुन्दर दास
हिन्दी उपन्यास	डा० सुषमा धवन
हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा० त्रिभुवन सिंह
हिन्दी उपन्यास में कथा शिल्प का विकास	डा० प्रताप नारायण टण्डन

ग्रन्थ	लेखक
हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना	डा० सुरेश सिन्हा
हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास	डा० रणवीर रांग्रा
हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	डा० गणेशन
हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन	डा० श्री नारायण अग्निहोत्री
हिन्दी ऋग्वेद	भाषान्तरकार व सम्पादक पं० रामगोविन्द त्रिवेदी
हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन	डा० ब्रह्मदत्त शर्मा
हिन्दी में उच्चतर साहित्य	सम्पादक, राजबली पाण्डेय प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

हिन्दी रेखाचित्र : उद्गम और विकास कृपाशंकर सिंह

(ग) सहायक कोश

फीरोज-उल-लुगात उर्दू (जदीद) (द्वितीय संस्करण, सन् १९४६ ई०)	प्रकाशक—फीरोज सन्ज, प्रिन्टरर्ज एण्ड पब्लिशर्ज, लाहौर
वृहत् हिन्दी कोश (तृतीय संस्करण, सम्वत् २०२०)	सम्पादक—कालिका प्रसाद तथा अन्य प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
लुग़ाते-जदीद (उर्दू) (चतुर्थ संस्करण, १९५३ ई०)	एम० सिकन्दर, न्यूताज आफ़िस, देहली
संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम संस्करण, सम्वत् २०१५)	सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि

(घ) सहायक पत्र पत्रिकाएं

(१) आज (दैनिक) वाराणसी, साप्ताहिक विशेषांक, दिनांक २८-४-१९६३

(२) उपमा (मासिक) कानपुर, राहुल स्मृति विशेषांक, अगस्त १९६

ग्रन्थ	लेखक

(३) ज्ञानपीठ पत्रिका (मासिक) वाराणसी, नवम्बर १९६३ व सितम्बर १९६५

(४) दी ट्रिब्यून (दैनिक) अम्बाला (पंजाब) दिनाक १९ अप्रैल १९६३

(५) नव भारत टाइम्स (दैनिक) (दिल्ली), दिनांक २१ अप्रैल, १९६३

(६) साप्ताहिक हिन्दुस्तान (साप्ताहिक), ५ मई, १९६३

(७) साप्ताहिक हिन्दुस्तान (साप्ताहिक), ३० जून, १९६३

(ङ) सहायक ग्रन्थ (अँग्रेजी)

A History of China	Wolfram Eberhard
A History of Persia, Volume I	Sir Percy Skyes
Corporate Life in Ancient India,	Dr. Ramesh Chandra Majumdar.
Dictionary of Pali Proper Names (Edition 1960) Vol.II.	G. P. Malal Sekera
Encyclopaedia of Religion and Ethics—Volume VIII	James Hastings.
History of Ancient India	Dr. Rama Shankar Tripathi
India and China	Prabodh Chandra Bagchi
Jainism in Nutshel	Muni Kirti Vijai
Some Kshatriya Tribes of Ancient India	Dr. Bimal Charan
The Encyclopaedia Americana, (1961) Vol. XIV, XVIII	
The Gupta Empire	Dr. Radha Kumud Mukerjee
The Journal of the Numismatic Society of India, Volume XXIV (1962).	
The Legacy of Persia	A. J. Arbery
The Oxford History of India (Third Edition).	The Late Vincent A. Smith
The Vakatka Gupta Age	Dr. Ramesh Chand Majumbar & Dr Sadashiv Altekar.

809